देखा, कैसा साफ़ वर्णन है कि प्रकट हुए चार वेद, उन वेदों से इन सारी विद्याओं का प्रकाश हुआ और उनका भिन्न-भिन्न प्रयोग होने से भिन्न-भिन्न नाम हो गये, इन सबका मूल पूजनीय वेद है। आप इन नामवाले ग्रन्थों को भी ईश्वरकृत सिद्ध करके धर्म के निर्णय में घपला मचाकर स्वार्थसिद्धि करना चाहते हैं, किन्तु अब यह न हो सकेगा, क्योंकि जनता अब अन्धी नहीं है, ऋषि दयानन्द ने जगा दी है। अब वेद को कसौटी मानकर उसी ग्रन्थ को प्रमाण माना जावेगा जो वेदानुकूल हो, ऐरा-ग़ैरा-नत्थूखैरा भागवतादि वेदविरुद्ध ग्रन्थ को केवल **'संस्कृतवाक्यं प्रमाणम्', 'ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्'** कहकर अब धर्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता। ऋषि दयानन्द! तेरा भला हो, तूने आर्यजाति के साहित्य को वेद की कसौटी बताकर लोगों की गपड़चौथ से बचा दिया।

(४७५) प्रश्न—**'पुराणं न्यायमीमांसा'** इत्यादि याज्ञवल्क्यस्मृति में भी पुराण को विद्या का स्थान लिखा है।

—पृ० ६१, पं० २१

उत्तर—आपने वेद का प्रमाण नहीं दिया अपितु याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रमाण दिया है और उसका भी पता नहीं बतलाया कि किस अध्याय का कौन-सा श्लोक है, तथापि इस श्लोक में भी यह कहीं नहीं लिखा कि पुराण नाम भागवतादि कपोलकल्पित नवीन ग्रन्थों का है, क्योंकि भागवतादि ने विद्या का स्थान तो क्या खाक होना था, ये ग्रन्थ तो विद्या के शत्रु हैं, अतः यहाँ भी पुराण से शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों का ही ग्रहण होता है। इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—

पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

—याज्ञवल्क्यस्मृति १।३

भाषार्थ—पुराण अर्थात् शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ, योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमांसा और वेदान्त, समस्त धर्मशास्त्र, छह अंगोंसहित वेद—इन चौदह विद्याओं से ही धर्म का निर्णय होता है।

ये चौदह विद्याएँ धर्म के निर्णय में वहाँ तक ही प्रमाण मानी जावेंगी जहाँ तक वे वेद के विरुद्ध न हों, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से स्वतःप्रमाण हैं तथा शेष सब ग्रन्थ मनुष्यकृत होने से परतःप्रमाण हैं, अतः धर्म के विषय में विशेषता से वेद का ही प्रमाण माना जावेगा, जैसाकि स्वयं वेद कहता है—

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥—ऋ० १।२२।१८

भाषार्थ—जिस लिए किसी से भी तिरस्कृत न किये जानेवाले, वेदवाणी के रक्षक, व्यापक परमात्मा ने तीन प्रकार के पदार्थों को विशेष रूप से रचा है, इसलिए वह धर्मों का धारण करनेवाला है॥१८॥

इससे सिद्ध है कि धर्म में मुख्य प्रमाण ईश्वरीयज्ञान वेद का ही हो सकता है।

(४७६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छह वेदों के अङ्ग, मीमांसादि, छह शास्त्र वेदों के उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि-मुनि के किये ग्रन्थ हैं। इनमें भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस-उसको छोड़ देना, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण वेदाधीन हैं"—इस लेख में उपवेद, ब्राह्मण और वेदों के अङ्ग इन सबके प्रमाण का सफ़ाया हो गया।

—पृ० ६२ पं० ३

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है। यदि कोई कसौटी न मानकर सम्पूर्ण ग्रन्थों को प्रमाण मान लिया जावे तो स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ऋषि-मुनियों के

नाम से संस्कृत में अनेक ऐसे ग्रन्थ बना डालेंगे जिनमें वेद के विरुद्ध पापकर्मों को भी धर्म प्रतिपादन किया गया हो, जैसेकि इस समय में भी ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं। भागवतादि अष्टादश पुराण, तन्त्रग्रन्थ, उपपुराण, उपनिषदों का दश से बढ़कर १०८ बन जाना, स्मृतियों का मनुस्मृति के अतिरिक्त २८ तक पहुँच जाना, अल्लोपनिषत् का बनना, 'भविष्य' में इस्लाम के पैग़म्बरों की स्तुति का होना सिद्ध करता है कि किसी कसौटी का होना आवश्यक है, जिससे असली और नक़ली चीज़ का पता लग सके और वह वेद ही हो सकता है, जैसाकि—

ईश्वर निर्भ्रान्त है—**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।** —यजुः० ४०।८

परमात्मा सर्वज्ञ होने से निर्भ्रान्त, सब के मन की बात को जाननेवाला, सर्वव्यापक और अनादि है॥८॥

वेद ईश्वर का ज्ञान है—**प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।** —यजुः० ३४।५७

वेदरक्षक जगदीश्वर ही प्रशंसनीय मन्त्रसंहिता वेद का उत्तम रीति से उपदेश करता है॥५७॥

मनुष्य से गलती सम्भव है

देवकृतस्यैनसोऽ वयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽ वयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽ वयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽ वयजनमस्येनस एनसोऽ वयजनमसि। यच्चाहमेनो विदाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽ वयजनमसि॥ —यजुः० ८।१३

भाषार्थ—इस मन्त्र का स्पष्ट अभिप्राय है कि योगी, मनुष्य, ज्ञानी, प्रत्येक जीवात्मा, विद्वान्, अविद्वान्, सबसे पाप का होना सम्भव है, क्योंकि सब जीव अल्पज्ञ हैं, अतः उनसे भूल का होना सम्भव है और उनकी बनाई पुस्तकों में भी भूल का होना सम्भव है॥१३॥

वेदानुकूल कर्म करो

यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत्स्वाहा। —यजुः० ८।२५

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तज्जुषस्व स्वाहा। —यजुः० ८।२२

भाषार्थ—इन दोनों मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि मनुष्य को वेदानुकूल आचरण करने चाहिएँ, अतः स्वामीजी का लेख वेदानुकूल और युक्तियुक्त है।

(४७७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ६८ में लिखा है कि "स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति अमान्य हैं।"—पृ० ६२, पं० २०॥ किसी ग्रन्थ में लिखा है कि पुराणों को मत मानो, स्मृतियों को मत मानो, वेद के अङ्ग और दर्शनों को तभी प्रमाण मानो जब इनकी लिखी बात वेद में लिखी मिल जाए।

उत्तर—स्वामीजी के लेख का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि सब स्मृतियों में से प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर केवल मनुस्मृति ही वेद के अनुकूल है, शेष सब स्मृतियाँ वेदविरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं हैं और इसे स्वयं मनुजी कहते हैं कि **'या वेदबाह्याः स्मृतयः'** इत्यादि [मनु० १२।९५-९६], देखो नं० ४६६। स्वामीजी ने यह नहीं लिखा है कि पुराण, स्मृति, वेदाङ्ग तथा दर्शनों को मत मानो, अपितु यह लिखा है कि ये सब ग्रन्थ वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं। यदि इनमें कोई बात वेद के विरुद्ध हो तो वहाँ वेद का लेख ही प्रमाण होगा, इन ग्रन्थों का नहीं, क्योंकि वेद ईश्वरकृत और ये ग्रन्थ ऋषिकृत हैं। ईश्वर निर्भ्रान्त है तथा ऋषियों से ग़लती का होना सम्भव है (देखो नं० ४७६)।

(४७८) प्रश्न—जब महर्षि याज्ञवल्क्य यह फ़ैसला दे चुके कि अठारह पुराण, महाभारत, वैशेषिक तथा गौतमसूत्र, पूर्व-मीमांसा एवं वेदान्त समस्त धर्मशास्त्र और छह अंगोंसहित वेद—ये प्रमाण हैं तब इसके विरुद्ध दयानन्द के फ़र्ज़ी फ़ैसले को वही मानेगा कि जिसने अपनी अक़ल

का कचूमर निकाला हो। —पृ० ६३, पं० ३

उत्तर—धर्म के विषय में न याज्ञवल्क्यजी का फ़ैसला प्रमाण है न स्वामी दयानन्द का, अपितु धर्म के विषय में वेद का ही फ़ैसला प्रमाण है, जैसेकि—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

—ऋ० १०।७१।२

भाषार्थ—जहाँ पर धीर पुरुष मन से वेद द्वारा अपनी वाणी को ऐसे छान लेते हैं जैसे छलनी से सत्तु छान लिये जाते हैं, वहाँ मित्र लोग मित्र कर्मों को जानते हैं, उन महात्माओं का वेद में ही कल्याण और शोभा स्थित है॥ २॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा अश्नवत्॥

—ऋ० १।४०।६

भाषार्थ—हे भद्रपुरुषो! हम लोग यज्ञादिक सकल शुभकर्मों में वेदविहित माननीय मन्त्र को कहें-कहावें, सुनें-सुनावें। हे मनुष्यो! इस ईश्वरीय कल्याणी वाणी की यदि आप सदैव कामना करेंगे तो भी वननीय=माननीय वाणी आप लोगों को प्राप्त होगी॥ ६॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति। —अथर्व० १०।८।३२

भाषार्थ—मनुष्य पास रहनेवाले परमात्मा को नहीं देखता और पास रहनेवाले ईश्वर को छोड़ता भी नहीं, उस ईश्वर का यह काव्य देखो जो न मरता है, न जीर्ण होता है॥ ३२॥

वेद के इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि धर्म के विषय में केवल मन्त्रसंहिता, मूलवेद ही प्रमाण है। शेष सम्पूर्ण ऋषिकृत ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण तथा वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण हैं। जब स्वामी दयानन्दजी का फ़ैसला वेदानुकूल है तो फिर आप और आपके याज्ञवल्क्य के लेख को मानकर ऐरे-ग़ैरे-नत्थूख़ैरे ग्रन्थों को धर्म में वही प्रमाण मानेगा कि जिसकी अक़्ल का दिवाला निकल चुका होगा।

(४७९) प्रश्न—वेद दो भागों में विभक्त है—एक, मन्त्रभाग है और दूसरा, ब्राह्मणभाग। स्वामीजी ने इन दोनों के गले पर छुरी चलाने का उद्योग किया है। —पृ० ६३, पं० २२

उत्तर—वेद दो भागों में विभक्त नहीं है, अपितु वेदविषय दो विभागों में विभक्त है। एक तो मूल मन्त्रसंहिता भाग कि जिसका नाम वेद है। दूसरा भाग वेदों का ऋषिकृत भाष्य है जिसका नाम ब्राह्मण है। स्वामीजी से पूर्व आर्यजाति को इस भ्रम में स्वार्थी लोगों ने डाल रक्खा था कि मन्त्रसंहिता और उनका भाष्य, अर्थात् ब्राह्मण इन दोनों का ही नाम वेद है और इस आड़ में ब्राह्मणों के नाम से कई वेदविरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ बना डाले और शतपथादि ब्राह्मणों में भी वेदविरुद्ध बातों का प्रक्षेप कर दिया और इस प्रकार से वास्तविक वेदों को घपले में डालकर वैदिक धर्म का सर्वनाश कर मनमाने वेदविरुद्ध सिद्धान्तों का प्रचार करके आर्यजाति के धर्म, साहित्य तथा सभ्यता और देश को तेज छुरे से क़त्ल कर आर्यजाति को नष्ट कर रहे थे। ऋषि दयानन्दजी ने जाति की इस शोचनीय अवस्था को देखकर उसे भूलभूलय्याँ के चक्र से निकालकर सीधी सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया और बतलाया कि मूल वेदमन्त्रसंहिता जोकि ईश्वरकृत है वही वेद है, शेष ब्राह्मणादि ग्रन्थ सब उस मूल मन्त्रसंहिता का ऋषिकृत भाष्य हैं। वे वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक वे मूल मन्त्रसंहिता वेद के सिद्धान्तों के अनुकूल हों; जहाँ

पर उनमें भी कोई बात वेद के विरुद्ध हो वे मानने के योग्य नहीं है, अर्थात् वेद स्वतः-प्रमाण तथा ब्राह्मणग्रन्थ परतःप्रमाण हैं। जो आर्यजाति ऋषि दयानन्दजी से पहले अपने धर्मग्रन्थ का कोई निश्चय ही न कर पाती थी और अपने धर्म को बे-बुनियाद जानकर लड़खड़ाती हुई दूसरे धर्मों में प्रवेश कर रही थी, आज ऋषि दयानन्दजी की कृपा से वेदों की मज़बूत चट्टान पर अपने धर्म की बुनियाद को स्थिर करके मत-मतान्तरों को धर्मयुद्धार्थ ललकार रही है और अपने भागे हुए सिपाहियों को वापस लाकर फिर से अपनी सेना में भरती कर रही है। इसकी इस बहादुरी को देखकर विरोधी दलों के नेता भी वैदिक धर्म की सेना में भरती हो रहे हैं और वह दिन बहुत निकट है जबकि संसार में वैदिक धर्म का झण्डा लहराता हुआ नज़र आवेगा। यह सब देश-उद्धारक, वेदप्रचारक ऋषि दयानन्दजी की ही कृपा का परिणाम है।

(४८०) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदसंज्ञाविचार में लिखते हैं कि "(१) ब्राह्मणग्रन्थ पुराण हैं। वे ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि उनके नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी हैं। (२) ब्राह्मणग्रन्थ ईश्वरोक्त नहीं हैं, किन्तु महर्षि लोगों ने बनाये हैं। (३) वे वेद नहीं हैं, अपितु वेदों का व्याख्यान हैं। (४) एक कात्यायन ऋषि को छोड़कर अन्य किसी ऋषि ने इनके वेद होने की साक्षी नहीं दी। (५) ब्राह्मणों में इतिहास है इस कारण भी वे वेद नहीं हो सकते, अतएव पुराण हैं", इस लेख पर गूढ़ विचार करना और विचार द्वारा फल निकालना यह प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य का कर्तव्य है। —पृ० ६४, पं० १

उत्तर—आपने स्वामीजी का पूरा पाठ नहीं दिया। ऋषि ने यों लिखा है कि--

"अथ कोऽ यं वेदो नाम? मन्त्रभागसंहितेत्याह। किञ्च मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति। मैवं वाच्यम्। न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति। कुतः पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धिरचित्वाच्चेति"।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदसंज्ञाविचारः

भाषार्थ—"**(प्रश्न)** वेद किनका नाम है **(उत्तर)** वेद संहिताओं का **(प्रश्न)** जो कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मणग्रन्थों का नाम वेद है फिर ब्राह्मणभाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते? **(उत्तर)** ऐसा मत कहो। ब्राह्मणों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती। क्यों, उनकी पुराण-इतिहास संज्ञा होने से, वेदों के व्याख्यान होने से, ऋषिकृत होने से, अनीश्वरोक्त होने से, कात्यायन के बिना दूसरे ऋषियों द्वारा इनको वेदसंज्ञा में न स्वीकार करने से, मनुष्यों की बुद्धि से रचे हुए होने से"। यह स्वामीजी का पूरा लेख है। अब आप इसपर विचार करने की कृपा करें।

(४८१) प्रश्न—प्रथम पुष्टि में यह दिखलाया है कि ब्राह्मणग्रन्थों की पुराण (इतिहास) कल्प, गाथा, नाराशंसी संज्ञा है। इस कारण इनकी वेद संज्ञा नहीं हो सकती। इस पुष्टि में प्रमाण कुछ भी नहीं दिया, केवल लेख लिखकर आज्ञामात्र दी है। —पृ० ६४, पं० १२

उत्तर—आप अपनी चालाकी से जनता को धोखा देना चाहते हैं, किन्तु हम आपको ऐसा करने नहीं देंगे। स्वामीजी ने प्रथम हेतु में केवल '**पुराणेतिहाससंज्ञत्वाद्**—ब्राह्मणों की पुराण, इतिहास संज्ञा होने से', ऐसा लिखा है। आपने अपनी चालाकी से इस प्रश्न में इतिहास शब्द को उड़ा ही दिया जिसको हमने कोष्ठ में दे दिया है। और यही ब्राह्मणों के वेद न होने में सबसे बड़ा हेतु है। आप कहते हैं कि स्वामीजी ने इसमें प्रमाण कुछ भी नहीं दिया। सो श्रीमान्जी! प्रमाण तो उसे नज़र आवे जिसके आँखें हों। जिसके आँखें ही नहीं उसे नज़र क्या ख़ाक आना था? स्वामीजी ने इस प्रतिज्ञा के आगे ही वेद में इतिहास का खण्डन करते हुए '**त्र्यायुषं जमदग्नेः**

कश्यपस्य' इत्यादि यजुः० ३।६२ में आये हुए 'जमदग्नि' तथा 'कश्यप' शब्दों का 'चक्षु' तथा 'प्राण' अर्थ सिद्ध करके बतलाया है कि वेदों मं ये नाम किसी ऋषि वा मनुष्यों के नहीं हैं, अपितु अन्य पदार्थों के वाचक हैं, जैसाकि स्वामीजी ने लिखा है—

'यथा ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेखपूर्वका लौकिका इतिहासाः सन्ति न चैवं मन्त्रभागे। अतोऽर्थाभिधायकैर्जमदग्न्यादिभिः शब्दैरर्थमात्रं वेदेषु प्रकाश्यते। अतो नात्र मन्त्रभागे हीतिहासलेशोप्यस्तीत्यवगन्तव्यम्। अतो यच्च सायणाचार्यदिभिर्वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद् भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम्। तथा ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादि-नामास्ति न ब्रह्मवैवर्तश्रीमद्भागवतादिनां चेति निश्चीयते'।

—(ऋग्वेदादि० वेदसंज्ञा० त्र्यायुषं मन्त्रं पर)

भाषार्थ—''जैसे ब्राह्मणग्रन्थों में मनुष्यों के नाम लिखते हुए लौकिक इतिहास हैं, वैसे मन्त्रभाग में नहीं हैं। इसलिए अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले 'जमदग्नि' आदि शब्दों से अर्थमात्र ही वेदों में प्रकाश किया जाता है। इसलिए यहाँ मन्त्रभाग में इतिहास का लेश भी नहीं है, ऐसा जानना चाहिए, इसलिए जो सायणाचार्य आदि ने वेदप्रकाश आदि में जहाँ कहीं इतिहास वर्णन किया है, वह भ्रममूलक ही है, ऐसा मानना चाहिए तथा ब्राह्मणग्रन्थों का ही पुराण, इतिहास आदि नाम है, ब्रह्मवैवर्त तथा श्रीमद्भागवतादि का नहीं, ऐसा निश्चित ही है''।

अब देखिए, स्वामीजी ने अपनी प्रथम पुष्टि में कितना प्रबल प्रमाण दिया है। क्या किसी पौराणिक ने माता का दूध पिया है जो वेदों में लौकिक मनुष्यों का इतिहास सिद्ध कर सके? जिन पुस्तकों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास होते हैं मानना पड़ता है कि वे पुस्तकें उन मनुष्यों के जन्म के पश्चात् बनाई गई हैं। चूँकि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान है, अतः उसमें लौकिक मनुष्यों के इतिहास नहीं हैं और ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास हैं, अतः मानना पड़ेगा कि ब्राह्मणग्रन्थ अनादि ईश्वररचित नहीं हैं अपितु मनुष्यकृत हैं, अतः वे वेद नहीं कहे जा सकते, अपितु ब्राह्मणग्रन्थों का नाम ही इतिहास-पुराण है, भागवतादि कपोलकल्पित नवीन ग्रन्थों का नाम इतिहास-पुराण नहीं है।

(४८२) प्रश्न—जब ब्राह्मणग्रन्थों की पुराण संज्ञा होते हुए कल्प संज्ञा हो जाती है, पुराण और कल्प संज्ञा होते हुए भी गाथा संज्ञा हो जाती है, और पुराण, कल्प, गाथा—इन तीन संज्ञाओं के रहते हुए भी चतुर्थ नाराशंसी संज्ञा हो जाती है, तो फिर हम किस प्रकार मान लें कि पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी—इन चार संज्ञाओं के रहते हुए वेदसंज्ञा नहीं हो सकती? अतएव सुतरां सिद्ध है कि जैसे हरि शब्द की शब्दसंज्ञा होते हुए भी प्रातिपदिक 'भ' तथा 'घी' संज्ञा हो जाती है और जैसे रघुनन्दन शुक्ल की शुक्ल संज्ञा होते हुए भी शास्त्री, बी०ए० तथा जज संज्ञा हो जाती है, वैसे ही ब्राह्मण की पुराण, गाथा, कल्प, नाराशंसी संज्ञा रहते हुए भी वेदसंज्ञा अवश्य है।

—पृ० ६५, पं० ४

उत्तर—एक पदार्थ की बहुत-सी संज्ञाएँ होने में किसी को भी शंका नहीं है, यदि वे संज्ञाएँ एक-दूसरी संज्ञा की अविरोधी हों; किन्तु एक ही पदार्थ की दो विरोधी संज्ञाएँ नहीं हो सकतीं। जैसेकि एक परमेश्वर की निराकार, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वव्यापक, अजर, अमर, अभय इत्यादि एक-दूसरे की अविरोधी सहस्रों संज्ञाएँ हैं किन्तु उसी ईश्वर की साकार, अन्यायी, दयाहीन, जन्मधारी, इत्यादि संज्ञाएँ नहीं हो सकतीं, क्योंकि ये संज्ञाएँ पहली संज्ञाओं की विरोधी हैं और जैसेकि हरि की शब्द, प्रातिपादिक 'भ' तथा 'घी' आदि संज्ञाएँ एक-दूसरे की अविरोधी होने से हो सकती हैं, परन्तु उसी हरि शब्द की नदी, गुण, वृद्धि आदि संज्ञाएँ नहीं हो सकतीं, क्योंकि ये संज्ञाएँ पहली संज्ञाओं की विरोधी हैं। और जैसे रघुनन्दन

शुक्ल की शास्त्री, बी०ए०, जज, आदि अनेक संज्ञाएँ परस्पर अविरोधी होने से हो सकती हैं, किन्तु उसी रघुनन्दन की कृष्ण, निरक्षर, मूर्ख और लण्ठ संज्ञाएँ नहीं हो सकतीं, क्योंकि ये संज्ञाएँ पहली संज्ञाओं की विरोधी हैं। इसी प्रकार से ही ब्राह्मणग्रन्थों की इतिहास, पुराण, गाथा, कल्प, नाराशंसी संज्ञाएँ परस्पर अविरोधी होने से हो सकती हैं, किन्तु उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि यह संज्ञा पहली संज्ञाओं की विरोधी है। कैसे विरोधी है? इसलिए कि वेद शब्द 'विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद् विचारणे तथा विद्लृ लाभे' से सिद्ध होता है, जिसके अर्थ यह हुए कि वेद उस ज्ञान का नाम है कि जिसके विचार से लाभ हो, तथा वह तीनों काल में स्थिर रहनेवाला अनादि, अनन्त, नित्य ज्ञान हो। चूँकि ब्राह्मणग्रन्थों का ज्ञान अनादि तथा नित्य नहीं है, क्योंकि उसमें लौकिक मनुष्यों का इतिहास विद्यमान है और जिस पुस्तक में जिस मनुष्य का इतिहास हो मानना पड़ेगा कि वह पुस्तक उस मनुष्य के जन्म के पीछे बनी है, अतः सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणग्रन्थ उन मनुष्यों के जन्म के पीछे बनाये गये जिन मनुष्यों का इतिहास उनमें विद्यमान है, अतः ब्राह्मणग्रन्थों का ज्ञान अनादि, तीनों कालों में स्थिर रहनेवाला, नित्य नहीं है और न ही ब्राह्मणग्रन्थ वेद कहलाने के योग्य हैं। चारों मूलवेद, मन्त्रसंहिता ईश्वर का ज्ञान होने से तीनों काल में सत्य, नित्य ज्ञान है और उनमें लौकिक मनुष्य के इतिहास भी नहीं हैं, अतः वही वेद कहाने के योग्य हैं। आप भी इस बात को अनुभव करते हैं कि इतिहाससंज्ञा वेदसंज्ञा की विरोधी है इसी कारण से आपने इस प्रश्न में भी इतिहाससंज्ञा को श्राद्ध के लड्डू की भाँति हड़प कर लिया है, किन्तु आपकी यह चलबाज़ी हमारी नज़रों से कैसे छिप सकती थी?

(४८३) प्रश्न—यस्या[१] वै[२] मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्पृथिवी पात्रम्। वैन्यो[३] धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक्। सोदाक्रमत् सा [४]सुरानाध्यच्छन्तामसुरा उपाह्वयन्त एहीति[५] तस्या विरोचनः प्राह्लादि[६] र्वत्स[९] आ[८]सीत्पृथिवी[७] पात्रम्। —अ० का० ८ अ० ५ सू० १३

उस गोरूप पृथिवी का वैवस्वत मनु वत्स बछड़ा हुआ। पृथिवी का पात्र बनाया, वेन के पुत्र महाराजा पृथु ने उस गौ से कृषि और सस्य (तृण) को दुहा, फिर वह गोरूप पृथिवी असुरों के पास पहुँची, असुरों ने उसका आह्वान किया। आह्वान के पश्चात् जब वह गौ असुरों के पास ठहर गई तब प्रह्लाद के पौत्र विरोचन को वत्स बनाकर पृथिवीपात्र में अपने भोजन को दुहा।

इस मन्त्र की पुराण, इतिहास संज्ञा रहने पर भी वेदसंज्ञा सिद्ध है, अतएव इसके वेद होने में कोई भी पुरुष मस्तक नहीं हिलाता। इसी उदाहरण को सम्मुख रख लें तो फिर वह कौन न्याय है जिसका आश्रय लेकर हम यह कहने को उद्यत हों कि ब्राह्मणों की वेद संज्ञा सिद्ध नहीं होती? —पृ० ६६, पं० १

उत्तर—आपने इस प्रमाण में सनातनधर्म की सचाई, ईमानदारी तथा सभ्यता का दिवाला निकालकर छल-कपट-धोखे तथा असत्य भाषण का प्रदर्शन किया है। यदि ऐसे प्रमाणों के आधार पर ही सनातनधर्म्म का जीवन निर्भर है तो आज नहीं तो कल अवश्य ही इसकी 'राम नाम सत् है' होने में कोई सन्देह ही नहीं है। भला! यह तो बतलाइए कि प्रमाण को लिखते समय क्या आपने अथर्ववेद का पुस्तक उठाकर देख भी लिया था वा वैसे ही किसी की पुस्तक में से पाठ नक़ल कर दिया था? आपको ऐसे अशुद्ध प्रमाण देने की शरम में पानी में नाक डुबोकर मर जाना चाहिए, किन्तु शरम क्या कुत्ती है जो मरदों के पास भी फटक जावे? लीजिए, आपका प्रमाण निम्नलिखित हेतुओं से अशुद्धता, छल-कपट तथा धोखे का नमूना है—

(१) यहाँ अथर्ववेद में 'यस्या' पाठ नहीं है अपितु 'तस्य' है।

(२) यस्या से आगे तथा मनु से पूर्व "वै" पाठ पुस्तक में नहीं है।

(३) 'वैन्यो' पाठ से पूर्व 'तां पृथी' पाठ है जो आपने लुप्त कर दिया है।

(४) 'असुरान्' तथा 'अगच्छत्' के बीच में ' 'आधि' पाठ आपकी ही करतूत है, यह पद वेद में नहीं है।

(५) 'एहि' पद से पूर्व 'माय' पद वेद में है जो आपने चुरा लिया है।

(६) वेद में 'प्राह्रादि' पाठ है जिसका अर्थ है—'प्रभूत शब्द करनेवाली बिजली', किन्तु आपने इतिहास साबित करने की धुन में वेद के पाठ को बदलकर 'प्राह्लादि' बना दिया है।

(७) यहाँ मन्त्र में 'पृथिवी पात्रम्' पाठ नहीं है अपितु 'अयस्पात्रं पात्रम्' पाठ है जिसे आपने अशुद्ध रूप से तब्दील कर दिया है।

(८) अथर्ववेद के आठवें काण्ड में केवल १० सूक्त हैं, आपने बिना देखे ही सूक्त १३ पते में लिख मारा।

(९) ये मन्त्र अध्याय ५ के नहीं हैं अपितु अध्याय ४ के हैं।

(१०) आपने प्रकरण को घपले में डालने के लिए अध्याय चार के 'तस्य १०' 'तां पृथी ११' इन दो मन्त्रों को प्रथम लिखके 'ते कृषिं १२' इस मन्त्र को छोड़कर प्रकरण-विच्छेद कर दिया और इन दो मन्त्रों के पीछे 'सोदक्राम् सासुरान्१' तथा 'तस्या विरोचनः २' इन दो मन्त्रों को लिखके तथा 'तां द्विमूर्धा ३' तथा 'तां मायाम् ४' इन दो मन्त्रों को छोड़कर प्रकरण का विच्छेद कर दिया। सारांश यह कि आपने दो प्रकरणों के कुछ मन्त्र छोड़कर तथा कुछ को अशुद्ध लिखके 'आधा तीतर आधा बटेर' बना डाला और 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा' के कथनानुसार सनातनधर्म के 'लालबुझक्कड़' उपदेशक बन बैठे और लगे वेदों में इतिहास सिद्ध करने। श्रीमान्जी! यदि आप वेदों में से सृष्टि-उत्पत्ति के इतिहास को ढूँढना चाहें तो वह तो मिल जावेगा जैसे 'ऋतं च सत्यं १' 'समुद्रादर्णवाद् २' 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता ३' (ऋ० मं० १० सू० १९०) 'नासदासीत् इत्यादि १-७' (ऋ० १०।१२९) 'हिरण्यगर्भः यजुः० १३।१४' 'सहस्रशीर्षा इत्यादि पुरुषसुक्त यजुः० ३१' इत्यादि अनेक वेदमन्त्र आपको सृष्टि-उत्पत्ति के पुराण-इतिहास का वर्णन करनेवाले मिल जावेंगे किन्तु यदि आप वेदों में से लौकिक मनुष्यों के चारित्रिक इतिहास ढूँढना चाहें तो वे न मिलेंगे, क्योंकि वेद अनादि, नित्य, ईश्वर का ज्ञान है। ऐसे इतिहास ब्राह्मणग्रन्थों में ही मिल सकते हैं, क्योंकि वे ईश्वरकृत नहीं अपितु मनुष्यकृत हैं। ये अथर्ववेद के मन्त्र जो आपने पेश किये हैं इनमें भी लौकिक मनुष्यों के चरित्र का इतिहास विद्यमान नहीं है, अपितु इस अध्यय के सब मन्त्रों में 'विराट गौ से माया, स्वधा, कृषि, सस्य, ब्रह्म और तप के दोहन' का वर्णन है, अर्थात् समस्त सृष्टि से लाभ उठाने का वर्णन है। अब हम इन मन्त्रों का प्रकरणानुसार ठीक-ठीक अर्थ देते हैं—

सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति॥ १॥ तस्या विरोचनः प्राह्रादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम्॥ २॥ तां द्विमूर्धात्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक्॥ ३॥ तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ ४॥ —अथर्व० ८।१०।४

भाषार्थ—वह माया अर्थात् प्रकृति ऊपर उठी, अर्थात् कारणरूप से कार्यरूप में आई। वह शिल्पियों को प्राप्त हुई। उसको शिल्पियों ने ग्रहण किया मानो बुलाते हैं हे माया! आ॥ १॥ उस प्रकृति की प्रभूति शब्द करनेवाली बिजली पुत्र के समान थी और धातुमय पदार्थ पात्र था॥ २॥ उस माया को दो मूल धारण करनेवाले बुद्धिमान् इंजीनियरों ने दुहा, अर्थात् उससे लाभ उठाया॥ ३॥ उस प्रकृति के आश्रय शिल्पीजन अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। जो इस प्रकार के तत्त्व को जानता है वह औरों की आजीविका निर्वाह कराने में समर्थ होता है॥ ४॥

इन मन्त्रों में 'असुर' शिल्पी, 'माया' के प्रकृति, 'प्राह्रादि' के 'प्रभूत शब्द करनेवाली', विरोचन के बिजली, 'अयः' के धातुमय 'द्विमूर्धा' के बुद्धिमान्, 'अत्व्यं' के इंजीनियर अर्थ हैं।

इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि शिल्पीजन प्रकृति से लाभ उठाकर अपना और दूसरों का निर्वाह करें। इन मन्त्रों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास का लेशमात्र भी नहीं है, अतः इनकी पुराणसंज्ञा नहीं है।

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति॥ ९ ॥ तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम्॥ १०॥ तां पृथी वैन्यो धोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक्॥ ११॥ ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद॥ १२॥

—अथर्व० ८।१०।४

भाषार्थ—वह पृथिवी प्रकट हुई। उसको मनुष्यों ने प्राप्त किया।। उसको मनुष्यों ने ग्रहण किया बुलाने की भाँति हे पृथिवी आ॥ ९॥ विविध प्रकार से प्रजाओं का बसानेवाला बुद्धिमान् मनुष्य उस पृथिवी का पुत्र की भाँति था। पृथिवी पात्र थी॥ १०॥ उस पृथिवीरूप गौ को महान् राजा ने दूहा, अर्थात् उससे लाभ उठाया। उससे खेती तथा अनाज प्राप्त किया॥ ११॥ वे मनुष्य कृषि और अनाज पर ही प्राण धारण करते हैं। जो इस रहस्य को जानता है वह कृषि द्वारा ही बहुत धन-धान्यसम्पन्न और मनुष्यों को जीविका देने में समर्थ होता है॥ १२॥

इन मन्त्रों में 'इरावती' के पृथिवी, 'वैवस्वतो मनु' के विविध प्रकार से प्रजाओं को बसानेहारा मनीषी पुरुष, 'वैन्यः पृथी' के नाना काम्य पदार्थों का स्वामी राजा, अर्थ हैं। इन मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य लोग पृथिवी से लाभ उठाकर अपना और दूसरों का निर्वाह करें। इन मन्त्रों में लौकिक मनुष्यों के इतिहास, चरित्र का लेशमात्र भी नहीं है, अतः इनकी पुराण संज्ञा नहीं है। चूँकि ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास विद्यमान हैं, अतः ब्राह्मणग्रन्थों की वेदसंज्ञा नहीं हो सकती, अपितु पुराणसंज्ञा है और ब्राह्मणग्रन्थों की पुराणसंज्ञा होते हुए वेदसंज्ञा नहीं हो सकती।

(४८४) प्रश्न—'चत्वारि शृंगा' इस वेदमन्त्र में कल्प की वेदसंज्ञा वेद ने ही मानी है और इसपर यास्कमुनि ने निरुक्त भी किया है, जबकि कल्प की वेदसंज्ञा स्वतःप्रमाण भगवान् वेद ही कह रहा है और उसके साक्षी वेदज्ञाता मुनि यास्क हैं फिर हम किसी के कहने से किस प्रकार मान लें कि कल्पसंज्ञा होने पर वेदसंज्ञा नहीं होती? —पृ० ६६, पं० १५

उत्तर—आपने वेदमन्त्र और उसके निरुक्त को भी खूब समझा है, परन्तु यह नहीं बतलाया कि वेदमन्त्र के अथवा निरुक्त के वे कौन-कौन-से पद हैं जो वेद की कल्पसंज्ञा करते हैं। आप यही नहीं जानते कि कल्प कहते किसको हैं। सुनिए, कल्प का लक्षण यह है—

कल्पा मन्त्रार्थसामर्थ्यप्रकाशकाः। तद्यथा। इषे त्वोर्जे त्वेति वृष्ट्यै तदाह। यदाहेषे त्वोत्यूर्जे त्वेति यो वृष्टादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाह। सविता वै देवानां प्रसविता सवितृप्रसूताः॥

—शतपथ० १।७।१।२, ४ (ऋग्वेदा० वेदसंज्ञा)

कल्प उसको कहते हैं जहाँ पर मन्त्र के अर्थ की सामर्थ्य प्रकाशित की जावे, जैसेकि उपर्युक्त प्रमाण में शतपथ ने यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र १ की 'इषे त्वोर्जे' इत्यादि प्रतीक देकर मन्त्र के अर्थ की सामर्थ्य को प्रकाशित किया है कि यदि वृष्टि के लिए यज्ञ करना हो तो उस यज्ञ में इस वेदमन्त्र को प्रयुक्त किया जावे।

अब बतलावें कि **'चत्वारि शृंगा'** इस वेदमन्त्र में कौन-से मन्त्र की प्रतीक देकर उसके अर्थ के सामर्थ्य को प्रकाशित किया है? यदि नहीं तो आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा मिथ्या है कि इस मन्त्र की कल्पसंज्ञा है। हाँ, आपके इस प्रमाण से यह अवश्य सिद्ध हो गया कि कल्प और ब्राह्मण वेद नहीं हैं, जैसेकि—

चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥

—यजुः० १७।९१

चत्वारि शृंगेति वेदा वा एत उक्ताः। त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि। द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये। सप्त हस्तासः सप्त च्छन्दांसि। त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैः। वृषभो रोरवीति रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति महो देव इत्येष हि महान् देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय॥१॥ —निरुक्ते परिशिष्टम् १३।७।१

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम जिस इसके प्रातःसवन, मध्यान्दिनसवन और सायंसवन ये तीन पाद; चार वेद सींग; दो अस्तकाल और उदयकाल शिर; जिस इसके गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं; जो मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ बड़ा प्राप्त करने योग्य सुखों को सब ओर से वर्षानेवाला यज्ञ प्रातः, मध्याह्न और सायंसवन क्रम से शब्द करता हुआ मनुष्यों में अच्छे प्रकार प्रवेश करता है, इसका अनुष्ठान करके सुखी होवो॥९१॥

इस मन्त्र के निरुक्त में साफ़ लिखा है कि यह यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प, इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ है। आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० ७५ पर इसके यही अर्थ स्वीकार किये हैं। यदि ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद होते तो यहाँ पर ब्राह्मण और कल्प को मन्त्र से भिन्न क्यों प्रतिपादन किया जाता? इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु ब्राह्मणग्रन्थों की कल्प संज्ञा है और ब्राह्मणग्रन्थों की कल्पसंज्ञा होते हुए वेदसंज्ञा नहीं हो सकती।

(४८५) प्रश्न—'इदं जना इत्यादि अथर्व० कां० २०' का अर्थ है कि 'हे मनुष्यो! इस बात को सुनो। मनुष्य स्तुत किये जाते हैं। साठ सहस्र और नव्वे कौरव्य राजा ने दान दिये हैं।' इस मन्त्र की नाराशंसी संज्ञा रहने पर भी वेद संज्ञा में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती, फिर हम किस आधार का अवम्लबन कर कह सकते हैं कि नाराशंसी संज्ञा होने पर वेदसंज्ञा नहीं होती?

—पृ० ६६, पं० २५

उत्तर—निरुक्त ने नाराशंसी का अर्थ यों लिखा है—

नराशंसः॥४॥

नराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति॥१॥

अग्निरिति शाकपूणिः नरैः प्रशस्यो भवति॥२॥ —निरुक्त अध्याय ८ खं० ७

नृणां यत्र प्रशंसा नृभिर्यत्र प्रशस्यते ता ब्राह्मणनिरुक्ताद्यन्तर्गताः कथा नाराशंस्यो ग्राह्याः नातोऽन्या इति।

—ऋग्वेदादि० वेदसंज्ञा०

भाषार्थ—जिनमें नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर, धर्म आदि पदार्थविद्याओं और मनुष्यों की प्रशंसा की है उनको नाराशंसी कहते हैं। सो ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रन्थों में जो-जो, जैसी-जैसी कथा लिखी है उन्हीं का इतिहासादि से ग्रहण करना चाहिए, अन्य का नहीं। चूँकि वेदों में लौकिक मनुष्यों की प्रशंसायुक्त गाथाएँ नहीं मिलतीं, अतः वेदों का नाम नाराशंसी नहीं कहा जा सकता। इस मन्त्र में किसी लौकिक मनुष्य के चरित्र की प्रशंसा नहीं है, अतः इस मन्त्र का नाम नाराशंसी कहना सर्वथा मिथ्या है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

इदं जना उपश्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे॥१॥

—अथर्व० २०।१२७

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आप लोग इस बात को कान लगाकर श्रवण करो कि प्रजाओं के नेता

पुरुषों के गुणों का यहाँ वर्णन किया जाता है। पृथिवी पर युद्ध या रमण-क्रीड़ा करनेहारे! राजन्! सेनापते! हम लोग साठ हज़ार नव्वे पुरुषों को शत्रुओं की नाशकारी सेना के दलों में नियुक्त करें॥ १॥

इस मन्त्र में किन्हीं लौकिक पुरुषों के प्रशंसायुक्त चरित्रों का वर्णन नहीं है, अतः इस मन्त्र की नाराशंसी संज्ञा नहीं है। इस प्रकार के प्रशंसायुक्त चरित्रों का वर्णन ब्राह्मणग्रन्थों में ही मिलता है, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं है, अपितु नाराशंसी हैं और ब्राह्मणग्रन्थों की नाराशंसी संज्ञा होते हुए वेदसंज्ञा नहीं हो सकती।

आपने किसी वेदमन्त्र की गाथा और इतिहास संज्ञा सिद्ध करके वेदसंज्ञा सिद्ध करने का यत्न नहीं किया और ऊपर के मन्त्रों की पुराण, कल्प, नाराशंसी संज्ञा होते हुए आप वेदसंज्ञा सिद्ध नहीं कर सकते, अतः सिद्ध हुआ कि वेदों की इतिहास, पुराण, कल्प, नाराशंसी संज्ञा नहीं है अपितु ये संज्ञाएँ ब्राह्मणग्रन्थों की हैं और ब्राह्मणग्रन्थ ये संज्ञाएँ रखते हुए वेदसंज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकते, अतः स्वामीजी का प्रथम हेतु सर्वथा सत्य है।

(४८६) प्रश्न—द्वितीय हेतु में यह दिखलाया गया है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं, किन्तु महर्षि लोगों के बनाये हैं। स्वामी के मत में वेद और ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक-जैसा है। इनका मन्तव्य है कि "अग्नि, वायु, रवि, अङ्गिरा इन चार ऋषियों द्वारा वेद संसार में आया, अर्थात् ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि-समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक ज्ञान इनके अन्तःकरण में प्रकाशित किया, उसी को इन्होंने संसार में फैलाया, इसी ज्ञान का नाम वेदज्ञान है। ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव होने में इनका मत है कि "अनेक ऋषि समाधिस्थ हुए और उसी में परमात्मा ने उनके अन्तःकरण में वेदार्थ ज्ञान प्रकाशित किया, उस ज्ञान का नाम ब्राह्मणग्रन्थ है।" यदि वास्तव में दोनों में ही ज्ञान ईश्वर का है तब दोनों ही ईश्वर के ज्ञान हैं। ईश्वरज्ञान रहने पर भी एक ईश्वर-प्रणीत और द्वितीय ऋष-प्रणीत लिखना प्रमाद है। न कोई अग्नि, न कोई वायु और न कोई रवि ऋषि था। अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे, किन्तु उनके द्वारा वेद का प्रादुर्भाव होना यह वैदिक साहित्य में कहीं पर भी सिद्ध नहीं है, अतएव ये समस्त मानसिक कल्पनाएँ हैं। मानसिक कल्पना रहने पर भी ये सत्य मानी जाती हैं। जब इसके मत में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ईश्वरीय ज्ञान हैं फिर ब्राह्मणभाग ऋषि-प्रणीत किस प्रकार हुआ, इसपर पाठकवर्ग विचार करें '**स यथार्द्रैधा** इत्यदि शत० १४ प्र० ५ ब्र० ४ कं० १०' में भी मन्त्र, ब्राह्मण, पुराणादि समस्त ईश्वरीय ज्ञान का प्रादुर्भाव एक-जैसा तुल्य है, फिर हम एक को ईश्वर-प्रणीत और द्वितीय को ऋषि-प्रणीत किस न्याय को आगे रख कहने का साहस कर सकते हैं? इससे सिद्ध हुआ कि ब्राह्मणग्रन्थ ऋषि-प्रणीत नहीं किन्तु ईश्वरप्रणीत हैं, अतः ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद ही हैं। —पृ० ६७, पं० ६

उत्तर—प्रथम आपने जो लिखा है कि अंगिरा ऋषि तो था, किन्तु उसके द्वारा वेद प्रादुर्भाव नहीं हुआ, सो श्रीमान्जी! अथर्ववेद के साथ तो अंगिरा ऋषि का ही नाम आता है, जैसेकि—

अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। —अथर्व० १० सू० ७ मं० २०

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः। —मनु० ११।३३

अब रही बात अग्नि, वायु, तथा रवि ऋषि की, सो इसमें प्रमाण देखें—

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥ —शत० ११।४।२।३

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् "ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्'। —ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२ [सायणभाष्यभूमिका]

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ —मनु० १।२३

सो चार ऋषियों से चार वेदों का प्रकाशित होना तो सिद्ध है। दूसरे, आपने यह सिद्ध करने के लिए कि मन्त्र तथा ब्राह्मण का प्रादुर्भाव एक-जैसा ही ईश्वर से हुआ है, अतः ब्राह्मण भी ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद है "स यथार्द्रैधा" इत्यादि प्रमाण दिया है। सो श्रीमान्‌जी! आपने यही प्रमाण (नं० ४६९ में) यह सिद्ध करने के लिए दिया है कि 'पुराण ईश्वर से प्रकट हुए हैं' जिसका उत्तर हमने वहाँ पर ही यथायोग्य दे दिया है। इस प्रमाण में ब्राह्मण शब्द नहीं है। आप ब्राह्मणों को पुराण मानते नहीं। फिर आपका इस प्रमाण में स्थित पुराण शब्द से ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव सिद्ध करना 'वदतोव्याघातदोष' है, अर्थात् अपने मन्तव्य का स्वयं खण्डन करना है। इस प्रमाण में किन्हीं विशेष ग्रन्थों का वर्णन नहीं है, अपितु वेदों से सम्पूर्ण विद्याओं के प्रादुर्भाव का वर्णन है, अतः ईश्वर से ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव में आपका यह प्रमाण देना सर्वथा निर्मूल है।

तीसरे, आपका यह लिखना कि स्वामीजी ने वेद तथा ब्राह्मणों का प्रादुर्भाव एक ही जैसा लिखा है आपकी बड़ी भारी भूल है, क्योंकि स्वामीजी ने दोनों का प्रकार तथा समय भिन्न-भिन्न लिखा है, जैसाकि—

"प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा—इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया"। —सत्यार्थ०सप्तम समु०, 'अग्नेर्ऋग्वेदः' के अर्थ में

स्वामीजी के उपर्युक्त लेख से आपका यह लिखना झूठ सिद्ध हो गया कि "ये चार ऋषि समाधि में बैठे और उस समाधि-समय में ईश्वर ने अपना अलौकिक ज्ञान इनके अन्तःकरण में प्रकाशित किया।" उन चार ऋषियों को समाधि में बैठने की आवश्यकता न थी, क्योंकि वे आदिसृष्टि में होने के कारण समाधिविद्या को भी न जानते थे, अतः परमात्मा ने उन चार ऋषियों के आत्मा में शब्द-अर्थ-सम्बन्ध के ज्ञानसहित चारों वेदों का प्रकाश किया और उन्होंने अन्य लोगों को पढ़ाया। यदि वे चार ऋषि आदि से ही वेद के शब्द-अर्थ-सम्बन्ध को न जानते तो वे दूसरों को क्या और कैसे पढ़ाते, जैसेकि—

"इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्यों को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते।" —सत्यार्थ० समु० ७

इससे सिद्ध है कि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चारों के आत्मा में तो परमात्मा ने आदिसृष्टि में ही शब्द-अर्थ-सम्बन्धसहित चारों वेदों का ज्ञान प्रकाशित किया, उन्होंने दूसरों को पढ़ाया, उसके पश्चात् ऋषियों को जब-जब, जिन-जिन मन्त्र के विषय में विशेष अर्थों के जानने की आवश्यकता पड़ी तब-तब समाधिस्थ होकर उन-उन मन्त्रों के अर्थों पर विचार किया और परमात्मा ने उनको अर्थ जनाया, उन्होंने भी उन अर्थों का प्रचार किया और लोगों को पढ़ाया, तब उन मन्त्रों के साथ उन ऋषियों का नाम लिखा गया जैसाकि "जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ उस ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है।" —सत्यार्थ० समु० ७

इन ऋषि-महात्माओं से वेदार्थ को पढ़कर कई ऋषियों ने ग्रन्थरचना की। जिन ग्रन्थों में वह वेदार्थ भी लिखा तथा ऋषि-मुनियों के इतिहास भी लिखे, उन ग्रन्थों का नाम ब्राह्मणग्रन्थ रखा गया, जैसाकि—

"**प्रश्न**—वेद संस्कृतभाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृतभाषा को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

उत्तर—ईश्वर ने जनाया और धर्मात्मा, योगी, महर्षि लोग जब-जब, जिस-जिस मन्त्र के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब-

तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों की आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि-मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि-मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उका व्याख्यानग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ।" —सत्यार्थ० समु० ७

अब इन ब्राह्मणग्रन्थो में प्रथम तो ऋषि-मुनियों आदि का इतिहास है। दूसरे, एक-दूसरे से अर्थों के पढ़ने के कारण उन अर्थों में भी कुछ मनुष्य की बुद्धि की रचना का सम्मिलित होना सम्भव है, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद तथा स्वतःप्रमाण नहीं माने जा सकते, जैसाकि—

"जो (ब्राह्मणग्रन्थों को वेद) मानें तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें, क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत-से ऋषि-महर्षि और राजा आदि के इतिहास लिखे हैं। इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस-उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं"।

—सत्यार्थ० समु० ७

इन प्रमाणों से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि वेदों तथा ब्राह्मणों के प्रादुर्भाव का प्रकार एक नहीं है, अतः वेद ईश्वरकृत तथा ब्राह्मणग्रन्थ ऋषिकृत माने जाते हैं। इसी कारण से ब्राह्मणग्रन्थ वेद तथा स्वतःप्रमाण नहीं माने जा सकते।

(४८७) प्रश्न—तृतीय हेतु यह है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, क्योंकि वे वेद का व्याख्यान हैं, अतएव पुराण हैं। जो पुस्तक जिस विषय का व्याख्यान हो वह पुस्तक उस विषय का तो न रहे किन्तु अन्य विषय का हो जावे—यह लेख हमारी बुद्धि में समावेश नहीं करता। महर्षि पाणिनि ने व्याकरण के नियमरूप सूत्रों का निर्माण करके अष्टाध्यायी रची। उस अष्टाध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतञ्जलि ने विस्तृत व्याख्यान किया, उस विस्तृत व्याख्यान का नाम 'महाभाष्य' है। आज तक भारत का गौरव रखनेवाले 'महाभाष्य' को सभी विद्वान् व्याकरण का सर्वोपरि आदरणीय पुस्तक मानते हैं। जब व्याख्यानरूप महाभाष्य व्याकरण है तो फिर वेदों के व्याख्यानरूप ब्राह्मणग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार बन जावेंगे? महर्षि गौतम के न्यायदर्शन के ऊपर महर्षि वात्स्यायन ने भाष्य किया। आजतक सभी विद्वान् वात्स्यायनभाष्य को न्याय का ग्रन्थ बतलाते हैं तथा दर्शन के व्याख्यानरूप अन्य 'रामरुद्री', 'दिनकरी' आदि बड़े-बड़े पुस्तक न्याय के ग्रन्थ कहलाते हैं। जब न्याय-व्याख्यानरूप वात्स्यायनभाष्य तथा 'रामरुद्री', 'दिनकरी' न्याय के ग्रन्थ हैं तो फिर वेदों के व्याख्यानरूप ब्राह्मणग्रन्थ वेद कैसे न होंगे और वे पुराण किस प्रकार हो जावेंगे? —पृ० ६८, पं० १९

उत्तर—आप पौराणिक पक्षपात से ऐसे अन्धे हो रहे हैं कि आपको मूल और व्याख्यान के भेद का भी ज्ञान नहीं रहा। श्रीमान्‌जी! जिस विषय की मूल पुस्तक का व्याख्यान किया जावे वह व्याख्यान उस विषय का तो कहावेगा किन्तु वह उस विषय का मूल न बन जावेगा, अपितु व्याख्यान ही रहेगा। और जहाँ भी वह मूल से विरोध करेगा वहाँ वह उस विषय में प्रमाण न माना जावेगा अपितु वहाँ मूल ही प्रमाण माना जावेगा और यदि उसमें विरोधी अंश अधिक शामिल हो जावेगा तो वह व्याख्यान कहाने का भी हक़दार न रहेगा अपितु उसका नाम भी तब्दील हो जावेगा। यह नियम आपकी बुद्धि में समावेश क्यों करने लगा, क्योंकि आपके दिमाग़ में तो वेदविरुद्ध शिक्षा देनेवाले ऐरे-ग़ैरे-नत्थूखैरे भागवतादि ग्रन्थों को भी वेद ही सिद्ध करने का पागलपन समावेश कर रहा है। अष्टाध्यायी का व्याख्यान महाभाष्य व्याकरणविषयक ग्रन्थ तो कहावेगा किन्तु वह अष्टाध्यायी न कहला सकेगा और जहाँ भी वह अष्टाध्यायी से विरोध करेगा वहाँ पर वह प्रमाण न होगा अपितु अष्टाध्यायी प्रमाण होगी। न्यायदर्शन के व्याख्यान, वात्स्यायण,

रामरुद्री, दिनकरी आदि न्यायविषयक ग्रन्थ तो कहावेंगे किन्तु वे न्यायदर्शन न कहा सकेंगे और जहाँ वे न्यायदर्शन से विरोध करेंगे वहाँ वे प्रमाण न होंगे अपितु न्यायदर्शन ही प्रमाण होगा। इसी प्रकार से ही वेदों के व्याख्यान ब्राह्मण आदि ग्रन्थ वेदविषय के ग्रन्थ तो कहा सकेंगे, किन्तु वेद न कहा सकेंगे और जहाँ उनका वेदों से विरोध होगा वहाँ वे प्रमाण न होंगे, अपितु वहाँ वेद ही प्रमाण होंगे, और चूँकि ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र–सम्बन्धी इतिहास शामिल हो गये हैं, इसलिए वेद के व्याख्यान तथा ब्राह्मणग्रन्थ नाम होते हुए भी उनका नाम पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी हो गया और यदि उनमें वेद के विरुद्ध सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, द्यूत, वेश्यागमन, चोरी, असत्यभाषण आदि कुकर्मों की आज्ञा देनेवाले पाठ शामिल कर दिये जावें और ऐसे काम करनेवाले पुरुषों का ही उनमें चरित्र भर दिया जावे तो वे भागवतादि ग्रन्थों के समान वेदों के व्याख्यान अथवा वेदविषयक ग्रन्थ भी कहाने के योग्य न रहेंगे, अत: ब्राह्मणग्रन्थों के वेद न होने में स्वामीजी का तृतीय हेतु सोलह आने सत्य है। जरा और भी सुनने की कृपा करें, चूँकि वेद सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार हैं और वेद में सम्पूर्ण विद्याओं का मूल विद्यमान है, अत: संसार की सम्पूर्ण विद्याओं के ग्रन्थ वेद में वर्त्तमान मूलविद्या के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है। उदाहरणार्थ चार उपवेद हैं, वे वेदों में वर्त्तमान मूलविद्याओं के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम अर्थवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और आयुर्वेद है और वेदों के छह अङ्ग भी वेद में वर्त्तमान मूल विद्याओं के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष है तथा वेदों के छह उपाङ्ग भी वेदों में वर्त्तमान मूलविद्याओं के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा है। दश उपनिषद् भी वेद में वर्त्तमान मूलविद्या, ब्रह्मविद्या के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक है। इसी प्रकार से ही ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद में वर्त्तमान मूलविद्याओं के ही व्याख्यान हैं, किन्तु उनका नाम वेद नहीं है अपितु उनका नाम शतपथ, ऐतरेय, सामविधान और गोपथ है और सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि आदि ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थ भी वेदों में वर्त्तमान धर्म के मूल सिद्धान्तों के ही व्याख्यान हैं, किन्तु इनका नाम वेद नहीं है और ये सम्पूर्ण वेदों के व्याख्यानरूप ग्रन्थ वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक वे वेद के अनुकूल हों किन्तु जहाँ पर भी ये वेद से विरोध करेंगे वहाँ ये प्रमाण न होंगे, अपितु वेद ही प्रमाण माने जावेंगे, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से स्वत:प्रमाण तथा ये सम्पूर्ण ग्रन्थ ऋषि, मुनि, मनुष्यकृत होने से परत:प्रमाण हैं। आशा है कि स्वामीजी का तृतीत हेतु कि 'ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, क्योंकि वे वेदों के व्याख्यान हैं' अब आपको पूर्ण रूप से समझ में आ जावेगा।

(४८८) प्रश्न—चतुर्थ हेतु में यह दिखलाया गया है कि 'ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, क्योंकि एक कात्यायण ऋषि को छोड़कर अन्य किसी ऋषि ने भी उनके वेद होने में साक्षी नहीं दी, अतएव वे पुराण हैं'। ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं इसको एक नहीं, समस्त ऋषियों ने माना है।

—पृ० ६९, पं० २६

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है और स्वामीजी की प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है कि ''कात्यायन ऋषि के विना किसी ने भी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना।''

आपके प्रमाणों की भी आगे परीक्षा हुई जाती है, निश्चिन्त रहें।

(४८९) प्रश्न—महर्षि जैमिनिजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या। —मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः। —मीमांसा० अ० २ सू० ३३

ऊपर के सूत्र का अर्थ है कि प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मन्त्र है। मन्त्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है।

कहिए, जैमिनी ने दो सूत्रों में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद माना या नहीं? पहले सूत्र में मन्त्रभाग को वेद बतलाया और दूसरे में शेष वेद को ब्राह्मण शब्द से याद किया।

—पृ० ७०, पं० १

उत्तर—आपने सूत्रों का अर्थ ठीक नहीं किया। जैमिनिजी तो इन सूत्रों में वेद तथा ब्राह्मणों को भिन्न-भिन्न मानते हैं। सूत्रों के वास्तविक अर्थ इस प्रकार हैं—

तच्चोदकेषु मन्त्राख्या॥ —मीमांसा अ० २ पा० १ सू० ३२

अर्थ—(तच्चोदकेषु) अग्निहोत्रादि कर्म के विधायक तथा सिद्धार्थ के अभिधायक वेदवाक्यों की **(मन्त्राख्या)** मन्त्रसंज्ञा जाननी चाहिए।

शेषे ब्राह्मणशब्दः। —मीमांसा अ० २ पा० १ सू० ३३

अर्थ—(शेषे) उक्त मन्त्रों के व्याख्यानभूत शतपथादि ग्रन्थों की **(ब्राह्मणशब्दः)** ब्राह्मण संज्ञा है।

इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं और स्वामीजी की यह प्रतिज्ञा कि कात्यायन के बिना किसी ऋषि ने ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं मानी, बिल्कुल सत्य है।

(४९०) प्रश्न—महर्षि गौतमजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसेकि—

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः॥ —न्याय द० अ० २ आ० १ सू० ५७

इस सूत्र में 'तत्' पद से वेद ही का ग्रहण है।

उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि उसके वाक्यों में असत्य, पूर्वापरविरोध, दो बार कहना इत्यादि दोष हैं।

असत्य में उदाहरण—**'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत्', 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः'** यहाँ वेद में असत्य दोष को दिखाने के लिए दोनों प्रमाण मन्त्रभाग के नहीं दिये अपितु ब्राह्मणभाग के दिये हैं। इससे सिद्ध है कि गौतममुनि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं। —पृ० ७०, पं० ११

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा ग़लत है कि इस सूत्र में 'तत्' शब्द से वेद का ग्रहण है। यहाँ 'तत्' शब्द से वेद का नहीं अपितु 'शब्द' का ग्रहण है और वह शब्द पद '**शब्दार्थ-व्यवस्थानादप्रतिषेधः**। न्याय० अ० २ आ० १ सू० ५५' में इस सूत्र से पूर्व मौजूद है, जिसकी ओर तत् शब्द इशारा कर रहा है। इसी बात को वात्स्यायन मुनि ने स्पष्ट कर दिया है, जैसाकि—

''तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः। शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति''॥

—वात्स्यायनभाष्य

भाषार्थ—'तत्' शब्द से शब्दविशेष का वर्णन भगवान् ऋषि गौतम करते हैं। शब्द का प्रमाणत्व न होगा।

अतः सूत्र का अर्थ यह हुआ कि उस शब्द का प्रमाण न हो सकेगा कि जिसमें अनृत, व्याघात, और पुनरुक्त दोष होंगे। यहाँ शब्द में दोष दिखाते हुए उपर्युक्त ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्य दिये हैं। वेद में दोष दिखाते हुए नहीं। इससे सिद्ध है कि गौतम मुनि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते अपितु लौकिक शब्दप्रमाण मानते हैं।

(४९१) प्रश्न—महर्षि कणादजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

द्रष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय। —वैशे०द०अ० १० आ० २ सू० ८

वेद में देखे हुए, जिनका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है उनका तथा जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी अनुष्ठान करना पारलौकिक फल के लिए माननीय है। दृष्ट और अदृष्ट फल दोनों का ही विधान ब्राह्मणग्रन्थों में है और सूत्र में दृष्टादृष्ट फल वेद में बतलाया गया है, अतः मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। —पृ० ७१, पं० ३

उत्तर—आपने सूत्र का अर्थ बिल्कुल अशुद्ध किया है। सूत्र का वास्तविक अर्थ इसप्रकार है—

(दृष्टप्रयोजनानाम्) इस जन्म तथा परजन्म दोनों में फल के जनक **(दृष्टानाम्)** वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से **(दृष्टाभावे)** इस जन्म में फल प्राप्त न होने पर विश्वास रखना चाहिए कि **(प्रयोगः)** उक्त कर्मों का अनुष्ठान **(अभ्युदयाय)** अगले जन्म में अवश्य फल देगा।

दृष्ट तथा अदृष्ट, इस जन्म परजन्म में फल देनेवाले कर्मों का विधान मूल मन्त्रसंहिता वेद में विद्यमान है, जैसाकि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

—यजुः० ४०।३

यहाँ पर आत्मघात करनेवाले को इस जन्म तथा परजन्म में दुःख का भागी बताया है, अतः महर्षि कणादमुनि मन्त्रसंहिता को ही वेद मानते हैं, ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते हैं।

(४९२) प्रश्न—महर्षि वात्स्यायणजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

वात्स्यायणभाष्यम्—पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृष्यते। दृष्टार्थस्य वाक्यस्यानृतत्वाददृष्टार्थमपि वाक्यं 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम' इत्याद्यनृतमिति ज्ञायते—अर्थात् वेद में लिखा है जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे, परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होते, अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्ष फल में मिथ्यात्व है तो अदृष्ट फल जैसाकि 'अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है' यह भी मिथ्या है।

यहाँ वेद का मिथ्यात्व दिखाने के लिए चूँकि ब्राह्मणग्रन्थ के प्रमाण दिये हैं, अतः वात्स्यायनमुनि ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। —पृ० ७१, पं० १२

उत्तर—हम प्रश्न (नं० ४९०) के उत्तर में सिद्ध कर आये हैं कि वात्स्यायनमुनि 'तत्' पद से लौकिक शब्दप्रमाण का ग्रहण करके उपर्युक्त ब्राह्मणग्रन्थों के उदाहरण देते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वात्स्यायनमुनि ब्राह्मणग्रन्थों को लौकिक शब्दप्रमाण में मानते हैं, वेद को नहीं मानते। आपने वात्स्यायनभाष्य चुरा लिया है, वह इस प्रकार है—

"**तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवान् ऋषिः। शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति। कस्मात्? अनृतदोषात् पुत्रकामेष्टौ। पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या** इत्यादि।"

इतना पाठ चुराकर वात्स्यायनभाष्य पेश करना सत्यवादियों का काम नहीं है।

स्वामीजी की प्रतिज्ञा सत्य है कि कात्यायन के बिना कोई ऋषि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानता।

(४९६) प्रश्न—महर्षि व्यासजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्त्वात्। —वेदान्त० द० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म प्रत्यक्ष वा अनुमान का विषय नहीं है। केवल शब्द मूल है, अर्थात् शब्द ही प्रमाणक है। मूल शब्द यहाँ प्रमाणवाचक है। शब्द ही प्रमाण में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना वा कारण होना सिद्ध है। भगवान् व्यासजी ने उपनिषदों को वेद मानकर ही इस सूत्र को रचा है और उपनिषदें ब्राह्मणग्रन्थों का भाग हैं, इससे सिद्ध है कि व्यासजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं। —पृ० ७१, पं० २३

उत्तर—सूत्र का शब्दार्थ इस प्रकार है—

(श्रुतेः) श्रुति से **(तु)** किन्तु **(शब्दमूलत्वात्)** शब्द प्रमाणक होने से, अर्थात् श्रुति से वह ब्रह्म निराकार, निरवयव पाया जाता है फिर उसका परिमाण कैसे?

आपका यह कहना सर्वथा मिथ्या है कि व्यासजी उपनिषदों को वेद मानते थे, जैसेकि—

एतावानस्य महिमा। —यजुः० ३१।३

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्—यजुः० ४०।८, अतः व्यासजी ने श्रुति शब्द से मन्त्रसंहिता, मूलवेद का ही प्रमाण दिया है। इससे सिद्ध है कि व्यासजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते थे।

(४९४) प्रश्न—महर्षि बौधायण ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

मन्त्रब्राह्मणमित्याहुः। —बौधायन० सूत्र

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। —पृ० ७२, पं० १५

उत्तर—हमारे सामने इस समय बौधायनधर्मसूत्र विद्यमान है। इसके पीछे समस्त सूत्रों की पदसूची दी हुई है। इसमें ''मन्त्रब्राह्मण'' कोई पद ही विद्यमान नहीं है। सारांश यह कि पुस्तक में यह सूत्र है ही नहीं। आपने जनता को धोखा देने के लिए कपोलकल्पित सूत्र घड़कर बौधायनसूत्र का नाम लिख दिया। इस प्रकार के घृणित काम करते हुए आपको शरम आनी चाहिए!

इससे सिद्ध है कि बौधायण ऋषि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते।

(४९५) प्रश्न—महर्षि आपस्तम्ब ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही नाम वेद है। —पृ० ७२, पं० २०

उत्तर—यहाँ पर भी आपने सुफ़ेद झूठ बोला है। हमारे सामने आपस्तम्बगृह्यसूत्र विद्यान है। इसके पीछे भी समस्त सूत्रों की पदसूची दी हुई है। इस सूची में 'मन्त्रब्राह्मण' कोई पद विद्यमान नहीं है। सारांश यह कि इस पुस्तक में यह सूत्र क़तई नहीं है। अब आप सोचें कि आपको इस आत्मघात के लिए कौन-सा नरक मिलना चाहिए।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आपस्तम्ब ऋषि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते, अतः स्वामीजी की यह प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है कि—''कात्यायन के बिना किसी भी ऋषि ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना''।

(४९६) प्रश्न—महर्षि मनुजी ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, जैसाकि—

उदितऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनुजी का कथन है वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदय और अनुदयकाल में तथा सूर्य और नक्षत्रों के अदृश्य काल में भी हवन करना चाहिए।

''उदिते जुहोति'', ''अनुदिते जुहोति''।

ये सब श्रुतियाँ ब्राह्मणभाग की हैं और मनुजी ने इनको वैदिकी श्रुति कहा है। अब पाठक ही बतलावें कि मनु ने ब्राह्मणों को वेद माना या नहीं? —पृ० ७२, पं० २६

उत्तर—मनुजी महाराज ने इस श्लोक में ब्राह्मणग्रन्थों को श्रुति नहीं लिखा और न ही आपके दिये हुए ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्य इस श्लोक का आधार हैं, अपितु मनु ने इस श्लोक के द्वारा वेद के दो मन्त्रों में आये हुए होम के समय की व्याख्या की है। वेद मन्त्र ये हैं—

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता॥ ३॥

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥ ४॥

—अथर्व० कां० १९ सू० ५५

जो सायं-सायं हवन किया जाता है वह प्रातःकाल तक सुख का देनेवाला होता है॥ ३॥ जो प्रातः-प्रातः हवन किया जाता है वह सायंकाल तक सुख का देनेवाला होता है॥ ४॥ यहाँ पर इन मन्त्रों में यह शङ्का पैदा होती थी कि इन मन्त्रों में प्रातः और सायं शब्द दो-दो बार क्यों आया है? इसपर मनुजी समाधान करते हैं कि इन मन्त्रों में प्रातः तथा सायं शब्दों का दो-दो बार आना व्यर्थ नहीं है अपितु इनका प्रयोजन यह है कि वेद बतलाता है कि होम करने का समय (प्रातः) सूर्य उदय होने पर (प्रातः) प्रातः से प्रातः अर्थात् सूर्य उदय से पूर्व भी है। (सायं) शाम को सूर्य के रहते हुए (सायं) सायं से सायं अर्थात् सूर्य के अस्त होने पर भी हवन का समय है। सारांश यह कि हवनयज्ञ हर समय किया जा सकता है। इसी बात का मनुजी महाराज ने अपने श्लोक में वर्णन किया है कि—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

—मनु० २।१५

(उदिते) प्रातः और सायं सूर्य के विद्यमान होने पर **(अनुदिते)** सूर्य के निकलने से पहले **(समयाध्युषिते)** और सूर्य के अस्त होने के पश्चात् तारों की छाया में हवन-यज्ञ सर्वथा हर समय किया जा सकता है। यही वेद की श्रुति का अभिप्राय है॥ १५॥

इससे सिद्ध होता है कि मनुजी महाराज ब्राह्मणग्रन्थों को श्रुति या वेद नहीं मानते, अपितु चार मूलसंहिताओं को ही वेद वा श्रुति मानते हैं, अतः स्वामीजी की यह प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है कि—"कात्यायनमुनि के बिना किसी भी ऋषि ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना"।

(४९७) प्रश्न—ब्राह्मण वेद नहीं हैं, इसमें पाँचवाँ कारण यह बतलाया गया है कि ब्राह्मणों में इतिहास है, इस कारण वे वेद नहीं। इसपर हमारा कथन है कि मन्त्रभाग में भी इतिहास है जैसेकि "**सं मा तपत्यभितः**' इत्यादि ऋ० १।१०५' यह सारा सूक्त ही कुएँ में गिरे हुए त्रित को प्रकाशित हुआ। इस सूक्त में जो वाक्य हैं वे इतिहास-मिश्रित हैं। इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए निरुक्त ने भी इसमें इतिहास माना है। हमने यहाँ पर एक इतिहास दिखला दिया, किन्तु मन्त्रभाग में सैकड़ों इतिहास हैं। यदि इतिहास होने से ब्राह्मण वेद नहीं तो मन्त्रभाग भी वेद नहीं।

—पृ० ७३, पं० १०

उत्तर—इस मन्त्र में लेशमात्र भी लौकिक इतिहास नहीं है और न ही सारे सूक्त में कोई लौकिक इतिहास है। इस सूक्त में किसी लौकिक मनुष्य त्रित का इतिहास बतलाना पौराणिक कल्पना ही है, चाहे आप वर्णन करें चाहे आपका निरुक्त। देखिए, इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

सं मा तपत्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥

—ऋ० १।१०।८

भाषार्थ—हे असंख्य उत्तम विचारयुक्त वा अनेक उत्तम-उत्तम कर्म करनेवाले न्यायाधीश! आपकी प्रजा वा सेना में रहने और धर्म के गानेवाला मैं हूँ। उस मुझको औरों को मारने और पास में रहनेवाले मनुष्य आदि प्राणी जैसे एक पति को बहुत स्त्रियाँ दुःखी करती हैं ऐसे दुःख देते हैं। दूसरे के मन में व्यथा उत्पन्न करनेहारे मूषे जैसे अशुद्ध सूतों को काट-काटकर खाते हैं वैसे मुझे सन्ताप देते हैं, उन अन्याय करनेवाले जनों को आप यथावत् शिक्षा करें और मुझ पदार्थविद्या के जाननेवाले के पास से इस द्युलोक और पृथिवी की भाँति राजा प्रजाजनसमूह को अपना धन समझो॥ ८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। हे न्याय करनेवाले अध्यक्ष आदि मनुष्यो! तुम, जैसे

सौतेली स्त्री अपने पति को कष्ट देती है वा जैसे अपने प्रयोजनमात्र का बनाव-बिगाड़ देखनेवाले मूषे पराये पदार्थों का अच्छी प्रकार नाश करते हैं और जैसे व्यभिचारिणी वेश्या आदि कामिनी स्त्री दमकती हुई कामीजन के लिंग आदि रोगरूपी कुकर्म के द्वारा उसके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के करने की रुकावट से उस कामीजन को पीड़ा देती हैं, वैसे ही जो डाकू, चोर चवाई, अताई, लड़ाई-भिड़ाई करनेवाले झूठ की प्रतीति और झूठे कामों की बातों से हम लोगों को क्लेश देते हैं, उनको अच्छी प्रकार दण्ड देकर हम लोगों को तथा उनको भी निरन्तर पालो, ऐसा करने के बिना राज्य का ऐश्वर्य नहीं बढ़ सकता॥ ८॥

इसी प्रकार का अर्थ समस्त सूक्त का है, चूँकि वेदों में लौकिक मनुष्यों के इतिहासपरक चरित्रों का वर्णन नहीं है और ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास का वर्णन है, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं अपितु पुराण हैं। इस विषय में निम्नलिखित प्रमाणों को भी पढ़ने की कृपा करें—

यत्र क्वापि परमप्रमाणाधौरेयभूतेषु प्रथमं ग्रन्थेषु वेदशब्दोल्लेखस्ततश्च पुराणस्य। यथा तैत्तिरीयारण्यके। 'सह वै' इति प्रपाठके 'यद् ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानि कल्पान्। —तै० आ० २।९।१ ऋग्वेदो...इतिहासः पुराणं विद्या बृ० ४।१।२।....**कथ्यते। तत्र खलु वेदान्तः पात्येव कश्चिद्भागः पुराणपदवाच्यः 'अत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् इत्यादीनि सृष्ट्यादि प्रतिपादकानि पुराणानि। इति बृहदारण्यकस्थपुराणपदस्यापि 'असद्वा इदमग्र एवासीदित्यादि' एवंप्रकारिकयैव रीत्या श्रीभगवत्पूज्यपादा अपि बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये लिलिखुः। एवमन्यत्रापि।**

—ब्रह्मवैवर्त्तपुराण भाग २ भूमिका पृष्ठ २-३, आनन्दाश्रम पूना में छपा शालिवाहन शकाब्दः १८५८ ई० सन् १९३५

(४९८) प्रश्न—ब्राह्मणग्रन्थ पुराण नहीं हो सकते, पुराण तो ब्रह्मपुराणादि अठारह ही पुस्तक रहेंगे। —पृ० ७४, पं० १३

उत्तर—ये भागवतादि अष्टादश ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं, क्योंकि ये ग्रन्थ कपोलकल्पित और अत्यन्त नवीन हैं। इनका नाम किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं आता। रामायण तथा महाभारत में भी इन भागवतादि अठारह पुराणों का नाम नहीं है और इनके अन्दर असम्भव तथा वेदविरुद्ध गाथाएँ और शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं, अतः शतपथ आदि ब्राह्मणग्रन्थ ही पुराण कहाने के योग्य हैं, भागवतादि अठारह ग्रन्थ पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं।

(४९९) प्रश्न—प्रथम—किसी भी ब्राह्मण के आरम्भ या अन्त में पुराण शब्द नहीं है और न किसी काण्ड की समाप्ति पर ही पुराण शब्द है। जब उनमें पुराण का प्रयोग ही नहीं फिर उनको पुराण कैसे माना जावे? इसके विरुद्ध अठारह पुराणों के प्रति स्कन्ध पर 'इति श्री महापुराणे' लिखा है—आरम्भ में पुराण, अन्त में पुराण और प्रत्येक अध्याय में पुराण। —पृ० ७४, पं० १६

उत्तर—किसी ग्रन्थ का विषय जानने के लिए यह कोई कसौटी नहीं है कि उसके आदि, अन्त और प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर वह विषय लिखा हुआ हो, अपितु देखना यह होगा कि उस ग्रन्थ में विषय क्या प्रतिपादन किया गया है। उदाहरणार्थ रामायण तथा महाभारत के आदि और अन्त में इतिहास शब्द लिखा हुआ नहीं है और इनके प्रत्येक काण्ड, पर्व तथा अध्याय की समाप्ति पर भी इतिहास शब्द लिखा हुआ नहीं है तो क्या रामायण और महाभारत इतिहासग्रन्थ नहीं हैं? तथा आश्वलायणगृह्यसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र और गोभिलगृह्यसूत्र इन तीनों ग्रन्थों के आदि, अन्त तथा मध्य में कल्प शब्द लिखा हुआ नहीं तो आपके विचार में क्या ये तीनों ग्रन्थ कल्पसूत्र नहीं हैं? हमारे सामने एक ग्रन्थ है जिसका नाम है ''श्रीविष्णु अग्रसेनवंशपुराण'', इसके आदि,

अन्त और प्रत्येक पृष्ठ पर पुराण शब्द है तो क्या आप इसे उन्नीसवाँ पुराण मानने को तैयार हैं? कदापि नहीं, अतः सिद्ध हुआ कि किसी ग्रन्थ का विषय जानने के लिए उसके अन्दर क्या लिखा है, यह जानना आवश्यक है, केवल आदि, अन्त और मध्य में नाम का होना या न होना आवश्यक नहीं है। इस नियम के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों के आदि, अन्त और मध्य में पुराण शब्द के न होते हुए भी ब्राह्मणग्रन्थ पुराण हैं और भागवतादि ग्रन्थों के आदि, अन्त और मध्य में पुराण शब्द होते हुए भी वे पुराण कहाने के योग्य नहीं हैं। और आपके नियम के अनुसार भी चारों वेदों के आदि, अन्त और मध्य में वेद शब्द विद्यमान है और शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों के आदि, अन्त और मध्य में वेद शब्द विद्यमान नहीं है, इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५००) प्रश्न—द्वितीय—ब्राह्मणों में प्रायः याज्ञिक कर्मों का वर्णन है और याज्ञिक कर्म वेद का प्रधान अङ्ग वेदों में वर्णित है। इस कारण ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं। 'चत्वारि श्रृंगा' इत्यादि [यजुः० १७।९१] इस मन्त्र तथा इसपर निरुक्त से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में यज्ञकर्म का वर्णन है, अतएव वे पुराण नहीं किन्तु वेद हैं, क्योंकि यज्ञ की विधि वेदों में ही है।

—पृ० ७४, पं० २१

उत्तर—हमने प्रश्न (नं० ४८४) के उत्तर में इस मन्त्र तथा इसके निरुक्त को देकर पूर्णरूप से सिद्ध कर दिया है कि इस निरुक्त से तो **''त्रिधाबद्धस्त्रेधाबद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैः''** यह सिद्ध होता है कि यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प से बँधा हुआ है, इससे मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प भिन्न वस्तु हैं, अतः सिद्ध है कि मन्त्रभाग का नाम वेद तथा व्याख्यानभाग का नाम ब्राह्मण और कल्प है, वरना यज्ञ को वेद से बँधा हुआ कहना ही पर्याप्त था। वेद कहने से ही ब्राह्मण तथा कल्प का ग्रहण हो जाता किन्तु मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प तीनों से बँधा कहने से सिद्ध है कि तीनों भिन्न-भिन्न वस्तु हैं, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं।

ब्राह्मणों में जो याज्ञिक कर्मों का वर्णन है, वह वेद का अनुवादमात्र ही है जैसाकि इस विषय में निरुक्त भी कहता है कि—

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणमृग्यजुर्वाभिवदतीति च ब्राह्मणम्॥ २॥
यथो एतद् ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्त इत्युदितानुवादाः स भवति॥ ५॥

—निरु० अ० १ खं० १६

भाषार्थ—यही यज्ञ की कर्मसम्पत्ति है, जो मन्त्रों से विधान किया जाता है। जो किये जानेवाले कर्म को स्वयं ऋग्वेद और यजुर्वेद कहता है, और ब्राह्मण भी उसी अर्थ को कहता है॥ २॥ जो यह कहा जाता है कि मन्त्र, ब्राह्मण से रूप सम्पन्न किये जाते हैं सो वह तो अनुवाद ही किया हुआ है॥ ५॥ ब्राह्मणग्रन्थों से भी यही विदित होता है कि वे वेद के प्रमाण—प्रतीकें दे-देकर यज्ञ का विधान करते हैं, जैसेकि—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्र्या च दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवी द्यावापृथिवीति॥ ९॥ [शतपथ० १४।१।२] इत्यादि-इत्यादि। इस सारे चौदहवें काण्ड में यजुर्वेद के अध्याय ३७ की प्रतीकें देकर यज्ञ का विधान किया हुआ है, ऊपर के पाठ में भी ''देवी द्यावापृथिवि'' यजुः० ३७।३ की प्रतीक दी हुई है, अतः ब्राह्मणों में याज्ञिक कर्म वेद का अनुवादमात्र है, कोई नई वस्तु नहीं है।

फिर आपने यह युक्ति दी कि चूँकि वेद में याज्ञिक कर्मों का वर्णन है, अतः याज्ञिक कर्म वर्णन की समानता से ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं।

श्रीमान्‌जी! केवल साधर्म्य से दो वस्तु एक नहीं हो जाया करतीं, वैधर्म्य दोनों में भेदकारक होता है। जैसे यदि कोई कहने लगे कि गधे के भी कान हैं और आपके भी दो कान हैं, अतः

आप भी गधे हैं तो हम फौरन रोक देंगे कि नहीं, केवल दो कानों के साधर्म्य से शास्त्रीजी को गधा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गधे के पूँछ है शास्त्रीजी के पूँछ नहीं है, इत्यादि। इसी प्रकार से ही केवल यज्ञवर्णन के साधर्म्य से वेद तथा ब्राह्मण एक नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें वैधर्म्य भेदकारक है, अर्थात् वेदों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास नहीं है, किन्तु ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र सम्बन्धी इतिहास मौजूद हैं, जैसाकि—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः। मैत्रेयी च कात्यायनी च तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्रीप्रज्ञेव कात्यायनी, इत्यादि। —शतपथ० १४।७।३।१ से

भाषार्थ—याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थीं, एक का नाम मैत्रेयी तथा दूसरी का नाम कात्यायनी था, उन दोनों में से मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी साधारण स्त्रियों की-सी बुद्धि रखती थी, इत्यादि।

इससे सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०१) प्रश्न—तृतीय—वैदिक लोगों के यहाँ श्रौत और स्मार्त दो प्रकार के कर्म होते हैं। जिसमें वेद के मन्त्र बोले जावें और वेद ही में जिसकी विधि मिले उस कर्म का नाम श्रौत कर्म है। मन्त्र 'मन्त्रसंहिता' से लिये जाते हैं, और विधि ब्राह्मण तथा श्रौतसूत्रों से ली जाती है। ऐसे कर्म का नाम श्रौतकर्म है। श्रौत का अर्थ है श्रुति नाम वेद का बतलाया कर्म, जब इनका बतलाया हुआ कर्म वैदिक कर्म कहलाता है तब ये पुराण नहीं, किन्तु वेद हैं। —पृ० ७५, पं० १२

उत्तर—आप स्मार्त कर्म किनको कहते हैं? यदि वे कर्म वेदानुकूल होते हैं तो उनको स्मार्त कहने की आवश्यकता ही नहीं, वे वेदानुकूल होने से वैदिक या श्रौत ही हैं, और यदि वे स्मार्त कर्म वेद के विरुद्ध हैं तो वे पाप होने से कर्त्तव्य ही नहीं हैं। वे वैदिक लोगों के घरों में हो ही नहीं सकते। वैदिक कर्मों का अर्थ है वेदानुकूल कर्म। उनके करने की आज्ञा वेद में होती है और उनके करने की विस्तृत विधि को वेदानुकूल ग्रन्थ वर्णन करते हैं। यदि वह विधि वेद के विरुद्ध हो तो प्रमाण न होगी, अतः यदि किन्हीं वेदानुकूल कर्मों की विस्तृत विधि को ब्राह्मणग्रन्थ वर्णन करते हैं तो वे वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक वेदानुकूल हैं। जहाँ वे ब्राह्मणग्रन्थ वेद के विरुद्ध होंगे वहाँ वे प्रमाण न होंगे, अपितु वेद प्रमाण होंगे, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं अपितु वेद के मन्त्रों की अर्थशक्ति को कथन करनेवाले कल्पग्रन्थ हैं। यदि इनमें लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास न होते तो इनका नाम ब्राह्मण और कल्प ही होता, किन्तु इन ब्राह्माणग्रन्थों में लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सबन्धी इतिहास विद्यमान हैं, अतः इनका नाम ब्राह्मण और कल्प के साथ-साथ पुराण, गाथा और नाराशंसी भी हो गया।?

ब्राह्मणग्रन्थ में इतिहास जैसे—

जनको ह वैदेह आसाञ्चक्रे। अथ ह याज्ञवल्क्य आवव्राज स होवाच जनको वैदेहो याज्ञवल्क्य किमर्थमचारीः, इत्यादि॥ —शत० १४।६।१०।१

जनक वैदेह नाम का राजा था, वहाँ उसके पास याज्ञवल्क्य ऋषि आये, वह वैदेह जनक बोला हे याज्ञवल्क्य! आप कैसे आये हैं? इत्यादि इतिहास विद्यमान है।

इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०२) प्रश्न—चतुर्थ— जितने ब्राह्मण हैं वे सब किसी-न-किसी वेद की शाखा के ब्राह्मण हैं। जैसे यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा का ब्राह्मण शतपथ है। जब ये शाखाओं के ब्राह्मण हैं, तो फिर पुराण कैसे हो जावेंगे, तब तो वेद ही रहेंगे। —पृ० ७५, पं० १८

उत्तर—श्रीमान्जी! शाखाएँ तो स्वयं वेद का व्याख्यान होने से परतःप्रमाण हैं और आपके कथनानुसार ब्राह्मण शाखाओं के व्याख्यान हैं तो फिर ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान नहीं, अपितु

अनुव्याख्यान हुए। ऐसी स्थिति में जब शाखा ही वेद नहीं हैं तो ब्राह्मणों को किसी स्थिति में भी वेद नहीं माना जा सकता। ४० अध्याय से युक्त यजुर्वेद मन्त्रसंहिता शाखा नहीं है, अपितु मूल वेद है और शतपथब्राह्मण उसका व्याख्यान है, जो परत:प्रमाण है। यदि शतपथ में कोई बात वेद के विरुद्ध होगी तो वहाँ शतपथ प्रमाण न होगा अपितु यजुर्वेद प्रमाण होगा। यदि ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक पुरुषों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास न होते तो इनकी पुराण संज्ञा न हो सकती, चूँकि ब्राह्मणग्रन्थों में लौकिक पुरुषों के चरित्रसम्बन्धी इतिहास विद्यमान हैं, अत: इनकी ब्राह्मणसंज्ञा के साथ-साथ पुराणसंज्ञा भी हो गई।

ब्राह्मणग्रन्थों में इतिहास है, जैसेकि—

श्वेतकेतुर्ह वा आरुणेयः। पञ्चालानां परिषदमाजगाम स आजगाम जैवलं प्रवाहणं परिचारयमाणं तमुदीक्ष्याभ्युवाद कुमारा इति, इत्यादि। —शतपथ० १४।९।१।१

भाषार्थ—अरुणी का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालों की सभा में आया उस जैवल, प्रवाहण तथा परिचारयमाण को देखकर कुमारों ने अभिवादन किया, इत्यादि मौजूद है। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०३) प्रश्न—पञ्चम—ब्राह्मणग्रन्थ ब्राह्मणभाग कहाते हैं। भाग नाम एक हिस्से का है। जहाँ पर हिस्सा अर्थात् भाग होता है वहाँ पर हिस्सेवाला भी होता है। तो वह ग्रन्थ कौन है कि ब्राह्मणग्रन्थ जिसके भाग हैं? ब्राह्मणसमुदाय पुराण का भाग नहीं किन्तु वेद का भाग है, अतएव ये पुराण नहीं हैं, वेद हैं। —पृ० ७५, पं० २१

उत्तर—श्रीमान्‌जी! ये किसी ग्रन्थ के भाग नहीं हैं, अपितु वेदविषय के दो भाग हैं। एक है मन्त्रभाग, मूल संहिताभाग जिसका नाम है वेद और दूसरा है व्याख्याभाग जिसका नाम है ब्राह्मण।

ब्राह्मणभाग व्याख्याभाग है, वेद नहीं है, जैसेकि—

इषे त्वोर्जे त्वेति॥ —शतपथ० कां० १ अ० ७ इत्यादि। सारे शतपथ में यजुर्वेद के मन्त्रों की प्रतीकें देकर व्याख्या की हैं, अत: शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद की व्याख्या है, वेद नहीं है, ब्राह्मण और वेद भिन्न हैं।

(१) **द्वितीया ब्राह्मणे॥** —अष्टाध्यायी अ० २ पा० ३ सू० ६०

(२) **चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि॥** —अष्टा० अ० २ पा० ३ सू० ६२

यदि ब्राह्मण और छन्द दोनों की वेद संज्ञा होती तो दूसरे सूत्र में छन्दसि पद देना व्यर्थ हो जाता, क्योंकि पहले सूत्र से ब्राह्मणपद की अनुवृत्ति से वही काम चल जाता। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु व्याख्याभाग हैं और लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास के ब्राह्मणग्रन्थों में शामिल होने के कारण इनका नाम पुराण भी हो गया। इतिहास, जैसेकि—

एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः। जनमेजयं पारिक्षितं याजयांचकार तेनेष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपजघान सर्वां ह वै पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपहन्ति योऽश्वमेधेन यजेत्॥ १॥ इत्यादि। —शतपथ० १३।५।४।१

भाषार्थ—इससे इन्द्र दैवाप शौनक ने परीक्षित के पुत्र जनमेजय का यज्ञ करवाया। इस यज्ञ से उसके सारे पापकृत्य तथा ब्रह्महत्या का नाश कर दिया। जो आदमी अश्वमेध यज्ञ करता है वह सारे पापकृत्य तथा ब्रह्महत्या को नष्ट कर देता है॥ १॥ इत्यादि मौजूद है।

इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०४) प्रश्न—षष्ठ—जहाँ-जहाँ पर पुराण का पाठ उद्‌धृत किया गया है, वहाँ पर अमुक

पुराण में है ऐसा लिखा है और जिस ग्रन्थ में ब्राह्मणों का पाठ उद्धृत किया वहाँ श्रुति के नाम से याद किया गया है। यदि ये पुराण होते तो लिखा जाता कि यह शतपथपुराण का वचन है, किन्तु ऐसा कहीं नहीं मिलता, अतएव ये पुराण नहीं। —पृ० ७५, पं० २५

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा मिथ्या है कि जहाँ पुराण का प्रमाण दिया जाता है वहाँ पर किसी भागवतादि पुराण का नाम लिखा जाता है, जैसाकि—

श्रूयते हि पुराणेऽपि जटिला नाम गौतमी। ऋषीनध्यासितवती सप्त धर्मभृतां वरा॥ १४॥
तथैव मुनिजा वार्क्षी तपोभिर्भावितात्मनः। संगताभूद्दशभ्रातृनेकनाम्नः प्रचेतसः॥ १५॥
[गीता० सं० में अध्याय १९५]—महा० आदि० अ० १९८

श्रूयते चाप्ययं श्लोकः पुराणप्रथितः क्षितौ॥ २७॥
ब्रह्मचर्येऽपि वर्तन्त्याः साधव्या ह्यपि च श्रूयते।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः संक्लिद्यते स्त्रियः॥ २८॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ७३

फरमाइए, ये श्लोक जो महाभारत तथा भविष्य में पुराण के नाम से दिये हैं, इनमें भागवतादि अष्टादश पुराणों का नाम कहाँ है? यदि उस समय ये भागवतादि पुराण होते तो उनमें से किसी का नाम होता। पता लगता है कि महाभारत के समय तो यह भागवतादि विद्यमान न थे तथा भविष्यवाला इनको पुराण मानता नहीं, अतः सम्भव है दोनों का इशारा ब्राह्मणग्रन्थों की ओर ही हो, और आपकी दूसरी प्रतिज्ञा भी मिथ्या है कि जहाँ-जहाँ भी ब्राह्मणग्रन्थों का प्रमाण दिया है वहाँ-वहाँ श्रुति कहकर दिया है, जैसाकि—

अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्ते—
''ऊरू प्रथस्वेति प्रथयति'' ''प्रोहाणीति प्रोहति''॥ ५॥ —निरु० १ अ० खं० १५

यहाँ पर ब्राह्मणग्रन्थों के दो पाठ श्रुति के नाम से नहीं अपितु ब्राह्मण के नाम से ही दिये हैं और पुराण इनका नाम इस कारण से पड़ा कि इनमें लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास मौजूद हैं—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ। याज्ञवल्क्येति होवाच भद्रेष्ववसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञमधीयानास्तस्यासीद् भार्या गन्धर्वगृहीता तमपृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत्कबन्ध आथर्वण इति॥ १॥ इत्यादि॥ —शतपथ० १४।६।७।१

भाषार्थ—उसको आरुणि के पुत्र उद्दालक ने पूछा कि हे याज्ञवल्क्य! हम लोग भद्र देश में काप्यपतञ्जल के घरों में यज्ञ विद्या पढ़ते हुए निवास करते थे, उसकी स्त्री को गन्धर्व ने ग्रहण कर रक्खा था। हमने उससे पूछा कि तू कौन है? उसने कहा कि मैं अथर्व का पुत्र कबन्ध हूँ॥ १॥ इत्यादि इतिहास मौजूद है, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०५) प्रश्न—सप्तम—किसी भी ऋषि ने इनके विषय मे पुराण होने की सम्मति नहीं दी, अतएव ये पुराण नहीं हैं। —पृ० ७६, पं० १

उत्तर—ब्राह्मणग्रन्थों को वेदों से भिन्न तथा पुराणादि संज्ञा से युक्त आश्वलायन ऋषि ने माना है, जैसाकि—

अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचोयजूंषि सामान्यथर्वांगिरसो ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति॥ १॥ —आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।३।

भाषार्थ—स्वाध्याय करे ऋग्वेद का, यजुर्वेद का, सामवेद और अथर्ववेद का तथा कल्प, गाथा, नाराशंसी, पुराण नामवाले ब्राह्मणग्रन्थों का॥ १॥

यहाँ पर स्पष्टरूप से ब्राह्मणों को चारों वेदों से भिन्न तथा पुराणादि नामवाला वर्णन किया है।

पाणिनी ऋषि ने ब्राह्मणों की पुराणसंज्ञा मानी है, जैसाकि—

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु॥ —अष्टा० अ० ४ पा० ३ सू० १०५

यहाँ पर स्पष्टरूप से ब्राह्मणग्रन्थों की पुराण और कल्प संज्ञा बतलाई है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं, अपितु पुराण हैं।

(५०६) प्रश्न—अष्टम—वेद के प्रादुर्भाव के साथ इनका प्रादुर्भाव हुआ है और प्रादुर्भावविधायक प्रमाणों में ब्राह्मण पृथक् और पुराण पृथक् हैं, अतएव ये पुराण नहीं। ब्राह्मण और पुराणों की पृथक्ता में हम गोपथब्राह्मण की श्रुति ऊपर दे आये हैं। —पृ० ७६, पं० ३

उत्तर—हम प्रश्न (नं० ४७४) में इस बात का उत्तर दे आये हैं कि गोपथब्राह्मण में ग्रन्थों के प्रादुर्भाव का वर्णन नहीं है, अपितु वेदों द्वारा कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद्, इतिहास, पुराणादि विद्याओं के प्रकट होने का वर्णन है। यदि यह मान लिया जावे कि शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ वेदों के साथ ही प्रादुर्भूत हुए तो ब्राह्मणग्रन्थों में जो वेद के मन्त्रों का '**इषे त्वोर्जे**' इत्यादि प्रतीकें देकर अनुवाद किया है तो क्या अनुवाद भी किया-कराया वेदों के साथ ही प्रादुर्भूत हो गया? कैसी मज़ाक की बात है! अतः वेदों के साथ समस्त विद्याओं का प्रकाश हुआ, विद्याओं के प्रतिपादक वर्त्तमान ग्रन्थों का नहीं। चूँकि वर्त्तमान शतपथादि में ब्राह्मण तथा पुराण दोनों विद्याएँ विद्यमान हैं, अतः शतपथादि का नाम ब्राह्मण होते हुए भी पुराण हो गया। सृष्टि के आरम्भ में वेदों द्वारा कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त इत्यादि बीजरूप से सब विद्याओं के सिद्धान्त, नियम प्रकट हुए। पीछे से जिस-जिस विद्या का जिस-जिस ग्रन्थ में ऋषियों ने विस्तारपूर्वक व्याख्यान कर दिया, उस-उस ग्रन्थ का वही-वही नाम हो गया। चूँकि शतपथादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, पुराण, गाथा, इतिहास, नाराशंसी—इन समस्त विद्याओं का व्याख्यान मिलता है, इसलिए शतपथादि का नाम ब्राह्मण, पुराणादि नाम हो गया, अतः ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं है, अपितु पुराण, इतिहास, गाथा तथा नाराशंसी नाम से युक्त हैं।

कहिए महाराज! यदि ब्राह्मणग्रन्थ वेद ही हैं तो 'वेदों के साथ प्रादुर्भूत हुए' यह क्यों लिखा? इससे तो सिद्ध होता है कि वेद और वस्तु है, ब्राह्मण और वस्तु है। यदि एक होते तो इतना लिखना काफ़ी था कि 'वेद प्रकट हुए'। इससे भी सिद्ध है कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं हैं।

(५०७) प्रश्न—ब्राह्मणग्रन्थ और पुराण इन दोनों के विषयों में बड़ा अन्तर है। महर्षि वात्स्यायन ने **पात्रचयान्तानुप०** [४।१।६२] न्यायदर्शन के इस सूत्र पर भाष्य करते हुए लिखा है कि '**यज्ञो**' '**मन्त्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य**' अर्थात् मन्त्र ब्राह्मण का विषय यज्ञ है, और पुराण-इतिहास का विषय लोकवृत्त है। महर्षि वात्स्यायन ने ठीक ही लिखा है। वास्तव में पुराणों में लोकवृत्त अधिक होता है जो ब्राह्मणों में बिल्कुल नहीं है। पुराणों का लक्षण लिखते हुए महर्षि व्यासजी ने वायुपुराण में एक श्लोक लिखा है, वह यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

(सर्ग) तत्त्वों की रचना **(प्रतिसर्ग)** प्राणियों की रचना, वंशों का वर्णन, मन्वन्तरों की कथा, वंशों के चरित्र (कैरेक्टर), ये पाँच बातें जिसमें हों, उसको पुराण कहते हैं। वंश और मन्वन्तर तथा वंशानुचरित जो पुराणों का वर्णनीय विषय है ब्राह्मणग्रन्थों में उनका सर्वथा अभाव है, फिर हम उनको पुराण कैसे मन लें? —पृ० ७६, पं० ७

उत्तर—इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ब्राह्मण शब्द के यौगिक अर्थ लिये जावें तो ब्राह्मण तथा पुराण इन वेदों के विषय में बड़ा अन्तर है, क्योंकि 'ब्राह्मण' के अर्थ हैं ब्रह्म अर्थात् वेद के व्याख्यान, और पुराण के अर्थ हैं लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास। वेद तथा वेद के व्याख्यान में लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास होते नहीं। इसलिए वेद तथा वेद

के व्याख्यान को पुराण-इतिहास नहीं कहा जा सकता, और शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों के लिए यह घट नहीं सकता, क्योंकि उनमें वेद के व्याख्यान के साथ लौकिक मनुष्यों के चरित्र-सम्बन्धी इतिहास भी विद्यमान् हैं, जैसाकि हम दिखा चुके हैं, अतः शतपथादि ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण होते हुए पुराण, इतिहास, गाथा और नाराशंसी भी है। हमारी इसी बात की पुष्टि वात्स्यायन ऋषि करते हैं कि "मन्त्र तथा मन्त्रों के व्याख्यानमात्र ब्राह्मणों में यज्ञ का विषय होता है और लौकिक इतिहास पुराणों का विषय होता है।" अब यदि शतपथादि ग्रन्थों में केवल वेद का ही व्याख्यान होता और लौकिक इतिहास न होता तो उनको हम ब्राह्मण ही कहते पुराण न कहते, किन्तु अब जबकि शतपथादि ग्रन्थों में वेद के व्याख्यान के साथ लौकिक इतिहास भी विद्यमान है तो हमें उनको ब्राह्मण के साथ-साथ पुराण, इतिहास भी कहना ही पड़ेगा। थोड़े-बहुत का कोई प्रश्न नहीं। जिस ग्रन्थ में भी लौकिक इतिहास विद्यमान हो उसे पुराण, कहा जा सकता है, चूँकि शतपथादि ग्रन्थों में लौकिक इतिहास विद्यमान है, अतः उनको पुराण अवश्य ही कहा जा सकता है। आपकी यह प्रतिज्ञा झूठ है कि शतपथादि में लौकिक इतिहास बिल्कुल नहीं है। आपने जो किसी पुस्तक की पुराणसंज्ञा होने में पाँच हेतु दिये हैं यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि किसी पुस्तक में ये पाँचों लक्षण इकट्ठे विद्यमान हों वही पुराण कहा जा सकता है, क्योंकि इन पाँचों में से एक वा दो वा तीन-चार लक्षण अपने में रखनेवाला पुस्तक भी पुराण कहा जा सकता है। अन्यथा अठारह पुराणों में से भी कई ऐसे निकल पड़ेंगे जिनमें पूरे पाँचों लक्षण न होने के कारण वे पुराण कहाने के हक़दार न रहेंगे; तथापि यदि यह भी मान लिया जावे कि पुराण कहाने का वही पुस्तक हक़दार है कि जिसमें ये पाँचों लक्षण इकट्ठे ही विद्यमान हों, तो भी शतपथादि ग्रन्थ ब्राह्मण कहाते हुए भी पुराण कहाने के योग्य हैं, क्योंकि इनमें पाँचो लक्षण विद्यमान हैं, जैसेकि—

(१) सर्गतत्त्वों की रचना—

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपनात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः॥ १॥ स इमांस्त्रींल्लोकानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीꣳष्यजायन्ताऽग्निर्योऽयं पवते सूर्यः॥ २॥ स इमानि त्रीणि ज्योतीꣳष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः॥ ३॥ इत्यादि —शतपथ० ११।५।८

भाषार्थ—इसका अर्थ वेदोत्पत्ति विषय में देखने की कृपा करें। शतपथ में इस प्रकार से अनेक स्थानों में तत्त्वों की रचना का वर्णन है।

(२) प्रतिसर्ग—प्राणियों की रचना—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाँसौ सम्परिष्वक्तौ॥ ४॥

स इममेवात्मानन्द्वेधापातयत। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाश स्त्रिया पूर्यत एव ताꣳसमभवत्ततो मनुष्या अजायन्त॥ ५॥ सो हेयमीक्षांचक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोऽसानीति॥ ६॥ सा गौरभवत्। वृषभ इतरस्ताꣳसमेवाभत्ततो गावोऽजायन्त॥ ७॥ वडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ताꣳसमेवाभवत्ततो एकशफमजायत॥ ८॥ अजेतराभवत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ताꣳसमेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किं च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत॥ ९॥ —इत्यादि।

—शतपथ० १४।४।२

भाषार्थ—इसका भाषार्थ देखो सृष्टि-उत्पत्ति विषय में। शतपथ में इस स्थान में मनुष्य से

कीड़ीपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(३) वंशों का वर्णन—

अथ हैतेऽरुणे। औपवेशौ समाजग्मुः सत्ययज्ञः पौलुषिर्महाशालो जाबालो बुडिल आश्वतराश्विरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यस्ते ह वैश्वानरे समासत तेषाꣳह वैश्वानरे न समियाय॥ १ ॥ ते होचुः। अश्वपतिर्वा अयं कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरं वेद तं गच्छामेति ते हाश्वपतिं कैकेयमाजग्मुस्तेभ्यो ह पृथगावसथान् पृथगापाचितीः पृथक् साहस्त्रान्त्सोमान् प्रोवाच ते ह प्रातरसंविदाना एव समित्पाणयः प्रतिचक्रमिर उप त्वायामेति॥ २ ॥ सा होवाच यन्नु भगवन्तोऽनूचाना अनूचानपुत्राः किमिदमिति ते होचुर्वैश्वानरꣳह भगवान्त्सम्प्रतिवेद तं नो ब्रूहीति स होवाच सम्प्रति खलुन्वाहं वैश्वानरं वेदाभ्याधत्त समिध उपेतास्थेति॥ ३ ॥— इत्यादि।

—शतपथ० १०।६।१

(४) मन्वन्तरों की कथा—

मनवे ह प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे॥ १ ॥ स हास्मै वाचमुवाच। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयिताऽस्मीति कथं ते भृतिरिति॥ २ ॥ इत्यादि

—शतपथ० १।८।१

इस प्रकार से शतपथ में अनेक मन्वन्तरों का वर्णन विद्यमान है।

(५) वंशों के चरित्र—

जनकꣳह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम। समनेन वदिष्य इत्यथ ह यज्जनकश्च, इत्यादि।

—शतपत० १४।७।१।१

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ। कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैतयैव निविदा, इत्यादि।

—शत० १४।६।९।१

ऐतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः। जनमेजयं पारिक्षितं याजयां चकार, इत्यादि

—शत० १३।५।४।१

उर्वशी हाप्सराः। पुरुरवसमैडं चकमे, इत्यादि। —शत० १४।५।१।१

उद्दालको हारुणिः। उदीच्यान् वृतो धावयांचकार तस्य निष्क उपाहितः।

—शत० ११।४।१।१

इत्यादि अनेक वंशों के चारित्र शतपथ में लिखे हुए विद्यमान हैं, इससे सिद्ध है कि शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ वेद में नहीं हैं, अपितु आपके लक्षणों के अनुसार भी पुराण ही हैं।

(५०८) प्रश्न—स्वामीजी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि वेदों की ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान होने से परत:प्रमाण हैं। चारों वेदों की ११३१ पुस्तकें हैं, इन ११३१ ग्रन्थों को शाखा कहते हैं। इसपर महाभाष्य लिखता है कि—

बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बह्वृच्यं नवाधाथर्वणो वेदः।

वेद बहुत भागों में विभक्त हैं। यजुर्वेद की १०१ और सामवेद की १००० एवं ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं। ११३१ शाखाओं में से स्वामीजी ने चार शाखाओं को तो असली वेद माना और ११२७ को शाखा। —पृ० ७७, पं० २०

उत्तर—स्वामी दयानन्दजी का मानना ठीक है, क्योंकि शाखा आखिर किसी मूलरूप की ही होती हैं, यदि मूल न हो तो शाखा किसकी? अत: स्वामीजी ने यह बतलाकार आर्यजाति पर

बड़ा भारी उपकार किया कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद मूलमन्त्र संहिता—ये तो चारों मूलवेद हैं और बाकी इन चारों वेदों की ११२७ शाखाएँ हैं, अर्थात् वे वेदों के व्याख्यान हैं और वे ११२७ व्याख्यान वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक वे मूलवेद के अनुकूल हों; जहाँ पर उनमें कोई बात मूलवेद के विरुद्ध होगी वहाँ पर उनकी बात न मानी जावेगी, अपितु मूलवेदों की बात प्रमाण मानी जावेगी। यदि मूलवेद का निश्चय न किया जाए तो आपके पास धर्म का मूलाधार कोई है ही नहीं, क्योंकि इस समय न तो सारे ब्राह्मणग्रन्थ मिलते हैं और न ही सारी शाखाएँ मिलती हैं। यदि आप ब्राह्मणग्रन्थ तथा शाखाएँ सबको ही वेद मानते हैं तो इसका अर्थ यह है कि आपके पास आपके वेद भी पूरे नहीं हैं, वे अधूरे हैं। जब आपके धर्मग्रन्थ ही अधूरे हैं तो आपका धर्म पूरा कैसे माना जा सकता है? यह ऋषि दयानन्दजी की ही कृपा है कि उन्होंने आपको अधूरेपन से निकालकर पूरा बना दिया, क्योंकि बिना मूलवेद के निश्चय किये आपके धर्म में पूरापन न होना था और शाखा आपके मत में अनन्त हैं। महाभाष्य ने तो ११३१ बतलाई हैं, किन्तु आपके पाँचवें वेद महाभारत ने २२,१०६ वेदों की शाखा वर्णन की हैं, जैसाकि—

हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एष छन्दसि स्तुतः। योगैः सम्पूज्यते नित्यं स एवाहं भुवि स्मृतः॥ ९३॥
एकविंशतिसाहस्त्रं ऋग्वेदं मां प्रचक्षते। सहस्त्रशाखं यत् साम ये वेदविदो जनाः॥
गायन्त्यारण्यके विप्रा मद्भक्तास्ते हि दुर्लभाः॥ ९४॥
षट्पंचाशतमष्टौ च सप्तत्रिंशतमित्युत'। यस्मिञ्छाखा यजुर्वेदे सोऽहमाध्वर्यवे स्मृतः॥ ९५॥
पंचकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम्। कल्पयन्ति हि मां विप्रा अथर्वाणविदस्तथा॥ ९६॥
शाखाभेदश्च ये केचिद्याश्च शाखासु गीतयः।
स्वरवर्णसमुच्चाराःसर्वांस्तान्विद्धि मत्कृतान्॥ ९७॥

[गीता० सं० में श्लोक ९६ से १०१।—सं०]—महा० शान्ति०अ० ३४२

भाषार्थ—प्रकाशमय पदार्थों को धारण करनेवाला प्रकाशस्वरूप जो यह वेदों में स्तुति किया गया है और योग द्वारा जिसकी नित्य पूजा की जाती है, वह मैं ही पृथिवी में स्मरण किया जाता हूँ॥ ९३॥ इक्कीस हज़ार ऋग्वेद मुझे ही वर्णन करते हैं और एक हज़ार शाखवाले सामवेद को जो निश्चय से वेद के जाननेवाले॥ ९४॥ मेरे भक्त, ब्राह्मण जंगल में गाते हैं वे भी दुर्लभ हैं। छप्पन और आठ तथा सैंतीस भी यजुर्वेद में शाखा हैं वह मैंने अध्वर्यु के लिए नियत की हैं॥ ९५॥ पाँच कल्प अथर्ववेद जो क्रियाओं से परिपूर्ण है अथर्व के जाननेवाले ब्राह्मण मुझे ही कल्पना करते हैं॥ ९६॥ जो कोई भी शाखाओं के भेद हैं और जो शाखाओं में गायन हैं और जो उनमें स्वर तथा वर्ण का उच्चारण है उन सबको मेरे ही बनाये हुए समझना चाहिए॥ ९७॥

यदि आपको यह गिनती बहुत प्रतीत होती हो और आप '**एकविंशतिसाहस्त्रम्**' में '**सहस्त्र**' शब्द को केवल '**एकविंशति**' के साथ स्वार्थ में ही प्रयोग समझ लें तो ऋग्वेद की इक्कीस ही शाखा मानी जा सकती हैं जो महाभाष्य के कथन के अनुकूल हैं और यह भी सम्भव है कि महाभारत ने महाभाष्य के '**एकविंशतिधा बह्वृच्यं**' का ही अनुवाद '**एकविंशतिसाहस्त्रम्**' का प्रयोग कर दिया हो और '**बहु**' के स्थान है '**सहस्त्र**' का प्रयोग कर दिया हो, क्योंकि संस्कृत साहित्य में '**सहस्त्र**' शब्द का प्रयोग केवल स्वार्थ में आता में, जैसेकि—

विश्वामित्र से दशरथ ने कहा कि—

षष्टिर्वर्षसहस्त्राणि जातस्य मम कौशिक॥ १०॥ —वाल्मी० बाल० स० २०

हे विश्वामित्र! मुझे पैदा हुए साठ हज़ार वर्ष हो गये॥ १०॥

यहाँ पर षष्टि के साथ सहस्त्र शब्द केवल स्वार्थ में ही प्रतीत होता है, क्योंकि दशरथ की

आयु ६० वर्ष सम्भव तथा ६०,००० वर्ष असम्भव प्रीतत होती है।

राम के राज्य में जिस ब्राह्मण का बालक मर गया था वह ब्राह्मण कहता है कि—

अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्त्रकम्। अकाले कालमापन्नं मम दुःखाय पुत्रक॥५॥

—वाल्मी० उत्तर० स० ७३

शब्दार्थ—जवानी को प्राप्त न हुआ पाँच हज़ार वर्ष का बालक अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया। हे पुत्र! यह मेरे दुःख के लिए है॥५॥

यहाँ पर स्पष्ट सिद्ध है कि 'पञ्च' शब्द के साथ 'सहस्त्र' शब्द केवल स्वार्थ में ही है, क्योंकि पाँच वर्षवाले को बालक कहा जा सकता है, किन्तु ५००० वर्ष आयुवाले को बालक नहीं कहा जा सकता।

इन दोनों प्रमाणों से सिद्ध है कि '**एकविंशतिसाहस्त्रम्**' में भी '**साहस्त्र**' शब्द केवल स्वार्थ में ही है और यह महाभाष्य के पाठ '**एकविंशतिधा बह्वृच्यं**' का ही महाभारत ने अनुवाद कर दिया है, क्योंकि बहु और सहस्त्र शब्द संस्कृत में पर्य्यावाची हैं, जैसाकि—

सर्वं वै सहस्त्रम्। —शतपथ ७।५।२।१३

सहस्त्रशब्दो बहुत्ववाची। —महीधर यजुः० ३१।१

अतः ऋषि दयानन्दजी का चार को मूल वेद मानकर ११२७ को शाखा मानना व्यास के मतानुसार भी ठीक ही है।

(५०९) प्रश्न—ये समस्त शाखाएँ ईश्वर के अवतार ब्रह्मा के द्वारा संसार में प्रकट हुई हैं। इनमें से स्वामी दयानन्दजी चार को तो ईश्वरकृत और ११२७ को ब्रह्मादि ऋषियों की बनाई लिखते हैं। स्वामीजी की दोनों बातें सर्वथा असत्य हैं। —पृ० ७८, पं० ५

उत्तर—परमेश्वर कभी अवतार धारण नहीं करता, क्योंकि वेद ने '**अकायम्**' (यजुः० ४०।८) कहकर ईश्वर के अवतार का खण्डन किया है और युक्ति से भी अवतार सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ईश्वर का शरीर धारण करके एकदेशी, अल्पज्ञ बनना असम्भव ही है, अतः ११२७ शाखाएँ वेदों के व्याख्यान ब्रह्मादि ऋषि-मुनियों के बनाये हुए हैं। इसी कारण से प्रत्येक शाखा किसी ऋषि-मुनि के नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु चारों वेद किसी ऋषि-मुनि के नाम से प्रसिद्ध नहीं अपितु ईश्वर के नाम से ही प्रसिद्ध हैं, अतः ऋषि दयानन्दजी ने ईश्वरकृत चारों वेदों को स्वतःप्रमाण मानकर ऋषि-मुनिकृत ११२७ शाखाओं को परतःप्रमाण माना है। निराकार, सर्वव्यापक परमात्मा को किसी काम को करने के लिए साकार होने की या अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है। व्यापक परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों के आत्मा में अपने ज्ञान वेद का प्रकाश कर दिया। उन्होंने लोगों में उनका प्रचारादि किया। स्वामीजी का यह आर्यजाति पर बड़ा भारी उपकार है कि स्वामीजी ने शाखाओं, ब्राह्मणों और पुराण आदि में गुम हुए वेदों को आर्यजाति के सामने निकालकर सूर्य की भाँति प्रकाशित कर दिया। अब आपकी यह चालबाज़ी न चल सकेगी कि एरे-ग़ैरे-नत्थूख़ैरे ने जो संस्कृत में वेदविरुद्ध, स्वार्थपरक पुस्तक बना दिया उसी को स्वतःप्रमाण मानकर जनता को अन्धकार में धकेल दिया, क्योंकि अब वेदों की कसौटी मौजूद है। अब जनता प्रत्येक ग्रन्थ को वेद की कसौटी पर परखकर वेदानुकूल का ग्रहण तथा वेदप्रतिकूल का परित्याग करने लगी है। इस दयानन्दयुग में आपकी '**ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्। संस्कृतवाक्यं प्रमाणम्**' वाली वेदनाशक चालबाज़ी का चलाना असम्भव है।

(५१०) प्रश्न—ब्रह्मा ऋषि आजतक कोई हुआ ही नहीं, जब ब्रह्मा ऋषि ही नहीं हुआ फिर उसके द्वारा शाखाओं का निर्माण मान लेना चालबाज़ी बनाकर आर्यसमाजियों की आँखों में धूल झोंकना है। —पृ० ७८, पं० १०

उत्तर—धन्य हो! सिद्धान्त-विवेचन इसी का नाम है! श्रीमान्‌जी! आप तो कहते हैं कि ब्रह्मा कोई ऋषि ही नहीं हुआ, भला मनुस्मृति में जो लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥
—मनु० १।२३

यहाँ पर अग्नि आदि से वेदों का पढ़नेवाला ब्रह्मा क्या ऋषि न था? तथा—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै॥ —श्वेताश्व० अ० ६।१८

यहाँ जिसको परमात्मा ने पैदा किया और जिसके लिए अग्नि आदि के द्वारा वेद भेजे क्या वह ब्रह्मा ऋषि न था?

और श्रीमान्‌जी! ब्रह्मा तो सैकड़ों ऋषि हो चुके हैं, होते हैं और होंगे। ब्रह्मा तो एक पदवी है—जो चारों वेदों का जाननेवाला हो उसी को ब्रह्मा कहते हैं और यज्ञ में उसको ब्रह्मा बनाकर बिठाया जाता है, जैसाकि **'ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्।'**—ऋ० १०।७१।११ का मन्त्र देकर यास्काचार्य्य ने लिखा है कि—

ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। ब्रह्मा परिवृळ्हः श्रुततो ब्रह्मा परिवृहळ्हं सर्वतः॥
—निरुक्त अ० १ खं० ८

ब्रह्मा उसको कहते हैं जो सर्वविद्याओं का जाननेवाला हो, जो सब-कुछ जानने के योग्य हो, ब्रह्मा उसको कहते हैं जो तीनों विद्याओं को जानता हो और जो वेद को सब दिशाओं में फैलानेवाला हो।

कहिए श्रीमान्‌जी! ये तो एक के स्थान में अनेक ऋषि ब्रह्मा निकल आये। इसी नियम के अनुसार युधिष्ठिर के यज्ञ में व्यासजी स्वयं ब्रह्मा बने, क्योंकि वे चारों वेदों के ज्ञाता थे, जैसाकि—

ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपानयत्। वेदानिव महाभागान् साक्षान्मूर्तिमतो द्विजान्॥ ३३॥
स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य सत्यवतीसुतः। धनञ्जयानामृषभः सुसामा सामगोऽभवत्॥ ३४॥
याज्ञवल्क्यो बभूवाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्युसत्तमः। पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत्॥ ३५॥
—महा० सभा० अ० ३३

भाषार्थ—हे राजन्! तब व्यासजी ने ऋत्विज नियत किये। वे ऐसे ब्राह्मण थे गोया साक्षात् वेद ही मूर्त्तिमान विद्यामान हैं॥ ३३॥ उस यज्ञ के ब्रह्मा स्वयं सत्यवती के पुत्र व्यास बने॥ ३४॥ धनञ्जयों में श्रेष्ठ सुसाम को उद्‌गाता बनाया॥ ३४॥ और ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य को अध्वर्यु बनाया। वसु के पुत्र पैल को धौम्य के सहित होता बनाया॥ ३५॥

इससे सिद्ध है कि चारों वेदों का जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मा कहा जा सकता है और स्वामीजी ने लिखा है कि ११२७ शाखा ब्रह्मा आदि ऋषियों की बनाई हैं। स्वामीजी का यह लेख सर्वथा सत्य है कि वेद के ज्ञानी ऋषियों ने ये वेद के व्याख्यान किये हैं, जिनको शाखा कहा जाता है। ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद स्वतःप्रमाण तथा ऋषिकृत होने से शाखा परतःप्रमाण हैं।

(५११) प्रश्न—शाखाओं में वेद का व्याख्यान बतलाना सिद्ध करता है कि दयानन्द ने कभी शाखा आँख से नहीं देखी। कोई आर्यसमाजी किसी शाखा में वेद का व्याख्यान सिद्ध नहीं कर सकता। —पृ० ७८, पं० १३

उत्तर—वाह वा! कैसे पते की कही! स्वामी दयानन्दजी ने तो शाखा आँख से नहीं देखी किन्तु आपने शाखाओं को आँख से ज़रूर देखा है, क्योंकि आपकी आँखों की दृष्टि स्वामीजी की दृष्टि से अत्यधिक तीव्र जो ठहरी! शायद किसी ने "आँख के अन्धे नाम नैनसुख" यह लोकोक्ति कहीं आप-जैसों के लिए ही तो नहीं घड़ी? अच्छा, भला यह तो बतलाइए कि यदि

ये ११२७ शाखा मूलमन्त्रसहित, वेद के व्याख्यान नहीं हैं तो ये हैं क्या वस्तु! क्या ये ११२७ भी स्वयं वेद ही हैं और आपके मत में कुल ११३१ वेद हैं और उनमें से कुछ-एक तो मिलते हैं और बाकी बहुत-से गुम हैं, इसके अर्थ तो यह हैं कि आपके अनुमान से ९० प्रतिशत वेद गुम है। आपके पास अनुमान से केवल १० प्रतिशत वेद विद्यमान हैं। जिस कौम की धर्मपुस्तक ९० प्रतिशत गुम तथा केवल १० प्रतिशत विद्यान हो उस कौम के धर्म का अल्लाह की बेली है। यदि वह आज है तो निश्चित कल न होगी। अच्छा, एक और बात बताने की कृपा करें कि जिन चार को स्वामीजी ने स्वत:प्रमाण मूल वेद माना है बाकी की ११२७ शाखाएँ उन चार से विरुद्ध हैं या अविरुद्ध। यदि विरुद्ध हैं तो परस्पर विरोध के कारण ११३१ ही प्रमाण मानने के योग्य नहीं हैं। फिर तो आपके सारे ही धर्मपुस्तक का क़तई सफ़ाया है। और यदि यह कहो कि बाकी की ११२७ शाखा उन चार के अनुकूल हैं तो उन ११२७ में क्या उन्हीं सिद्धान्तों का बार-बार वर्णन किया है जो चार में विद्यमान है या उन चार से अधिक विशेष सिद्धान्तों का वर्णन उन ११२७ में विद्यमान है? यदि कहो कि उन ११२७ में इनसे बहुत अधिक विशेष सिद्धान्तों का वर्णन है तो उन सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक सूची प्रकाशित करने की कृपा करें जिनका मूल इन चार में तो क़तई विद्यमान नहीं है, परन्तु उन ११२७ में है, और यदि कहो कि उन ११२७ में भी उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन है जो इन चार में है तो प्रश्न यह होगा कि जिन सिद्धान्तों का वर्णन इन चारों में विद्यमान है उन्हीं सिद्धान्तों का वर्णन ११२७ में मूलरूप से वर्णन किया गया है या विस्तार रूप से? यदि कहो कि उन ११२७ में उन्हीं सिद्धान्तों का मूलरूप से वर्णन किया गया है कि जिन सिद्धान्तों का वर्णन मूलरूप से इन चार में भी विद्यमान है तो फिर बतलाइए कि जिन सिद्धान्तों का वर्णन मूलरूप से इन चार में ही विद्यमान था उन्हीं सिद्धान्तों को मूलरूप से उन ११२७ में तर्णन करने की क्या आवश्यकता थी? ऐसा होने पर तो ११२७ शाखाओं पर पुनरुक्ति दोष लग जावेगा और वे ११२७ अप्रमाण हो जावेंगी, और यदि यह कहो कि जिन सिद्धान्तों का इन चार में मूलरूप से वर्णन है उन्हीं सिद्धान्तों का उन ११२७ में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है तो स्वामीजी का कहना सर्वथा सत्य है कि ये ११२७ शाखा मूलमन्त्रसंहिता चार वेदों के व्याख्यान हैं और वे वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं, अन्यथा नहीं। शाखाओं के व्याख्यान होने के बारे में स्वामीजी ने स्पष्ट लिखा है कि—

"सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धरके व्याख्या करते हैं जैसे तैत्तिरीय शाखा में '**इषे त्वोर्जे त्वेति**' इत्यादि प्रतीकें धरके व्याख्यान किया है। —सत्यार्थ० समु० ७

इस प्रमाण को आप श्राद्ध के लड्डू की भाँति हड़प कर गये और फिर हमसे ही शाखाओं के व्याख्यान होने का प्रमाण माँगने लगे। चोरी और चालबाज़ी इसी का नाम है।

(५१२) प्रश्न—जिन चार ग्रन्थों को दयानन्द असली वेद मानते हैं, वे असली वेद नहीं हैं, वरना वे भी क्रम से शाखाएँ हैं। जिसको स्वामी दयानन्दजी यजुर्वेद कहते हैं वह यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा है और जिसको ऋग्वेद मानते हैं वह ऋग्वेद की शाकल शाखा तथा जिसको सामवेद लिखते हैं वह सामवेद की कौथुमी शाखा, इसी प्रकार जिसको अथर्ववेद समझा दिया जाता है वह अथर्ववेद की शौनकी शाखा है। जिस प्रकार ये चारों शाखाएँ शाखा रहने पर भी संहिताएँ हैं फिर क्या कारण है कि ११२७ शाखाओं को दयानन्दजी प्रमाण नहीं मानते और चार को मानते हैं?

—पृ० ७८, पं० १६

उत्तर—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चारों वेदों की मूल मन्त्रसंहिता हैं। ये शाखा नहीं हैं, अपितु ये ईश्वरोक्त मूलवेद हैं शेष सब शाखाएँ इन चारों के व्याख्यन हैं, और इनके ये शाखारूप से नाम भी पोपपाखण्ड की कल्पना ही हैं, अत: वे सब संहिता कहलाने के योग्य नहीं हैं। चारों मूलवेद ईश्वरकृत होने से स्वत:प्रमाण तथा ११२७ शाखा ऋषिकृत होने से

परत:प्रमाण हैं।

कहिए महाराज! यदि ये चारों असली वेद नहीं हैं तो वे असली वेद कौन-से हैं? ज़रा उन असली वेदों का नाम तो लिख दिया होता? या वे चारों शाखा ही हैं और असली वेद नहीं हैं तो आपने अपनी सारी पुस्तक में इन चारों के प्रमाण वेद के नाम से क्यों लिखे हैं? आपको इनके प्रमाण उपर्युक्त शाखाओं के नाम से ही दर्ज करने चाहिएँ थे। आपका अपनी पुस्तक में इन चारों के प्रमाण शाखापरक नाम से न देना तथा वेद के नाम से देना इस बात को सिद्ध करता है कि आप भी इनको ही असली चार वेद मानते हैं, किन्तु पौराणिकों की आँखों में धूल झोंकने के लिए इधर-उधर की सिद्धान्तहीन बातें बना रहे हैं।

(५१३) प्रश्न—दयानन्द और आर्यसमाजी इन चार शाखाओं को भी प्रमाण नहीं मानते। इनके मन्त्र आगे रखकर अर्थ मनमाने करते हैं, न देवता का खयाल करें न प्रकरण को देखें।
—पृ० ७९, पं० ३०

उत्तर—आपने उन आर्यसमाजियों के नाम नहीं लिखे जो चारों वदों को प्रमाण न मानते हों, योंही मन्त्र आगे रखकर देवता तथा प्रकरण का विचार किये बिना अण्डबण्ड अर्थ कर देते हों और न ही आपने अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि में कोई प्रमाण दिया है, अतः बिना प्रमाण के आपकी प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल तथा मिथ्या है। हाँ, हम यह कह सकते हैं कि आपने अपनी पुस्तक में **'उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकम्'** तथा **'आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि'**, **'तदेवाग्निः'**, **'तस्या मनुर्वैवस्तः'** इत्यादि-इत्यादि सैकड़ों वेदमन्त्रों को योंही आगे रखकर देवता और प्रकरण का विचार किये बिना ही अण्डबण्ड मनमाने अर्थ कर डाले हैं जिनका हमने-स्थान-स्थान पर खण्डन करके देवता तथा प्रकरणानुसार सत्य अर्थ लिख दिये हैं। इस प्रकार की धोखेबाज़ी करना आर्यसमाजियों का काम नहीं है, अपितु यह काम आप जैसे पौराणिक, पाखण्डी पोपों का है।

(५१४) प्रश्न—**'यजनाद्यजुः'** यजुर्वेद में यजन, यज्ञों का वर्णन है। इसी से इसका नाम यजुर्वेद रक्खा गया है। शतपथ और कात्यायनश्रौतसूत्र में यजुर्वेद के चालीस अध्यायों का वर्णनीय विषय है। स्वामीजी ने अपने भाष्य में वेद के इन दर्श, पौर्णमास, इष्टि, रुद्रवर्णन, शतरुद्रि, सौत्रामणि, वाजपेय, राजसूय, पुरुषमेध, अश्वमेध प्रभृति समस्त यज्ञों को यजुर्वेद से निकाल डाला।
—पृ० ८०, पं० ८

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा झूठ है कि स्वामीजी ने यजुर्वेद के भाष्य से यज्ञों को निकाल दिया है। हाँ, यह बात दूसरी है कि आप यज्ञ के कुछ अर्थ समझते हैं और स्वामीजी कुछ और; आप तो यज्ञों में अश्व, गौ, बकरा, आदि पशुओं और पुरुषों को मारकर उनकी चरबी तथा मांस से हवन करने को अश्वमेध तथा नरमेधादि यज्ञ मानते हैं किन्तु स्वामीजी यज्ञ का अर्थ यह समझते हैं—**'यज्ञ'** उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प, अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाता है, उसको उत्तम समझता हूँ। (सत्यार्थ० मन्तव्य न० २८)। आपके अर्थ वेद के विरुद्ध हैं, क्योंकि **'ऋचां त्वः पोषम्'** (ऋ० १०।७१।११) पर निरुक्तकार लिखते हैं कि **'अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरतिर्हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः'** (निरु० अ० खं० ८)।

अध्वर यज्ञ का नाम है। ध्वरति धातु हिंसा अर्थों में है। जिस कर्म में हिंसा का प्रतिषेध हो उस कर्म का नाम अध्वर या यज्ञ है। स्वामीजी का अर्थ ठीक है, जैसाकि—

'यज देवपूजासंगतीकरणदानेषु।'
—व्याकरण

यज धातु के अर्थ देवपूजा, संगतीकरण और दान हैं और स्वामीजी लिखते हैं कि—**यज्ञ**—

जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त वा जो शिल्पव्यवहार और पदार्थविज्ञान जोकि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं। —आर्योद्देश्यरत्न० ४७

इत्यादि-इत्यादि यज्ञ के अर्थों को सामने रखकर सारे यजुर्वेद का अर्थ किया है। हाँ, ऐसे पौराणिक काल्पनिक यज्ञों को कि जिनमें—

(१) 'गणानां त्वा' [यजुः० २३।१९] **महिषी अश्वसमीपे शेते। हे अश्व, गर्भधम् गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजानि आकृष्य क्षिपामि । तं गर्भधं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि।** —महीधर

(२) 'ता उभौ चतुरः।' [यजुः० २३।२०] **'अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति' महिषि स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति।** —महीधर

इस प्रकार के पौराणिक भाव विद्यमान हैं, स्वामीजी ने उनका सर्वथा खण्डन किया है। क्या आप इसी प्रकार के अर्थों को वास्तविक अर्थ मानते हैं?

(५१५) प्रश्न—स्वामीजी के भाष्य में तो बिजली से मशीनें तैयार करना, तार और रेल, फ़ौज तथा सेनापति, अध्यापक-अध्यापिका, उपदेशक-उपदेशिका स्त्रियों की फ़ौज, उल्लुओं का पालना ये विषय हैं। —पृ० ८१, पं० १७

उत्तर—आपके महीधर आदि द्वारा यजुर्वेदभाष्य में यजमान-पत्नी को घोड़े के साथ जोड़कर न जाने किस प्रकार की बिजली पैदा करने का यत्न किया गया है! स्वामीजी ने इस प्रकार के वेदविरुद्ध पौराणिक कारखानों का खण्डन करके यजुर्वेद का यथार्थ अर्थ कर दिया है। देखिए वेद स्वयं यज्ञ शब्द के क्या अर्थ करता है—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां **प्राणो** यज्ञेन कल्पतां **चक्षुर्**यज्ञेन कल्पताᳬ **श्रोत्रं** यज्ञेन कल्पतां **वाग्**यज्ञेन कल्पतां **मनो** यज्ञेन कल्पता**मात्मा** यज्ञेन कल्पतां **ब्रह्मा** यज्ञेन कल्पतां **ज्योतिर्**यज्ञेन कल्पताᳬ **स्वर्**यज्ञेन कल्पतां **पृष्ठं** यज्ञेन कल्पतां **यज्ञो** यज्ञेन कल्पताम्। **स्तोमश्च यजुश्च ऋक्** च **साम** च **बृह**च्च **रथन्तरं** च। **स्वर्देवा** अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा।

—यजुः० १८।२९

इस मन्त्र में किये गये यज्ञ शब्द के अर्थों को देखकर बतलावें कि ऋषि दयानन्द का अर्थ क्या इन अर्थों से बाहर है? कदापि नहीं, अतः स्वामी दयानन्दजी का किया हुआ यजुर्वेद का अर्थ वेदानुकूल तथा पौराणिक भाष्यकार महीधर आदि का अर्थ स्वयं वेद के विरुद्ध और युक्ति के भी विरुद्ध है।

भू-भ्रमण

(५१६) प्रश्न—वेद पृथिवी को अचला मानता हुआ सूर्यादि ग्रहपंजरों का पृथिवी के चारों ओर भ्रमण मानता है। —पृ० २७०, पं० १०

उत्तर—आपकी प्रतिज्ञा क़तई ग़लत है, क्योंकि वेद का सिद्धान्त है कि पृथिवी भी घूमती है और सूर्य आदि समस्त तारागण भी घूमते हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जोकि गाड़ी के पहिये की भाँति स्वयं अपने गिर्द भी घूमते हैं और दूसरों के चारों ओर भी घूमते हैं, और कुछ ऐसे हैं कि वे अपनी परिधि पर स्वयं ही घूमते हैं किसी के चारों ओर नहीं घूमते, किन्तु घूमते सब हैं, क्योंकि बिना घूमने और फिरने के कोई वस्तु आकाश में बहुत समय तक नहीं ठहर सकती। जैसे थाली के घुमानेवाले थाली को चक्र देकर आकाश में फैंक देते हैं तो थाली काफी देर तक घूमती हुई आकाश में ठहरी रहती है। यदि थाली को बिना घुमाये छोड़ा जावे तो वह तत्क्षण पृथिवी पर गिर पड़ती है, अतः पृथिवी पहिये की भाँति अपने गिर्द भी घूमती है जिससे दिन-

रात पैदा होते हैं और सूर्य के गिर्द भी घूमती है, जिससे ऋतु-परिवर्तन होता रहता है। यही वेदादि शास्त्रों का सिद्धान्त है।

(५१७) प्रश्न—'येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा' [यजुः० ३२।६] वहाँ वेद ने पृथिवी को 'दृढा' शब्द से निश्चल वर्णन किया है। —पृ० २७०, पं० १२

उत्तर—इस मन्त्र में **'दृढा'** शब्द का अर्थ निश्चल नहीं है, अपितु यहाँ पर 'दृढा' शब्द के अर्थ 'कठोर' हैं। और 'दृढा' शब्द के अर्थ निश्चल होते भी नहीं, देखिए अमरकोश ने स्पष्टरूप से दृढा का अर्थ कठोर किया है, जैसाकि—**'कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढम्'।**

—अमर० ३।१।७६

मन्त्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—यजुः० ३२।६

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर ने तीव्र तेजवाले प्रकाशयुक्त सूर्य आदि पदार्थ और भूमि को कठिन अर्थात् कठोर बनाया है। जिसने सुख को धारण किया, जिसने सब दुःखों से रहित मोक्ष को धारण किया। जो मध्यवर्ती आकाश में वर्त्तमान लोकसमूह का विविध मान करनेवाला है। उस सुखस्वरूप, स्वयं प्रकाशमान, सकल सुखदाता ईश्वर के लिए हम लोग प्रेमभक्ति से प्राप्त होवें॥ ६॥

और देखिए आपके टीकाकार महीधर भी दृढा का अर्थ निश्चल नहीं मानते, जैसाकि—

सर्वप्राणिधारणं वृष्टिग्रहणं अन्ननिष्पादनं चेति भूमेर्दार्ढ्यम्। —यजुः० ३२।६ महीधर

सब प्राणियों का धारण करना, वर्षा का ग्रहण करना, अन्न-निष्पादन ही पृथिवी का दृढ़पन है।

अतः आपका इस मन्त्र से पृथिवी को अचला सिद्ध करना सर्वथा निर्मूल है। कहिए महाराज! यदि यह पृथिवी अचला है तो बिना घूमने के यह आकाश में कैसे ठहरी हुई है? हाँ, आपके यहाँ तो यह पृथिवी हाथी के शिर पर ठहरी हुई लिखी है, जैसेकि—

सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन। धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः॥ १४॥
यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रामार्थं महागजः। खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत्॥ १५॥

—वाल्मी० बाल० स० ४०

हे राम! इस वनपर्वत के सहित सम्पूर्ण पृथिवी को विरूपाक्ष हाथी ने सिर पर धारण कर रक्खा है॥ १४॥ हे राम! जब पर्व के दिन आराम लेने के लिए कष्ट से वह हाथी सिर को हिलाता है, तब भूचाल आता है॥ १५॥

तो फिर कहिए महाराज! वह हाथी किस चीज़ पर है और पृथिवी के एक देश में भूचाल क्यों आता है? सारी पृथिवी पर पर्व के दिन एकदम आना चाहिए। यह है सनातनधर्म की भूगोलविद्या, जिसको मानते हुए आप फूले नहीं समाते!

(५१८) प्रश्न—'आ कृष्णेन' इत्यादि [यजुः० ३३।४३] इस मन्त्र में सूर्य का पृथिवी के गिर्द घूमने का वर्णन है। —पृ० २७०, पं० १९

उत्तर—इस मन्त्र में सूर्य के पृथिवी के गिर्द धूमने का नाम तक भी नहीं है और न ही सूर्य पृथिवी के गिर्द घूम सकता है। जैसाकि स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है किन्तु आपने उसका कोई उत्तर नहीं दिया—'जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती है,

वे सब **अज्ञ** हैं, क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते, अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्न) पृथिवी से लाखों गुणा बड़ा और करोड़ों कोस दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती है और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता, वैसे पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन-रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं।'

सूर्य का पृथिवी के गिर्द घूमना वेद के भी विरुद्ध है, जैसाकि—

या गौर्वर्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वती॥

—ऋ० १०।६५।६

भाषार्थ—जो पृथिवी अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर घूमती है वह पृथिवी अनेक प्रकार के रस, फल, फूल, तृण और अन्न आदि पदार्थों से सब प्राणियों को निरन्तर पूर्ण करती है। जो विद्यादि गुणों को देनेवाला परमेश्वर है उसी के जानने के लिए सब जगत् दृष्टान्त है और जो विद्वान् लोग हैं उनको उत्तम पदार्थों के दान से अनेक सुखों को भूमि देती है और पृथिवी, सूर्य, वायु और चन्द्र आदि गौ नामवाले पदार्थ ही सब प्राणियों की वाणी का निमित्त भी हैं॥ ६॥

इन मन्त्र से स्पष्टरूप से पृथिवी का सूर्य के गिर्द घूमना वर्ण किया है, अतः सूर्य का पृथिवी के गिर्द घूमना वेद तथा युक्तिविरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

आपके मन्त्र के वेदानुकूल यथार्थ अर्थ इस प्रकार हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

—यजुः० ३३।४३

भाषार्थ—प्रकाशस्वरूप सूर्य आकर्षणगुण के साथ वर्त्तमान लोक-लोकान्तरों को अपनी-अपनी कक्षा में स्थित करता हुआ और सब प्राणी-अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करता हुआ और प्रकाश और रमणीयस्वरूप से पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता हुआ अपनी धुरी पर घूमता है॥ ४३॥

रामायण तथा महाभारत में भी पृथिवी का ही घूमना लिखा है—

या चेयं जगतो माता सर्वलोकनमस्कृता। अस्याश्च चलनं भूमेर्दृश्यते कोसलेश्वर॥ १०॥

—वाल्मी० अरण्य० स० ६६

एतदेवंविधं दृष्टमाश्चर्यं तत्र मे द्विज॥ ५॥
सूर्येण सहितो ब्रह्मन् पृथिवी परिवर्तते॥ ६॥

—महा० शान्ति० अ० ३६३

भाषार्थ—सब लोकों से नमस्कार करने योग्य जो यह जगत् की माता है, हे कोसलेश्वर! इस भूमि का भी चलना नज़र आता है॥ ९॥ हे ब्राह्मण! वहाँ पर यह इस प्रकार से मैंने आश्चर्य देखा कि सूर्य के समेत पृथिवी घूमती है॥ ५-६॥

इससे सिद्ध है कि पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है, सूर्य पृथिवी के गिर्द नहीं घूमता, अपितु सूर्य अपनी परिधि पर घूमता है।

(५१९) प्रश्न—निघण्टु ने पृथिवी को 'निर्ऋति' लिखा है। 'निर्ऋति' का अर्थ है गमनरहित (चालशून्य)। यदि पृथिवी चलती होती तो निघण्टु इसको 'निर्ऋति' कैसे लिखता?

—पृ० १७१, पं० ३

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय! जो कुछ मन में आया घर से ही लिख मारा। कहिए

महाराज! 'निर्ऋति' के अर्थ गमनरहित, चालशून्य कहाँ लिखे हैं? क्या इस प्रकार की चालबाजियों से कभी वैदिक सिद्धान्त मिथ्या हो सकता है? श्रीमान्‌जी निघण्टु ने जहाँ पृथिवी का नाम 'निर्ऋति' लिखा है वहाँ पर 'गौ' भी पृथिवी का नाम लिखा है। और निरुक्त ने इन दोनों शब्दों के अर्थ भी लिखे हैं जोकि आपने अपने स्वभावानुसार चुरा लिये हैं। हम वे अर्थ नीचे लिखते हैं—

गौः निर्ऋतिः ॥ —निरु० अ० २ खं० ५

गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरङ्गता भवति।

यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति॥ २॥ —निरु० अ० २।५।२

तत्र निर्ऋतिर्निरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरितरा॥ ३॥ —निरु० अ० २ खं० ७

भाषार्थ—गौ यह पृथिवी का नाम है। जो यह घूमने के कारण दूर-दूर चली जाती है, इसलिए उसका नाम गौ है। और चूँकि प्राणी इसमें चलते-फिरते हैं, इसलिए पृथिवी का नाम गौ है॥ २॥

निरमणात् निविष्टानि रमन्तेऽस्यां भूतानीति निर्ऋतिः पृथिवी। इतरा कृच्छ्रापत्तिः दुःखसंज्ञिका, निर्ऋतिः पाप्मा! एका निविष्टानां भूतानां रमयित्री, एका पुनः कृच्छ्रमापादयित्री। —दुर्गाचार्य

चूँकि इसमें प्राणी आनन्द पाते हैं, इसलिए पृथिवी का नाम निर्ऋति है। दूसरे दुःख संज्ञावाली पापिनी होने से, तीसरे प्राणियों को आनन्द देने से पृथिवी निर्ऋति है। और एक पृथिवी दुःखों का सम्पादन करनेवाली है, इसलिए पृथिवी का नाम निर्ऋति है। अमरकोश ने भी निरुक्त के दूसरे अर्थ की पुष्टि की है कि—

अलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः। —अमरकोश १।९।२

नरक की अशोभा का नाम निर्ऋति है॥ २॥

कहिए महाराज! इस ग़लतबयानी पर शरम तो नहीं आती?

(५२०) प्रश्न—यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः॥

—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है, ऐसे ही स्वभाव से पृथिवी अचल है। वस्तुओं की शक्ति विचित्र है। इस प्रमाण में पृथिवी को स्वभाव से अचला माना है। —पृ० २७१, पं० ६

उत्तर—आपने ऊपर वेद का नाम लिखकर नीचे सिद्धान्तशिरोमणि का प्रमाण दे दिया। क्या सिद्धान्तशिरोमणि वेद है? यदि नहीं तो वेद कहकर इसका प्रमाण देना प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान है या नहीं? और फिर सिद्धान्तशिरोमणि का भी अचला कहने से यह अभिप्राय नहीं है कि पृथिवी गतिशून्य है, अपितु सिद्धान्तशिरोमणि का यह अभिप्राय है कि पृथिवी अपने नियम में अचला है, अर्थात् वह नियमानुसार घूमती है, नियम को नहीं तोड़ती। जैसेकि—'**ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्**' इत्यादि मन्त्रों में ध्रुवा का अर्थ 'नियमानुकूल चलनेवाली' है, न कि गतिशून्य, क्योंकि सिद्धान्तशिरोमणि में इस शंका का समाधान करते हुए कि 'यदि पृथिवी घूमती है तो हमको प्रतीत क्यों नहीं होती' निम्न श्लोक दिया है कि—

कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः। —सिद्धान्तशिरोमणि

जैसे कुम्हार के घूमते हुए चाक पर बैठे कीड़े उसकी गति को नहीं जान सकते, ऐसे ही मनुष्यों को पृथिवी चलती हुई ज्ञात नहीं होती। फिर सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है कि—

भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्त्रं प्रवहानिलेन।
यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या॥

—सिद्धान्तशिरोमणि

प्रवह–शक्ति के कारण सब तारागण ग्रहों के सहित सदा घूमते रहते हैं। ये सब लघुगति से पूर्व की ओर को घूमते हैं, परन्तु शीघ्र गति से पश्चिम को जाते हुए दिखलाई देते हैं। इस विलोम गति अर्थात् ग्रहों के पश्चिम की ओर जाते हुए दीखने का कारण भूमि का अपनी धुरी प घूमना है, जैसे रेलगाड़ी में बैठा हुआ मनुष्य सड़क के किनारे को उलटी ओर को दौड़ते हुए देखता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि सिद्धान्तशिरोमणि पृथिवी का घूमना मानता है, और पृथिवी को अचला कहने से उसका अभिप्राय यह है कि पृथिवी अपने नियम से चलायमान नहीं होती अपितु अपनी परिधि पर नियमबद्ध घूमती है। इसपर भी यदि आप यही कहें कि नहीं सिद्धान्तशिरोमणि तो अचला कहने से पृथिवी को गतिशून्य मानता है तो हमारी दृष्टि में परस्पर–विरुद्ध तथा वेदविरुद्ध होने से उसका प्रमाण मानने के योग्य नहीं है, क्योंकि वेद ने पृथिवी को 'गौ' शब्द से गतिशील माना है।

(५२१) प्रश्न— ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा॥ ३०॥
मन्दामरेज्य भूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः। परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधरा घनाः॥ ३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥ ३२॥ —सूर्यसिद्धान्त अ० १२

भाषार्थ—ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाशकक्ष कहते हैं। उसके मध्य में नक्षत्रमण्डल का भ्रमण होता है। उसके नीचे यथाक्रम शनि, बृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुद्ध, चन्द्र एक से नीचे एक भ्रमण (अपनी–अपनी मध्यकक्षा में) करते हैं, उसके नीचे सिद्ध, विद्याधर, मेघ हैं और चारों ओर से बीचोंबीच ब्रह्माण्ड के मध्य (केन्द्र में) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल सर्वतोभाव से स्थित है।

इस 'तष्ठति' पद से सिद्ध है कि पृथिवी घूमती नहीं, अपितु पृथिवी गतिशून्य है और शनि आदि इसके चारों ओर घूमते हैं। —पृ० २७१, पं० १२

उत्तर—कहिए श्रीमान्‌जी! क्या सूर्यसिद्धान्त भी वेद है जो इसे वेद के नाम से पेश किया जा रहा है? और फिर इस प्रमाण में भी न तो यह लिखा है कि पृथिवी गतिशून्य है और न ही यह लिखा है कि सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है, अपितु इस प्रमाण में यह दिखलाया है कि आकाश में सब लोक–लोकान्तर अपनी–अपनी परिधि पर घूम रहे हैं। किसी का स्थान पृथिवी की अपेक्षा ऊपर को है और किसी का स्थान पृथिवी की अपेक्षा नीचे को है और पृथिवी सबके मध्य में है। हाँ, यदि आप '**भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति**' से यह सिद्ध करना चाहें कि पृथिवी स्थिर तथा गतिशून्य है तो फिर आपको '**अधोऽस्थाः**' इस पद से भी यह मानना पड़ेगा कि सूर्य आदि लोक भी स्थिर और गतिशून्य हैं, क्योंकि '**तिष्ठति**' और '**स्थाः**' ये दोनों एक ही धातु के प्रयोग हैं। रही '**परिभ्रमन्ति**' क्रिया, सो यह सब लोक–लोकान्तरों के लिए प्रयुक्त हुई है कि जिसमें भूमि भी शामिल है। सारांश यह कि यहाँ पर सूर्यसिद्धान्त ने स्थानभेद का प्रतिपादन किया है, क्रियाभेद का नहीं, अतः सिद्ध है कि सूर्यसिद्धान्त भी पृथिवी को सूर्यादि की भाँति घूमनेवाली ही मानता है, गतिशून्य नहीं मानता। यदि आप अब भी यह कहें कि सूर्यसिद्धान्त पृथिवी को गतिशून्य मानता है तो हमें कहना पड़ेगा कि सूर्यसिद्धान्त भी वेद के विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वेद भूमि को गतिशील और घूमनेवाली मानता है।

(५२२) प्रश्न—स्वामीजी एक वेदमन्त्र का गला घोट, देवता मिटा, मन्त्र के दो टुकड़े कर, लिखते हैं कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ —यजुः० ३।६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है, इसलिए भूमि घूमा करती है।

स्वामीजी वेद का कचूमर निकालकर ईसाईसिद्धान्तों को वैदिक सिद्धान्त बनाते हैं।

—पृ० ९३, पं० ११

उत्तर—मन्त्रों के टुकड़े करके प्रकरण के विरुद्ध अर्थ करना स्वामीजी का काम नहीं है, अपितु यह काम आप लोगों का है। स्वामीजी ने इस मन्त्र के तीन स्थानों पर अर्थ किये हैं। एक, यजुर्वेद के भाष्य में; दूसरे, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'पृथिवी-आदिलोकभ्रमणविषय' प्रकरण में; तीसरे, सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में। तीनों ही स्थानों में स्वामीजी ने एक ही अर्थ किया है। सत्यार्थप्रकाशवाला अर्थ आपने ऊपर दे रक्खा है। यजुर्वेद से हम नीचे लिख देते हैं—

(अयम्) यह प्रत्यक्ष **(गौः)** गोलरूपी पृथिवी **(पितरम्)** पालन करनेवाले **(स्वः)** सूर्यलोक के **(पुरः)** आगे-आगे वा **(मातरम्)** अपनी योनिरूप जलों के साथ वर्त्तमान **(प्रयन्)** अच्छी प्रकार चलती हुई **(पृश्निः)** अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश में **(आक्रमीत्)** चारों तरफ़ घूमती है। —यजुः० ३।६

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिए कि जिससे यह भूगोल पृथिवी, जल और अग्नि के निमित्त से उत्पन्न हुई अन्तरिक्ष वा अपनी कक्षा अर्थात् योनिरूप जल के सहित आकर्षणरूपी गुणों से सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य के चारों ओर क्षण-क्षण घूमती है, इसी से दिन-रात्रि, शुक्ल वा कृष्णपक्ष ऋतु और अयन आदि काल-विभाग-क्रम से सम्भव होते हैं॥ ६॥

स्वामीजी ने यह सिद्धान्त ईसाइयों से नहीं लिया अपितु वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ईसाई लोग तो पृथिवी को गतिशून्य ही मानते हैं जैसाकि आपने भी इस बात को स्वीकार किया है कि—

'तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का अचलत्व मानते रहे हैं।'

—पृ० २७३, पं० २०

फिर स्वामीजी पर ईसाइयों की नकल का दोष लगाना वदतोव्याघात नहीं तो और क्या है?

(५२३) प्रश्न—क्या मज़े की बात है मुसलमानों का सिद्धान्त वेद में से निकल पड़ा!

—पृ० २७२, पं० १०

उत्तर—'पढ़े न लिखे नाम मुहम्मद फाज़िल' यह लोकोक्ति किसी ने आप-जैसों के लिए ही घड़ी है, वरना आप मुसलमानों की किसी किताब का प्रमाण दें, जिससे यह सिद्ध हो कि मुसलमान पृथिवी का सूर्य के गिर्द घूमना मानते हैं। यदि नहीं तो फिर आपका यह कहना कि 'मुसलमानों का सिद्धान्त वेद से निकल आया' अनर्गल वाग्वाद नहीं तो और क्या है? श्रीमान्जी! सिद्धान्तों के बारे में तो मुसलान लोग पौराणिकों के भी बड़े भाई हैं। देखिए कुरानशरीफ में क्या लिखा है—

'और किये हमने बीच ज़मीन पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे साथ उनके।'

—शाह रफ़ी उद्दीन, देहलवी

'और हमने ज़मीन में इसलिए पहाड़ बनाये कि ज़मीन उन लोगों को लेकर हिलने न लगे।'

—मौलाना अशरफ़ अली थानवी, कुरान शरीफ़ मञ्जिल ४ सूरत २१ आयत ३०

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि इस्लाम ज़मीन को घूमनेवाली नहीं मानता, अपितु गतिशून्य मानता है जोकि युक्ति तथा तर्कविरुद्ध है।

ज़मीन का अपने और सूर्य के गिर्द घूमना वेद ही मानते हैं और यही सिद्धान्त सृष्टिनियम, प्रमाण तथा युक्ति के अनुकूल है।

(५२४) प्रश्न—इस मन्त्र का सर्पराज्ञी कद्रू ऋषि, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है। वेदों का नियम है कि जो जिस मन्त्र का देवता होता है उस मन्त्र में उसी विषय का वर्णन होता है। जब इसका अग्नि देवता है तो पृथिवीपरक अर्थ किस प्रकार हो जावेगा? —पृ० २७२, पं० १६

उत्तर—पृथिवी का घूमना सूर्य के निमित्त से होता है और पृथिवी उसी अग्नि का पुंज है, अतः इस मन्त्र में पृथिवी के द्वारा अग्नि का ही वर्णन है, और स्वामीजी ने भी इस मन्त्र के आरम्भ में यही लिखा है कि—

'अब अग्नि के निमित्त से पृथिवी का भ्रमण होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में प्रकाशित किया है।'
—दयानन्दकृत यजुर्वेदभाष्य ३।६

अतः स्वामीजी का अर्थ देवता के अनुसार ही है। कहिए महाराज! आप तो कहते थे कि स्त्रियों को वेद के अध्ययन का अधिकार ही नहीं है। यहाँ साँपों की रानी कद्रू वेदमन्त्रों की ऋषिका कैसे बन गई? और आप तो देवजाति को मनुष्यजाति से भिन्न मानते थे। यहाँ पर मन्त्र के विषय को देवता मान बैठे। ठीक है कि सचाई सौ पर्दे फाड़कर भी प्रकट हुए बिना नहीं रहती।

(५२५) प्रश्न—इस मन्त्र के अर्थ में 'मातरम्', 'पुरः' आदि कई-एक शब्द बिल्कुल ही छोड़ दिये, उनका अर्थ ही नहीं किया। —पृ० २७२, पं० २५

उत्तर—यदि आपको नज़र न आवे तो हम क्या करें? वरना इस मन्त्र के अर्थों में 'मातरम्' का अर्थ जल तथा 'पितरम्' का अर्थ सूर्य तथा 'पुरः' का अर्थ आगे किया हुआ विद्यमान है। इस अर्थ में विशेष हेतु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देखने की कृपा करें।

(५२६) प्रश्न—यदि हम इस मन्त्र के अर्थ को किसी विद्वान् के सामने रख दें तो कोई भी यह नहीं कहेगा कि इस मन्त्र का यही अर्थ है जो इसकी भाषाटीका में लिखा है।
—पृ० २७३, पं० २

उत्तर—यदि कोई वेद के तत्त्वार्थ को जाननेवाला मुनि वा वेद के अर्थ का द्रष्टा ऋषि अथवा पदार्थविद्या का जाननेवाला विद्वान् होगा तो अवश्य ही यह कहेगा कि स्वामीजी का इस मन्त्र का अर्थ वास्तव में आर्षभाष्य है और प्रमाण के योग्य है। हाँ, यदि **'पण्डितंमन्यः'**, **'चारपायः बरो किताबे चन्द'**, **'स्थाणुरयं भारहारः'** हो तो वह बेशक अर्थों में सन्देह कर सके।

(५२७) प्रश्न—वेदमन्त्र का ठीक अर्थ देखिए—

"**(आयम्)** इस **(गौः)** यज्ञसिद्धि के अर्थ यजमान के घर में आने-जानेवाले **(पृश्निः)** श्वेत, रक्त आदि बहु प्रकार की ज्वालाओं से युक्त अग्नि ने **(आ)** सब ओर से आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि के स्थानों में **(अक्रमीत्)** अतिक्रमण किया **(पुरः)** दिशा में **(मातरम्)** पृथिवी को **(असदत्)** प्राप्त किया **(च)** और **(स्वः)** सूर्यरूप होकर **(प्रयन्)** स्वर्ग में चलते अग्नि ने **(पितरम्)** पृथिवी को **(असदत्)** प्राप्त किया।"

उत्तर—आपका यह अर्थ निम्न हेतुओं से सर्वथा निर्मूल और कपोलकल्पित है।

(१) आपका **(आयं)** लिखना ग़लत है, यह शब्द **(आ अयम्)** है, अतः **(अयम्)** लिखना चाहिए था। आपको सन्धिविच्छेद का भी ज्ञान नहीं है।

(२) गौ शब्द के अर्थ आपने अग्नि किये हैं, किन्तु यह प्रमाण नहीं दिया कि गौ के अर्थ

अग्नि कैसे हो सकते हैं? स्वामीजी ने जो गौ शब्द के पृथिवी अर्थ किये हैं उसमें प्रमाण ये हैं कि—

गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरं गता भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति।

—निरु० अ० २ खं० ५

अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक तथा आपका कल्पित है।

(३) आपने **'पृश्निः'** शब्द के अर्थ **'अग्नि'** किये हैं। कृपया इन अर्थों में प्रमाण पेश कीजिएगा। स्वामीजी ने अपने अन्तरिक्ष अर्थ में प्रमाण दिया है कि—

स्वः, पृश्निः, नाकः, गौः, विष्टप, नभ इति षट् साधारणानि। पृश्निरिति; अन्तरिक्षस्य नामोक्तम्। —नि० अ० २ खं० १३

अतः स्वामीजी का अन्तरिक्ष अर्थ ठीक और आपका अग्नि अर्थ निर्मूल है।

(४) आपने **'मातरम्'** का अर्थ पृथिवी किया है। भला! बतलाइए कि अग्नि की माता पृथिवी कैसे है? **'वायोरग्निः'** अग्नि की माता वायु तो हो सकती है, पृथिवी नहीं। स्वामीजी ने लिखा है कि—

अद्भ्यः पृथिवीति तैत्तिरीयोपनिषदि। यस्माद्यज्जायते सोऽर्थस्तस्य मातापितृवद् भवति।

स्वामीजी ने जल अर्थ किया है, अतः स्वामीजी का अर्थ ठीक और आपका सर्वथा अशुद्ध है?

(५) आपने **'पितरं'** का अर्थ स्वर्गलोक किया है। बतलाइए, यह किस प्रमाण से किया है। स्वामीजी ने अर्थ किया है कि—

"स्वः शब्देनादित्यस्य ग्रहणात् पितुर्विशेषणत्वादादित्योऽस्याः पितृवदिति निश्चीयते।"

आदित्य को पृथिवी का पितावत् बताया है—

अतः स्वामीजी का अर्थ सत्य तथा आपका असत्य है। यद्यपि आपका सम्पूर्ण अर्थ युक्ति और प्रमाणों के विरुद्ध है तथापि यदि आपके अर्थ को ठीक भी मान लिया जावे तो भी इससे स्वामीजी के अर्थ का निषेध नहीं होता, क्योंकि एक मन्त्र के अनेक अविरोधी अर्थ हो सकते हैं। आपका अर्थ स्वामीजी के अर्थ का विरोधी नहीं है और आपने स्वामीजी के अर्थ का युक्ति और प्रमाण से कोई खण्डन नहीं किया, अतः स्वामीजी का अर्थ हर प्रकार से ठीक है।

(५२८) प्रश्न—तेरहवीं शताब्दी तक भूतल के समस्त देश धरा का अचलत्व मानते रहे हैं। इसके पश्चात् सबसे प्रथम ईरान के दार्शनिक पैथागोरस ने यह आवाज़ उठाई कि पृथिवी घूमती है। इसके पश्चात् केप्लर और सर न्यूटन ने संसार में इस सिद्धान्त का प्रचार किया। भारतवर्ष में एक आर्यभट्ट नामक विद्वान् हुए उन्होंने एक सौ बीस श्लोक का "आर्यभट्टि" नामक ग्रन्थ लिखा और इसमें भूभ्रमण के सिद्धान्त को सिद्ध किया। शिक्षा में आ जाने के कारण इस मिथ्या सिद्धान्त को संसार सत्य मानने लगा। जब संसार इसको मान बैठा तब स्वामी दयानन्दजी ने वेद से सिद्ध कर दिया। —पृ० २७३, पं० २०

उत्तर—वेदों में भूभ्रमण का यथार्थ ज्ञान अनादिकाल से विद्यमान है। महाभारत के समय तक आर्यलोग इसको जानते और मानते थे। महाभारत के पश्चात् वैदिक शिक्षा का लोप हो जाने से लोग इस सिद्धान्त को भी भूल गये। समय-समय पर इस वैदिक सचाई का अनुभवी लोगों ने अनुभव किया और उसका जनता में प्रचार भी किया। यद्यपि लोगों ने इनका विरोध किया किन्तु अन्ततः ये लोग अपनी बात विद्वानों को मनवाने में सफल हो गये और दुनिया भूमि के अचलत्वरूपी मिथ्या सिद्धान्त को छोड़कर भूभ्रमण के सत्य वैदिक सिद्धान्त को मानने लगी। जब

स्वामी दयानन्दजी का प्रादुर्भाव हुआ तो उन्होंने वैदिक प्रमाण की उसपर मुहर लगा दी। स्वामीजी ने भूभ्रमण के बारे में वेद के तीन प्रमाण—दो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में **'आयं गौः'** [यजुः० ३।६] **'या गौर्वर्तनिम्'** [ऋ० १०।६५।६], तथा तीसरा सत्यार्थ० में **'आ कृष्णेन रजसा'** [यजुः० ३३।४३] दिये हैं और निरुक्त के प्रमाणों से अपने अर्थ की पुष्टि करके भूभ्रमण को सिद्ध किया है। आपने उनमें से केवल एक **'आयं गौः'** पर आपत्ति उठाई, बाकी दो को छुआ तक भी नहीं। और इस एक के अर्थों को भी आप युक्ति तथा प्रमाणों से खण्डित नहीं कर सके। स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा वैदिक सचाई पर मुहर लगाने के योग्य है, और भी देखिए—

भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्यावृत्य प्रतिदैविसकौ। उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रहणक्षत्राणाम्॥

[अनुपलब्धमूल।—सं०]—आर्यभट्ट

सूर्य आदि सब नक्षत्र स्थिर हैं (अर्थात् अपनी परिधि पर घूमते हैं, किसी के गिर्द नहीं घूमते)। पृथिवी ही बार-बार अपनी धुरी पर घूमकर प्रतिदिवस इनके उदय और अस्त का सम्पादन करती है।

अनुलोमगतिर्नौ स्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भान्ति तद्वत समपश्चिमगानि लंकायाम्॥ —आर्यभट्टीम्, गोलया० ९

जैसे नौका में बैठे हुए मनुष्य को पर्वतादि किनारे की अचल वस्तुएँ उलटी ओर को चलती हुई दिखाई देती हैं ऐसे ही पूर्व की ओर को चलती हुई पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यों को अचल तारे भी पश्चिम को जाते हुए दिखाई दते हैं।

(५२९) प्रश्न—जैसे रस्सी में सर्पज्ञान मिथ्या और भ्रमजन्य ज्ञान है, इसी प्रकार नौका में स्थिरता और नदी के तट के वृक्षों में चलने का ज्ञान भी भ्रमजन्य और मिथ्याज्ञान है। भ्रमजन्य मिथ्याज्ञान की चर्चा न्याय-वेदान्त-प्रभृति समस्त हिन्दूदर्शनों में आती है। दर्शनों ने स्पष्ट कह दिया है कि भ्रमजन्य मिथ्याज्ञान असत्य होता है, अतएव त्याज्य है। फिर हम किस आधार पर नौका की स्थिरता और किनारे के वृक्षों का चलना, इस भ्रमजन्य ज्ञान को सत्य मानें?

—पृ० २७४, पं० १८

उत्तर—आपका फरमाना बिलकुल सत्य है। हम भी यही कहते हैं कि जैसी रस्सी में सर्प-ज्ञान तथा नौका में बैठने से नौका में बैठने से नौका की स्थिरता तथा नदी के किनारे के वृक्षों के चलने का ज्ञान भ्रमजन्य होने से मिथ्या है और त्यागने योग्य है वैसे ही घूमनेवाली पृथिवी पर रहनेवाले हम लोगों का यह ज्ञान कि ''पृथिवी स्थिर है और सूर्य आदि ग्रह इसके चारों तरफ घूम रहे हैं'' भ्रमजन्य होने से मिथ्या और त्यागने योग्य है। वास्तविक ज्ञान यही है कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है और अपने गिर्द भी घूमती है।

(५३०) प्रश्न—नौका में स्थिरताबुद्धि और वृक्षों में संचलनबुद्धि असावधानी से होती है। यदि तुम नौका पर बैठ अपने मन को रोक, सावधानता से देखोगे तो यह विपरीत ज्ञान हो ही नहीं सकता। जो बात असावधानी से मनुष्य के अन्तःकरण में बैठी है, उसको सत्य मानना मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं है। —पृ० २७४, पं० २७

उत्तर—आपके उपर्युक्त लेख के अनुसार ही पृथिवी में स्थिरताबुद्धि तथा सूर्यादि में संचलन बुद्धि असावधानी, ग्रहविद्या के अज्ञान, वेद के सिद्धान्त के न जानने से होता है। यदि आप एकान्त में बैठकर, मन को एकाग्र कर पृथिवी के घूमने के हेतुओं पर विचार करके सावधानता से चिन्तन करेंगे तो यह विपरीत ज्ञान आपके अन्तःकरण से निकल जावेगा और आपको निश्चय हो जावेगा कि आकाश में कोई वस्तु घूमे बिना नहीं ठहर सकती, अतः सूर्यादि अपनी परिधि पर घूमते हैं

किसी के गिर्द नहीं घूमते और पृथिवी अपने गिर्द भी घूमती है जिससे दिन-रात पैदा होते हैं और सूर्य के गिर्द भी घूमती है, जिससे ऋतु-परिवर्त्तन होता रहता है।

(५३१) प्रश्न—जो पृथिवी को अचला और ग्रहगणों का भ्रमण मानते हैं उनका यह कथन है कि जैसे कुछ मनुष्य वृत्ताकार चबूतरे पर खड़े हों और उस चबूतरे की बाहिरी भूमि पर घोड़े दौड़ रहे हों, इसी प्रकार हम वृत्ताकार गोल पृथिवी पर ठहरे हैं और घोड़ों की भाँति भपंजर पृथिवी की परिक्रमा दे रहा है। —पृ० २७५, पं० ८

उत्तर—निम्न प्रमाणों तथा हेतुओं से आपका उपर्युक्त लेख सर्वथा असत्य है—

(१) भूमि गोल है—

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥ ३२॥ —सूर्यसिद्धान्त अध्याय १२

यहाँ पर पृथिवी का नाम भूगोल आने से सिद्ध है कि पृथिवी गोल है।

(२) भूमि वृत्ताकार चबूतरे की भाँति गोल नहीं अपितु गेंद की भाँति गोल है—

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नु रहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः॥ —लल्लसिद्धन्ते

यदि पृथिवी (चबूतरे की भाँति) चपटी है तो बहुत दूर स्थित ताड़ के समान ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पूरे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते, अर्थात् दूर स्थित वृक्षों के केवल ऊर्ध्व भाग दृष्टि पड़ने का कारण यही है कि उनका नीचे का भाग पृथिवी की गोलाई की ओट में आ जाता है। इससे सिद्ध है कि पृथिवी गेंद की तरह गोल है।

(३) भूमि चबूतरे की भाँति गोल क्यों नज़र आती है—

अल्पकायतया लोकाः स्वात्स्थानात्सर्वतोमुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम्॥

—सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये १२।५४

मनुष्य (पृथिवी की अपेक्षा) बहुत छोटे शरीर का होने के कारण अपने स्थान से चारों ओर मुख करते हुए (गेंद के समान) वृत्ताकार पृथिवी को चक्र के सदृश देखते हैं।

इससे सिद्ध है कि पृथिवी वास्तव में गेंद के समान गोल है।

(४) आपने स्वयं ब्रह्माण्ड को गोल लिखा है, जिसमें पृथिवी भी शामिल है—

"दक्षिण दिशा से उत्तर तक और पूर्व से पश्चिम तक, नीचे से ऊपर तक, सब तरफ़ पचास कोटि योजन प्रमाण रखनेवाला मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है।"

—आपकी पुस्तक पृ० १५५, पं० १३

(५) यदि पृथिवी गोल चबूतरे की भाँति निश्चल है तो वह किसके सहारे ठहरी हुई है, क्योंकि आकाश में निश्चल पदार्थ सहारे के बिना नहीं ठहरा सकता, अतः आपका सिद्धान्त ग़लत है, जैसाकि—

मूर्त्ते धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्त्तिः॥

—सिद्धान्तशिरोमणि, गोला० भु० ४

यदि पृथिवी का कोई मूर्त्तिमान् धर्त्ता माना जाए तो उस धर्त्ता का कोई और धर्ता मानना पड़ेगा और उसका कोई अन्य। इसी तरह से कहीं अन्त न पावेगा, अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा। अन्त में यही मानना पड़ेगा कि पृथिवी अपनी ही शक्ति से स्थित है, अर्थात् उसको किसी मूर्त्तिमान

धर्त्ता की आवश्यकता नहीं है। अत:—

भपंजरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः। —सिद्धान्तशिरोमणि, गोला०भु० ७

सब तारागण (नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह) बिना किसी आधार के आकाश में घूमते हैं और क्योंकि पृथिवी भी एक ग्रह है, इसलिए यह भी आधाररहित ही प्रतीत होती है, अर्थात् घूमती है।

(६) यदि यह मान लिया जावे कि पृथिवी चबूतरे की भाँति है और सूर्य आदि ग्रह इसके चारों ओर घोड़ों की भाँति दौड़ रहे हैं तो दिन और रात का सिलसिला नहीं बन सकेगा, क्योंकि फिर सूर्य अस्त कैसे होगा? अत: आपका सिद्धान्त ग़लत है, जैसाकि—

घट इव निजमूर्त्तिच्छायायैवातपस्थः॥—सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय [अनुपलब्धमूल]
जैसे धूप में रक्खा हुआ घड़ा आधा प्रकाशित और आधा अपनी ही मूर्त्ति की छाया में रहता है। इससे सिद्ध है कि पृथिवी के गोल होने से ही दिन-रात पैदा हो सकते हैं। और भी—

भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वच्छायया विवर्णानि। अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि दीप्यन्ते॥
—आर्यभट्टीयम्, गोलपा० ५

गोल होने के कारण भूमि आदि उपग्रहों के आधे भाग अपनी छाया से अन्धकार में रहते हैं और सूर्य के सामने के आधे भाग प्रकाशित होते हैं। उन्हीं का नाम दिन-रात है।

अत: सिद्ध है कि पृथिवी को चबूतरे के समान चपटी मानने से दिन-रात की व्यवस्था नहीं बन सकती, अपितु गेंद के समान गोल मानने से ही दिन-रात की व्यवस्था बन सकती है।

(७) पृथिवी को वृत्ताकार चबूतरे की भाँति चपटी तथा ग्रहों को घोड़ों की भाँति उसके चारों तरफ दौड़ता हुआ मानने से सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसी स्थिति में किसी की छाया किसी पर न पड़ सकेगी, अत: आपका सिद्धान्त ग़लत है, जैसाकि—

छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ॥ —सूर्यसिद्धान्त० ४।९

सूर्यग्रहण में चन्द्रमा बादल के सदृश सूर्य को ढक लेता है और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा पूर्व की ओर जाता हुआ पृथिवी की छाया में आ जाता है, अत: पृथिवी को गेंद की भाँति गोल मानने से सूर्य तथा चाँद के ग्रहण का होना सम्भव है, अन्यथा नहीं।

इत्यादि अनेक हेतुओं से आपका सिद्धान्त क़तई निर्मूल और युक्तिविरुद्ध है।

(५३२) प्रश्न—सूर्यसिद्धान्त ने उन ग्रहों के नाम स्पष्ट लिख दिये जो पृथिवी के चारों ओर घूमते हैं। आकाशस्थ सब ही तारे चौबीस घण्टे में पृथिवी के चारों ओर घूमते हैं।
—पृ० २७५, पं० २४

उत्तर—हम पीछे सिद्ध कर आये हैं कि सूर्यसिद्धान्त सूर्य का भूमि के गिर्द घूमना नहीं मानता तथापि यदि आपकी बात मान ली जावे कि 'सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों ही चौबीस घण्टे में पृथिवी के गिर्द चक्र लगा जाते हैं और पृथिवी घूमती नहीं अपितु वृत्ताकार चबूतरे की भाँति है और हम उसके ऊपर बैठे हैं और सूर्य-चाँद आदि घोड़ों की भाँति उसके चारों ओर २४ घण्टे में चक्र लगाते हैं तो ऋतु-परिवर्तन, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष, दिनों का बढ़ना-घटना, सूर्य-चाँद का ग्रहण इत्यादि सब असम्भव हो जावेंगे, अत: आपके ये सम्पूर्ण सिद्धान्त कपोलकल्पित और मिथ्या ही हैं।

(५३३) प्रश्न—'भ्रमति भ्रमस्थितेव ६', 'अन्यच्च भवेद् ७' इत्यादि वराहमिहर तथा **'यदि च भ्रमति ४२', 'पूर्वाभिमुखे ४३'** शि० वृ० गो०। इन श्लोको में भूभ्रमणवादियों के सिद्धान्त में पाँच दोष दिखलाये हैं: (१) वायु का ज़ोरदार चलना। (२) बड़े ज़ोर के साथ ध्वजा-

पताकाओं का पश्चिम को उड़ना। (३) बादल का पश्चिम को जाना। (४) बाण का पश्चिम को गिरना। (५) पक्षियों को घोंसले का न मिलना। —पृ० २७६, ८

उत्तर—इन आपके दिये श्लोकों में पिछले चार दोष तो वर्णन किये गये हैं, किन्तु प्रथम दोष आपने अपने घर से ही मिला दिया है। लेकिन आपको कुछ-न-कुछ हेर-फेर किये बिना चैन कहाँ? चोर यदि चोरी छोड़ दे तो हेरा-फेरी तो नहीं छोड़ता! खैर, अब आप अपनी युक्तियों का उत्तर सुनिए।

(१) आपका प्रथम आक्षेप यह है कि जैसे "रेल और मोटर के ज़ोर से चलने से वायु आगे से पीछे को बड़े ज़ोर से चलती है, ऐसे ही यदि पृथिवी पश्चिम से पूर्व को घूमती है तो वायु बड़े ज़ोर के साथ हर समय पूर्व से पश्चिम को चलनी चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं होता, इससे सिद्ध है कि पृथिवी घूमती नहीं", सो सुनिएगा। पृथिवी की अपेक्षा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे, पृथिवी के चारों तरफ़, आकाश में सैकड़ों-सहस्रों लोक-लोकान्तर विद्यमान हैं जो सब-के-सब आपस की आकर्षणशक्ति से आकाश में ठहरे हुए हैं। पृथिवी भी उन्हीं की आकर्षणशक्ति से आकाश में ठहरी हुई है। इनमें से कोई पृथिवी के समीप हैं और कोई दूर हैं, और पृथिवीसहित ये सभी अपनी-अपनी परिधि पर घूमते और पृथिवी की अपेक्षा ये सब लोकलोकान्तर कोई पूर्व से पश्चिम को घूमता है और कोई पश्चिम से पूर्व को, कोई उत्तर से दक्षिण को घूमता है और कोई दक्षिण से उत्तर को, कोई ऊपर से नीचे को घूमता है और कोई नीचे से ऊपर को, कोई किसी के चारों ओर घूमता है तो कोई अपने गिर्द स्वयं ही घूमता है। सूर्य अपनी परिधि पर स्वयं घूमता है और पृथिवी अपने गिर्द स्वयं भी घूमती है और सूर्य के चारों ओर भी घूमती है और चाँद पृथिवी के गिर्द घूमता है। ऐसी सूरत में आकाश के अन्दर वर्त्तमान वायु भी परस्पर की आकर्षणशक्ति से आकर्षित हुई किसी ओर को वेग से नहीं चल सकती अपितु स्वाभाविकरूप से चारों तरफ़ को ही चलती रहती है और सूर्य की गरमी के निमित्त से तेज और मन्द होती रहती है। इससे आपके दूसरे तथा तीसरे आक्षेप के उत्तर भी स्वयं ही आ गये, क्योंकि जब पृथिवी के चलने से पूर्व से पश्चिम को हर समय वायु का वेग ही असम्भव है तो फिर पताका तथा बादल हर समय पश्चिमी को उड़कर जाएँगे कैसे?

अब रही बात चौथे और पाँचवें आक्षेप की, सो ये दोनों सर्वथा ही निर्मूल हैं, क्योंकि पृथिवी के सम्पूर्ण पदार्थ पृथिवी की आकर्षणशक्ति से इसके साथ बँधे हुए हैं और पृथिवी इन सबके सहित ही घूमती है। पक्षी अपने स्थान से उतनी ही दूर हो सकेगा जितना वह अपने यत्न से उड़ेगा और बाण भी उतना ही ऊँचा जा सकेगा जितनी शक्ति से कोई उसे ऊपर को फेंकेगा, किन्तु पृथिवी की आकर्षण-शक्ति से वे मुक्त नहीं हो सकते, अतः न पक्षी घोंसलों से च्युत हो सकते हैं और न बाण स्वयं पश्चिम को गिर सकता है, जैसेकि रेल में बैठकर गेंद के उछालने से पीछे को नहीं गिरती वहीं गिरती है और रेल की लालटैनों पर उड़नेवाले पतंगे पीछे को नहीं जाते वहीं उड़ते रहते हैं, क्योंकि रेल इन सब वस्तुओं को अपने साथ ही लेकर चलती है। इसी प्रकार से पृथिवी भी अपनी आकर्षणशक्ति से सब पदार्थों को अपने साथ ही लेकर चलती है, अकेली नहीं चलती, अतः ये आक्षेप निर्मूल हैं।

(५३४) प्रश्न—अमरीकावालों ने ताराओं के देखने की एक दूरबीन बनाई, उस दूरबीन से लोगों को तो तारे दीखे किन्तु हमने तारों को न देखकर दूरबीन में यह देखा कि पृथिवी अचला है, वह कभी एक इञ्च भी अपने स्थान से नहीं हटती। काशी के मानमन्दिर में ध्रुव के देखने का एक यन्त्र बना हुआ है। यन्त्र के आरम्भ और अन्त में अर्थात् दक्षिण और उत्तर में दो लोहे के कड़े लगे हुए हैं। जब मनुष्य नीचे के कड़े से दृष्टि की लाइन ऊपर के कड़े के बीचोंबीच लाता है तो उस सीध में ध्रुव दीख पड़ता है। एक दिन मैंने साढ़े दस बजे कुरसी डाल और

उसपर बैठ दूरबीन लगाई, रात के डेढ़ बजे बन्द कर दी; साढ़े दस से डेढ़ बजे तक ध्रुव तारा दूरबीन से उन लोहे के वृत्तों में दीखा करा। जहाँ साढ़े दस बजे था वहाँ ही डेढ़ बजे रहा। एक बाल जितना भी फर्क उसमें न पड़ा। बस हमको ज्ञान हो गया कि ध्रुव तारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथिवी को अचला कहा है। वास्तव में ये दोनों ही नहीं चलते। यदि दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी-न-किसी समय इस लाइन से ध्रुव तारा पूर्व-पश्चिम अवश्य हो जाता।

—पृ० २८४, पं० ४

उत्तर—धन्य हो महाराज! आपने तो न्यूटन की भी क़ब्र पर लात मार दी। जो बात न वेद को सूझी और न शास्त्र को सूझी और न ही सैकड़ों बरसों में पदार्थविद्या के विद्वानों और दूरबीन बनानेवालों को सूझी वह आपको केवल तीन घण्टों में सूझ गई और वह भी रात के डेढ़ बजे सूझी। क्यों न हो, गुरु के प्यारे विद्यार्थी जो ठहरे! किसी फ़ारसी के कवि ने शायद यह आप-जैसों के लिए ही कहा है कि **''बबीं अक़्लो दानिश बबायद ग्रीस्त''**॥

श्रीमान्‌जी! आपने तो केवल तीन ही घण्टे का परीक्षण किया, ध्रुव तो उस दिन से ही उस यन्त्र में से नज़र आता है जिस दिन से वह यन्त्र बना है। कारण यह है कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है और पृथिवी गोल है। पृथिवी की गोलाई पर खड़े होकर जहाँ भी ध्रुव को आप एक बार देखें, उस स्थान से आपको ध्रुव उसी स्थान में हमेशा नज़र आता रहेगा। ध्रुव अचल नहीं है, अपितु वह एक ही स्थान में अपनी ही कीली पर घूमता है और चूँकि वह पृथिवी की कीली पर है, अतः पृथिवी के घूमने पर भी प्रत्येक मनुष्य पृथिवी की गोलाई पर खड़ा हुआ ध्रुव को हमेशा उसी स्थान में देखता है। जैसे गाड़ी के पहिये की गोलाई पर बैठा हुा कीड़ा पहिये के घूमने पर भी पहिये के ध्रुव को उसी स्थान में देखता रहेगा, अतः आपकी यह नक़ली दलील पृथिवी को गतिशून्य सिद्ध नहीं कर सकती। हाँ, आपके दिमाग़ की ख़राबी को अवश्य सूचित करती है।

(५३५) प्रश्न—पृथिवी की कीली पर ध्रुव है या यह कोरी गप्प है। दुर्जनतोषन्याय से हम मान लें कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है तो भी ध्रुव के नीचे के देश भले ही उस स्थान में रहें किन्तु काशी आदि जो ध्रुव से दक्षिण में हैं पृथिवी के भ्रमण से किसी समय उत्तर में अवश्य आवेंगे ऐसा नहीं होता। अतएव भूभ्रमण मिथ्या और स्वामी दयानन्दजी का लेख भी मिथ्या है।

—पृ० २८५, पं० ९

उत्तर—यह सोलह आने सत्य है कि ध्रुव पृथिवी की कीली पर है। इसी कारण से इसका नाम ध्रुव पड़ गया है। पृथिवी के घूमने से काशी आदि स्थान तब उत्तर में आ सकते हैं यदि पृथिवी को कुम्हार के चाक की भाँति चपटी और गोल माना जावे, किन्तु पृथिवी कुम्हार के चाक की भाँति चपटी और गोल नहीं है अपितु पृथिवी गेंद की भाँति गोल है, अतः आपका बताया हुआ दोष नहीं आ सकता। इससे सिद्ध हुआ कि पृथिवी गतिशून्य नहीं अपितु घूमती है।

हम हैरान हैं कि ये पौराणिक लोग पृथिवी को गतिशून्य कैसे कह सकते हैं, जिनके पुराणों में पृथिवी का आना, जाना, रोना, बोलना, देखना आदि सम्पूर्ण क्रियाकलाप वर्णित हैं, जैसेकि—

पुरा वाराहकल्पे सा भाराक्रान्ता वसुन्धरा। भृशं बभूव शोकार्ता ब्रह्माणं शरणं ययौ॥ २॥
सुरैश्चासुरसन्तप्तैर्भृशमुद्विग्नमानसैः। सार्द्धं तैस्तां दुर्गमां च जगाम वेधसः सभाम्॥ ३॥
ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥ ४॥
भक्त्या सा त्रिदशैः सार्द्धं प्रणम्य चतुराननम्।
सर्वं निवेदनं चक्रे दैत्यभारादिकं मुने।
साश्रूपूर्णा सपुलका तुष्टाव च रुरोद च॥ ७॥ —ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ४

भाषार्थ—पहले वाराहकल्प में पृथिवी बहुत भार से दु:खी हुई, बहुत शोकग्रस्त होकर ब्रह्मा की शरण में गई॥ २॥ असुरों से दु:खी हुए और व्याकुल मनवाले देवताओं के साथ वह पृथिवी ब्रह्मा की दुर्गम सभा में गई॥ ३॥ वहाँ पृथिवी ने ब्रह्मतेज से प्रज्वलित ब्रह्मा को देखा॥ ४॥ उस पृथिवी ने देवताओंसहित भक्ति से ब्रह्मा को प्रणाम करके दैत्य आदिकों का भार, सम्पूर्णरूप से ब्रह्मा से कह दिया और आँखों में आँसू भरकर रोमांचित होकर स्तुति करने और रोने लगी॥ ७॥

कहिए महाराज! यहाँ पर **''ययौ, जगाम, ददर्श, प्रणम्य, चक्रे, तुष्टाव तथा रुरोद''** क्रियाएँ पृथिवी को क्रियाशून्य तथा गतिशून्य सिद्ध करती हैं या क्रियाशील और गतिशील सिद्ध करती हैं? पुराणों से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिखाये जा सकते हैं, किन्तु पुस्तकविस्तारभय से केवल एक ही दिया गया है।

वेदानुकूलता

(५३६) प्रश्न—आज तक आर्यसमाजियों को यह पता न चला कि वेदानुकूलता किस चिड़िया का नाम है। —पृ० १२४, पं० २१

उत्तर—आर्यसमाजियों को तो पता है, किन्तु आपकी बुद्धि पर ही पक्षपात का पर्दा पड़ा हुआ है, जिससे आपके लिए मानना कठिन हो रहा है। लीजिए, हम आपके सामने वेदानुकूलता के सिद्धान्त का स्पष्टरूप से वर्णन कर देते हैं—

(१) **वेद**—नि:सन्देह वेद ईश्वर का ज्ञान है और ईश्वर निर्भ्रान्त है, अत: उसका ज्ञान वेद भी निर्भ्रान्त होने से स्वत:प्रमाण है। ईश्वर के सर्वज्ञ होने के कारण उसका ज्ञान वेद सब विद्याओं का भण्डार है, किन्तु वेद में प्रत्येक विद्या का मूलबीज मिलता है, विस्तारपूर्वक व्याख्या नहीं मिलती। जिस प्रकार से बड़ का बीज बहुत छोटा होता है कि उसको कीड़ी भी उठाकर चल देती है, किन्तु वृक्ष इतना बड़ा होता है कि उसको हाथी भी नहीं उखाड़ सकता। यह ठीक है कि वह वृक्ष इस बीज के अन्दर मूलरूप से पहले से ही विद्यमान होता है, किन्तु वह इतना सूक्ष्म होता है कि उसको प्रत्येक मनुष्य देख और जान नहीं सकता। इसी प्रकार वेद में प्रत्येक विद्या का बीज विद्यमान है, उसकी व्याख्या नहीं। हालाँकि उसका विस्तार भी उस बीज के अन्दर ही विद्यमान है, किन्तु उसको प्रत्येक मनुष्य नहीं जान सकता, ऋषिलोग ही समाधि द्वारा जान सकते हैं। वेद में वे मौलिक सिद्धान्त वर्णन किये गये हैं जो तीनों कालों में एकरस स्थिर रहते हैं, उनमें कभी भी परिवर्तन नहीं होता। वेदों में जिस काम के करने की आज्ञा दी गई है वह धर्म है और जिस कर्म के करने का निषेध किया गया है वह पाप है। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह प्रथम कसौटी है।

स्मृति—वेदों के जाननेवाले विद्वान् ऋषि और मुनियों की बनाई हुई पुस्तकों का नाम स्मृति है। चूँकि जीव अल्पज्ञ होते हैं, उनमें भ्रान्ति का होना सम्भव है, अत: जीवकृत होने के कारण स्मृतिग्रन्थ परत:प्रमाण हैं, अर्थात् वे वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक वेदानुकूल हों। जहाँ पर वे वेद के विरुद्ध होंगे वहाँ पर वेद के मुक़ाबले में उनका प्रमाण न माना जावेगा। स्मृतियों में वेद के मूल सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक व्याख्या की हुई होती है। जिन बातों के विषय में वेद की स्पष्ट आज्ञा न मिलती हो, उनके विषय में देश तथा काल के अनुसार नियम बनाये जाते हैं। शर्त यह है कि वे नियम वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। यदि स्मृतियों में कोई भी नियम वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा तो वह नियम वेदविरुद्ध होने से माना न जावेगा। हाँ, जिन नियमों के विषय में वेद की चाहे कोई स्पष्ट आज्ञा न हो, किन्तु उनके विरुद्ध भी कोई वेद का प्रमाण न हो, वे वेदानुकूल ही प्रमाणित किये जावेंगे। इस प्रकार के नियम देश तथा काल की आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। जिन कामों के विषय में वेद में तो कोई स्पष्ट आज्ञा

न मिले, किन्तु वेद के जाननेवाले ऋषियों की बनाई हुई स्मृतियों में आज्ञा विद्यमान हो तो ऐसी स्थिति में वे स्मृतियाँ जिस काम के करने की आज्ञा दें वह धर्म और जिसका निषेध करें वह अधर्म है। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह दूसरी कसौटी है। स्वामी दयानन्दजी महाराज चूँकि वेदों के विद्वान् और ऋषि थे, अतः उनकी बनाई हुई पुस्तकें भी स्मृति का दर्जा रखती हैं। उनकी पुस्तकें भी वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक वेद के अनुकूल हों। जहाँ पर वे वेद के विरुद्ध होंगी, वहाँ वेद के मुक़ाबले में उनका प्रमाण न माना जावेगा। स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों में वेद के मौलिक सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक व्याख्या है। हाँ, स्वामीजी के ग्रन्थों में भी कई-एक ऐसी बातों के विषय में कि जिन बातों की वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती, देश और काल की आवश्यकता के अनुसार नियम बनाये गये हैं। इन नियमों को भी वेदानुकूल ही माना जावेगा जबतक कि इनके विरुद्ध वेद का प्रमाण देकर यह सिद्ध न किया जावे कि स्वामीजी का लिखा हुआ अमुक नियम अमुक वेदमन्त्र के विरुद्ध है।

(३) **सदाचार**—सदाचार का अर्थ वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों का चालचलन है। ऋषि और मुनियों का चालचलन भी वहीं तक प्रमाण हो सकता है कि जहाँ तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो, किन्तु जहाँ पर वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होगा वहाँ वह वेद के मुक़ाबलें में प्रमाण न माना जावेगा। हाँ, जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न हो और वेद के जाननेवाले ऋषियों ने भी अपनी स्मृतियों में उनके विषय में कोई नियम न बनाया हो, ऐसी स्थिति में यह देखना चाहिए कि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों का इस विषय में क्या आचरण है; वह आचारण भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। ऐसी सूरत में जो काम ऋषि-मुनियों के आचरण के अनुकूल हो वह धर्म और जो विरुद्ध हो वह अधर्म माना जावेगा। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह तीसरी कसौटी है। स्वामी दयानन्दजी महाराज चूँकि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले महर्षि थे, अतः उनका आचरण भी वहाँ तक ही प्रमाण होगा कि जहाँ तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार होगा। यदि स्वामी दयानन्दजी के आचरण में भी कोई ऐसी घटना हो कि जो वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो तो वह प्रमाण न मानी जावेगी। हाँ, जिस काम के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न हो और वेदानुकल स्मृतियों ने भी उसके विषय में कोई नियम न बनाया हो, ऐसे काम के बारे में हमें यह देखना होगा कि ऋषि दयानन्दजी का इस विषय में क्या आचरण है। वह आचरण भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। जबतक उस आचरण के विषय में वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों से प्रमाण देकर यह सिद्ध न कर दिया जावे कि ऋषि दयानन्दजी का अमुक आचरण अमुक वेदमन्त्र वा वेदानुकूल स्मृति की अमुक आज्ञा के विरुद्ध है।

(४) **आत्मा की प्रियता**—आत्मा की प्रियता—युक्ति, तर्क, दलील और आत्मा की अनुकूलता का नाम है। यह भी वहाँ तक ही प्रमाण मानी जावेगी जहाँ तक वह वेद, वेदानुकूल स्मृतियों तथा वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों के आचरण के विरुद्ध न हो। यदि कहीं युक्ति, तर्क, दलील, और आत्मा की अनुकूलता वेद, वेदानुकूल स्मृतियों तथा वेद व वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों के आचरण के विरुद्ध होगी तो वह वहाँ पर प्रमाण न मानी जावेगी। हाँ, जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न मिले और वेदानुकूल स्मृतियों ने भी उनके बारे में कोई नियम न बनाया हो और वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों के आचरण से भी उनके बारे में कोई पता न चले तो ऐसी स्थिति में इन कामों के विषय में युक्ति, तर्क, दलील और आत्मा की अनुकूलता से ही निर्णय करना चाहिए। वह निर्णय भी वेद के अनुकूल ही माना जावेगा। ऐसी सूरत में जो काम युक्ति, तर्क, दलील और आत्मा के अनुकूल

हो वह धर्म और जो विरुद्ध हो वह धर्म माना जावेगा। धर्म और अधर्म के जानने में वेदानुकूलता की यह चौथी कसौटी है। इनमें प्रमाणभाग देखो, प्रश्न नं० ४६६।

यह है वह वेदानुकूता की चिड़िया जोकि ज्ञानान्ध होने के कारण आपको नज़र नहीं आती, जैसाकि लिखा भी है कि—

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे विनिर्मिते। एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः॥५७॥

—भविष्य० मध्यम० भाग १ अ० ५

श्रुति और स्मृति ब्राह्मण के दो नेत्र निर्माण किये गये हैं, उनमें एक से हीन काना तथा दोनों से हीन अन्धा कहा जाता है।

(५३७) प्रश्न—जो विधि या निषेध वेद में आया हो वही अन्य ग्रन्थ में आ जावे क्या इसका नाम वेदानुकूलता है? यदि ऐसा है तब तो वेदानुकूलता की आवश्यकता ही नहीं। कल्पना करो कि वेद में ईश्वर को निराकार लिखा है और मनु ने भी ईश्वर को निराकार ही लिखा है तो फिर मनु के मानने की आवश्यकता ही क्या रही। ईश्वर निराकार है इस बात को तो वेद ही सिद्ध कर गया। ऐसी दशा में मनु का मानना अनावश्यक और वेदानुकूल का डिमडिम पीटना निष्फल है। —पृ० १२४, पं० २५

उत्तर—वेदानुकूलता की निम्न कारणों से आवश्यकता है—

(१) वेद के मौलिक सिद्धान्तों की जो व्याख्या अन्य ग्रन्थों ने की है उस व्याख्या का अभिप्राय वेदानुकूल का ग्रहण करना और वेद के प्रतिकूल का ग्रहण न करना है जैसाकि वेद ने '**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्**' [यजुः० ४०।८] इस मन्त्र से परमात्मा को निराकार, व्यापक, शुद्धस्वरूप, शरीररहित और नाड़ी-नस के बन्धन से रहित वर्णन किया है और मनुस्मृति में '**तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे**' [ऋ० १०।१२९।३] इत्यादि मन्त्रों से प्रतिपादित सृष्ट्युत्पत्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि—

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

—मनु० १।६

कुल्लूकभट्ट ने इस श्लोक के '**स्वयंभू**' शब्द को लेकर इससे परमात्मा का शरीर धारण करना सिद्ध किया है। जैसाकि '**स्वयंभूः परमात्मा स्वयं भवति स्वेच्छया शरीरपरिग्रहणं करोति**' तथा आपने भी अवतारप्रकरण पृ० १७१, पं० २५ में लिखा है कि—

''स्वयंभू शब्द का अर्थ अपने-आप शरीर धारण करना होता है। जब ईश्वर स्वयंभू है फिर उसको निराकार बतलाना संसार पर अपनी बेवकूफ़ी सिद्ध कर देने को छोड़कर अन्य कुछ भी मतलब नहीं निकलता।''

अब कुल्लूकभट्ट का तथा आपका इस श्लोक से परमात्मा का शरीरधारी तथा अवतार और साकार सिद्ध करना वेद के विरुद्ध है, क्योंकि यहाँ पर स्वयंभूः का अर्थ—

'नोत्पाद्यत्वादपूर्वत्वात् स्वयंभूरिति विश्रुतः॥१५॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ७७

''चूँकि परमात्मा कभी उत्पन्न नहीं होता तथा अनादि है, इसलिए परमात्मा को स्वयंभू कहते हैं'' यही वेदानुकूल हो सकता है। इससे सिद्ध है कि वेद के मौलिक सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करने के लिए मनुस्मृति आदि आर्षग्रन्थों की आवश्यकता है तथा आप-जैसे स्वार्थी, मतवादी उस व्याख्या से वेदविरुद्ध अर्थ की कल्पना न कर सकें, अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(२) वेद ने जिस काम के करने की आज्ञा दी है और ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में उसकी

विस्तारपूर्वक व्याख्या की है उस व्याख्या में स्वार्थी, मतवादी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए निषेधपरक श्लोक न मिला दें, अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है, जैसेकि वेद ने **'या पूर्वं पतिं वित्त्वा', 'समानलोको भवति', 'कुह स्विद्दोषा'** इत्यादि अनेक वेदमन्त्रों द्वारा स्त्री को दूसरे पति की आज्ञा दी है और मनुस्मृति ने **'सा चेदक्षतयोनिः स्यात्', 'देवराद्वा सपिण्डाद्वा', 'यस्तल्पजः'** इत्यादि अनेक श्लोकों में उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। उसी मनुस्मृति में किसी स्वार्थी मतवादी ने **'नान्यस्मिन् विधवा नारी'** इत्यादि श्लोक मिला दिये जो कि स्त्री को दूसरे पति का निषेध करते हैं। ये श्लोक वेद की आज्ञा के विरुद्ध हैं, अतः वेद के मौलिक सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक सरल व्याख्या के लिए मनुस्मृति आदि आर्षग्रन्थों के मानने की आवश्यकता है तथा स्वार्थी, मतवादी लोग उन आर्षग्रन्थों में वेद के विरुद्ध प्रक्षेप न कर दें, अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(३) वेद जिस काम के करने का निषेध करता हो और ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की हो उस व्याख्या में स्वार्थी, मतवादी लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उस काम के आज्ञापरक श्लोक न मिला दें अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है। जैसेकि वेद ने **'व्रीहिमत्तम् यवमत्तम्', 'पुष्टिं पशूनाम्', 'शेरभक शेरभ'** इत्यादि अनेक मन्त्रों द्वारा अन्न भक्षण व पशुओं के मारने तथा उनके मांस खाने का निषेध किया है और मनुस्मृति में **'योऽहिंसकानि', 'समुत्पत्तिं च मांसस्य', 'अनुमन्ता विशसिता', 'मांसभक्षयिताऽमुत्र'** इत्यादि अनेक श्लोकों द्वारा इसकी व्याख्या करके मांस खाना पाप तथा इसमें आठ कसाई बतलाये गये हैं, किन्तु इसी मनुस्मृति से स्वार्थी, पापी, मतवादी, मांसाहारी लोगों ने **'यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः', 'नियुक्तस्तु यथान्यायं', 'न मांसभक्षणे दोषः'** इत्यादि अनेक श्लोक मिला दिये, जिनसे यज्ञ में पशुओं का मारना, मांस से हवन करना, मांस का खाना धर्म बतलाया गया है और न खानेवाले को पापी वर्णन किया गया है। ये सब श्लोक वेद के विरुद्ध हैं, अतः वेद के मौलिक सिद्धान्तों की सरल व्याख्या के लिए मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का मानना आवश्यक है और कोई स्वार्थी, मतवादी वेद के विरुद्ध उन आर्षग्रन्थों में प्रक्षेप न कर दें, अतः वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(४) जिन कामों के विषय में वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा न मिलती हो और ऋषि तथा मुनि लोगों ने देश तथा काल के अनुसार उसकी आज्ञा दी हो और वह आज्ञा वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हो उस आज्ञा को वेदानुकूल मानते हुए उसका पालन करने के लिए वेदानुकूलता की आवश्यकता है। जैसेकि मनुस्मृति में **'न लंघयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति', 'न नग्नः स्नानमाचरेत्', 'नोच्छिष्टं कस्याचिद्दद्यात्', 'अभिवादयेद् वृद्धाँश्च', 'भद्रं भद्रमिति ब्रूयात्', 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत', 'न मृल्लोष्ठं च मृद्नीयात्', 'उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्', 'अद्वारेण च नातीयाद्'**—बछड़े की रस्सी के ऊपर से न गुज़रे, वर्षा होते हुए भागे नहीं, नग्न होकर स्नान न करे, किसी को जूठा भोजन न दे, वृद्धों को अभिवादन करे, भद्र-भद्र ऐसा प्रत्येक से बोले, ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे, मिट्टी के ढेले न फोड़ता रहे, जूता और कपड़े दूसरे के पहिने हुए न पहिने, बिना द्वार के मकान में न जावे—इत्यादि-इत्यादि अनेक ऐसे कामों की आज्ञा है कि जिनके बारे में वेदों में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती, किन्तु मनु ने देश तथा कालानुसार ये नियम बना दिये हैं, चूँकि वेदों में इनका निषेध भी नहीं मिलता, अतः ये आज्ञाएँ भी वेदानुकूल ही मानी जावेंगी, इसलिए वेदानुकूलता की आवश्यकता है।

(५३८) प्रश्न—यदि हम मान लें कि जिस कार्य का वेद ने निषेध नहीं किया और अन्य ग्रन्थ ने उस कार्य के करने की आज्ञा दी है, इसका नाम वेदानुकूलता है तो ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष आ जावेगा। वेद में जिनका निषेध नहीं और दूसरे ग्रन्थों में विधान है—वे सब कार्य वेदानुकूल कहलावेंगे। इस लक्षण में आर्यसमाजियों को रोज़े रखकर नमाज़ पढ़नी होगी।

मसीह को ईश्वर का पुत्र मानकर गिरजे में जाना होगा। जैनियों के तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ पूजनी होंगी और पुराणों को सत्य मानना तथा ज़न्द अवेस्ता से अग्नि का पूजन करना होगा, क्योंकि इन सब कार्यों का निषेध वेद में नहीं है, फिर वेदानुकूलता कहते किसको हैं? —पृ० १२५, पं० ३

उत्तर—बेशक जिन कामों के करने का वेद ने निषेध नहीं किया और आर्षग्रन्थों ने उनके करने की आज्ञा दी है वे काम भी वेदानुकूल ही गिने जावेंगे। इसके मानने से अतिव्याप्ति दोष नहीं आ सकता, क्योंकि ऐसी आज्ञाएँ आर्ष अर्थात् ऋषिकृत ग्रन्थों की ही मानी जावेंगी। अनार्ष अर्थात् अनृषिकृत ग्रन्थों की नहीं मानी जावेंगी, जैसाकि—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥

—मनु० २।६

भाषार्थ—वेद सम्पूर्ण धर्म का मूल है और वेद के जाननेवाले ऋषियों की स्मृतियाँ तथा स्वभाव भी धर्म का मूल है और साधु अर्थात् ऋषि लोगों का आचरण और आत्मा की सन्तुष्टि भी धर्म का मूल है, अर्थात् ऋषिकृत ग्रन्थ तथा ऋषि-आचार और ऋषियों की आत्मानुकूलता तभी प्रमाण है यदि उनका वेद के साथ विरोध न आता हो॥६॥

अब कृपया यह बतलाइए कि (१) रोज़े रखने, (२) नमाज़ पढ़ने, (३) मसीह को ईश्वर मानने, (४) गिरजा में जाने, (५) तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ पूजना, (८) ज़न्द अवेस्ता का मानना—ये सम्पूर्ण आज्ञाएँ किन ऋषिकृत ग्रन्थों में हैं और कुरान, अंजील, जैनग्रन्थ, भागवतादि पुराण तथा ज़न्द अवेस्ता को किसने ऋषिकृत ग्रन्थ माना है और हज़रत मुहम्मद साहिब, हज़रत ईसा, पारसनाथ, भागवतादि के कर्त्ता और ज़न्द अवेस्ता के कर्त्ता को ऋषि किसने माना है? क्या ये सब ग्रन्थों के कर्त्ता तथा मतों के प्रवर्तक वेदों के विद्वान् ऋषि थे? यदि नहीं तो इनका कथन वेदानुकूलता में प्रमाण कैसे माना जा सकता है? अतः आर्यसमाजियों के लिए उपर्युक्त कार्य कर्त्तव्य नहीं माने जा सकते, क्योंकि आर्यसमाज उपर्युक्त कार्यों की आज्ञा देनेवाले ग्रन्थों को आर्ष नहीं मानता और न ही इन ग्रन्थों के कर्त्ताओं को वेद का ज्ञाता तथा ऋषि मानता है। हाँ, यदि सनातनधर्म ऐसा मानता हो तो उपर्युक्त कामों को शौक से करे।

और उपर्युक्त आठों काम तो हैं भी वेद के विरुद्ध, क्योंकि '**अन्धन्तमः प्रविशन्ति**' [यजुः० ४०।९] यह मन्त्र ईश्वर के स्थान में प्रकृति वा प्रकृतिजन्य पदार्थों की पूजा को पाप बतलाता है, अतः ईश्वर के स्थान में अग्नि वा गिरजा की पूजा करना वेद के विरुद्ध होने से पाप है। ऐसे ही तीर्थंकरों की मूर्त्तियों का पूजना भी वेदविरुद्ध होने से पाप है। '**स पर्य्यगात्**' [यजुः० ४०।८] ईश्वर को शरीर से रहित वर्णन करता है और ईसा मसीह शरीरधारी थे, अतः ईसा मसीह को ईश्वर मानना वेद के विरुद्ध होने मिथ्या है। '**तस्माद्यज्ञात्**' [यजुः० ३१।७] यह मन्त्र चारों वेदों को ईश्वर का ज्ञान बतलाता है, अतः कुरान, बाइबल, ज़न्द अवेस्ता, भागवतादि पुराण—इन पुस्तकों को ईश्वरकृत मानना वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण है।

'**नाम नाम्ना जोहवीति**' [अथर्व० ६।१४।२] यह मन्त्र दोनों समय ईश्वर की उपासना स्थिर मन से करने की आज्ञा देता है, अतः पाँच समय नमाज़ का उठते-बैठते अदा करना वेद के विरुद्ध एवं कल्पनामात्र ही है।

'**व्रीहिमत्तं यवमत्तम्**' [अथर्व० ६।१४।२] यह मन्त्र नित्यप्रति उचित भोजन करने की आज्ञा देता है, अतः रोज़ों के रूप में उपवास करना वेदविरुद्ध होने से मानने के योग्य नहीं है।

(५३९) प्रश्न—वेद ने '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' इस मन्त्र से यह बतलाया कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, क्रम से विराट् के मुख, बाहू, ऊरू, पाद से उत्पन्न हुए। इस वेदमन्त्र का तो स्वामीजी ने मज़ाक कर डाला कि यह बात ग़लत है। इस मन्त्र के पूरे अभिप्राय को स्पष्ट

करनेवाला **'लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं'** जो मनु का श्लोक था, उसको स्वामीजी ने वेदविरुद्ध बतलाया और **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति'** इस मनु के श्लोक को वेदानुकूल बताकर वर्णव्यवस्था को गुण-कर्म-स्वभाव से सिद्ध किया और जन्म से वर्णव्यवस्था का खण्डन कर दिया। गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था किसी भी वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन में नहीं लिखी। यह भी बतलाना होगा कि **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति'** यह श्लोक वेद के किस मन्त्र के अनुकूल है? —पृ० १२७, पं० ५

उत्तर—स्वामीजी ने मन्त्र का मज़ाक नहीं उड़ाया, अपितु आपके वेदविरुद्ध और असम्भव अर्थ का मज़ाक उड़ाया है और बतलाया है कि चूँकि **'स पर्यगाच्छुक्रमकायम्'** वेदमन्त्र में परमात्मा को शरीररहित कहा गया है, इसलिए परमात्मा का शरीर मानकर उसके मुख, बाहू, ऊरू, पाद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का पैदा करना स्वयं वेद के विरुद्ध है, अतः इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है, अपितु यह अर्थ है कि—"जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य, उत्तम हो वह ब्राह्मण, बल-वीर्य का नाम बाहु है, वह जिसमें अधिक हो सो क्षत्रिय, कटि के अधोभाग और जानु के उपरिभाग का ऊरू नाम है जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे, आवे, प्रवेश करे वह वैश्य, और जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है।" इस मन्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, को मुख, बाहू, ऊरू, पाद, की उपमा देकर बतलाया है कि उस परमात्मा की सृष्टि में जो मनुष्य जिस वर्ण के योग्य हो वह उसी वर्ण में गिना जावे। इस मन्त्र से परमात्मा ने जन्म से वर्णव्यवस्था का खण्डन करके गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था का प्रतिपादन किया है। इसलिए मनु का **'लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं'** श्लोक इस मन्त्र के विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति'** श्लोक इस वेदमन्त्र के अनुकूल होने से प्रमाण है। **'ब्राह्मणोऽस्य'** तथा **'शूद्रो ब्राह्मणतामेति'** की विशेष व्याख्या तथा आक्षेपों का उत्तर देखो वर्णव्यवस्था विषय में। आपका सिद्धान्त कि जन्म से वर्णव्यवस्था है **'ब्राह्मणोऽस्य'** वेद के इस मन्त्र के क़तई विरुद्ध है। क्या पृथिवी पर किसी सनातनधर्मी माता ने कोई वीर पुत्र पैदा किया है जो **'ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद् ब्राह्मणः शुभे। क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः॥ ६॥** —महा० अनुशा० अ० १४३। इस जन्म से वर्णव्यवस्था बतानेवाले श्लोक को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५४०) प्रश्न—गुरोःप्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति॥ —मनु० ५।६५

जब गुरु का प्रणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है, उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक शरीर को उठानेवालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है।

मनुस्मृति के इसी अध्याय में लिखा है कि—

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति॥ ८३॥

ब्राह्मण दश दिन और क्षत्रिय बारह दिन एवं वैश्य पन्द्रह दिन तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। स्वामीजी ने यहाँ पर **'गुरोः प्रेतस्य'** इसको अपनी जबरदस्ती से वेदानुकूल और **'शुद्ध्येद्विप्रो'** इस श्लोक को वेदविरुद्ध माना। वेद में पितृमेध का तो विधान है, किन्तु मरे हुए को दाग़ देनेवाला और उसके साथ जानेवाले दश दिनों में शुद्ध होते हैं—यह कहीं भी नहीं लिखा, क्योंकि शुद्धि का विषय ही वेद में नहीं है। आर्यसमाज में ऐसा कोई मनुष्य न पैदा हुआ है न आगे को हो सकता है जो **'गुरोः प्रेतस्य'** इस श्लोक की वेदानुकूलता और **'शुद्ध्येद्विप्रो'** इसका वेदविरोध सिद्ध कर दे।
—पृ० १३२, पं० ६

उत्तर—यहाँ पर दूसरे समुल्लास में स्वामीजी ने **'गुरोः प्रेतस्य'** यह श्लोक केवल यह बात बतलाने के लिए दिया है कि **'प्रेत'** नाम मृतक शरीर का है। प्रेत किसी और वस्तु का नाम नहीं

है। स्वामीजी ने यह श्लोक यह बतलाने के लिए नहीं दिया कि मृतक को जलानेवालों की शुद्धि कितने दिन में होती है, क्योंकि न तो यहाँ मृतकसंस्कार का प्रकरण है और न ही स्वामीजी को मृतकसंस्कार के पश्चात् इस प्रकार की शुद्धि इष्ट है। यहाँ पर **'प्रेत'** नाम मृतक शरीर का है। प्रेत किसी और वस्तु का नाम नहीं है। यहाँ पर **'प्रेत'** शब्द का अर्थ बतलाने के लिए सारे श्लोक का अर्थ कर दिया गया है। देखिए स्वामीजी संस्कारविधि के अन्त्येष्टि प्रकरण में क्या लिखते हैं कि मृतक को जलाने के पश्चात्—

''जब शरीर भस्म हो जावे, पुनः सब जने वस्त्रप्रक्षालन, स्नान करके जिसके घर में मृत्यु हुआ हो उसके घर की मार्जन, लेपन, प्रक्षालनादि से शुद्धि करके पृ० ८-१३ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ और पृ० ४-८ में लिखे प्रमाणे ईश्वरोपासना करके, इन्हीं स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से जहाँ अङ्क, अर्थात् मन्त्र पूरा हो वहाँ 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत की आहुति घर में देवें कि जिससे मृतक का वायु घर से निकल जाए और शुद्ध वायु घर में प्रवेश करे और सबका चित्त प्रसन्न रहे। यदि उस दिन रात्रि हो जाए तो थोड़ी-सी आहुति देकर, दूसरे दिन-प्रातःकाल उसी प्रकार स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों से आहुति देवें। तत्पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृतक का कोई सम्बन्धी श्मशान में जाकर, चिता से अस्थि उठाके, उस श्मशानभूमि में कहीं,पृथक् रख देवे। बस इसके आगे मृतक के लिए कुछ भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि पूर्व **(भस्मान्तꣳशरीरम्)** यजुर्वेद के मन्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो चुका कि दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिए दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है।'' —संस्कारविधि, अन्त्येष्टिप्रकरण

इससे स्पष्ट है कि स्वामीजी तीसरे दिन के पश्चात् मृतक के निमित्त से कोई सूतक-पातक नहीं मानते, अतः **'गुरोः प्रेतस्य'** श्लोक का दश दिन में शुद्धि का प्रकरण भी स्वामीजी को इष्ट नहीं है। इस श्लोक का उतना अंश ही स्वामीजी को प्रमाण है कि जिससे 'प्रेत' शब्द का 'मृतक शरीर' अर्थ सिद्ध होता है। चूँकि—

'प्रेतो यन्तु व्याध्यः' [अथर्व० ७।११४।२] यहाँ 'प्रेत' नाम मृतक शरीर का है, अतः **'गुरोः प्रेतस्य'** श्लोक का वह भाग जो कि मृतक शरीर का नाम **'प्रेत'** वर्णन करता है, वेद के अनुकूल है। और—

'भस्मान्तꣳशरीरम्' [यजुः० ४०।१५] में लिखा है कि शरीर की भस्म-सम्बन्धी क्रिया के पश्चात् मृतक के निमित्त कुछ कर्त्तव्य नहीं है, अतः **'गुरोः प्रेतस्य'** श्लोक का वह भाग जो मृतक को जलाने के पश्चात् दश दिन में शुद्धि बतलाता है तथा **'शुद्ध्येद्विप्रः'** सम्पूर्ण श्लोक वेद के विरुद्ध है। आप स्वयं मानते हैं कि मृतक के जलाने के पश्चात् शुद्धि का विषय वेद में नहीं है और वेद में भस्मक्रिया के पश्चात् किसी भी कर्त्तव्य का निषेध हमने दिखा दिया, फिर **'शुद्ध्येद्विप्रः'** के वेदविरुद्ध होने में सन्देह ही क्या है! कोई माई का लाल सनातनधर्म में पैदा हुआ है जो **'भस्मान्तꣳशरीरम्'** की विद्यमानता में गरुडपुराण में प्रतिपादित—

एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत् नो वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ४०॥

—गरु० प्रैत० अ० ५

वृषोत्सर्ग, गङ्गा में अस्थिप्रवाह, आचार्य का निबेड़ना, 'बरनी करना', गया पिण्ड, श्राद्ध आदि प्रेतकर्म जो मृतक के निमित्त किये जाते हैं, उनको वेद से सिद्ध कर सके?

(५४१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३० में लिखा है कि—

''दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥ ४६॥

—मनु० ६

नीचे दृष्टि कर ऊँचे-नीचे स्थान को देखके चले। वस्त्र से छानके जल पीवे। सत्य से पवित्र करके वचन बोले। मन से विचारके आचरण करे।

अब इसकी वेदानुकूलता सिद्ध करिए। वेद में न तो कहीं यह लिखा है कि तुम देखकर चलो और न यही लिखा है कि जल को कपड़े से छानकर पिओ। मन्त्रभाग में यह भी विधि नहीं आई कि सच बोलो। वेद में कहीं यह भी नहीं लिखा कि मन से पवित्र करके आचरण करो। यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। —पृ० १३३, पं० २३

उत्तर—आपके विचार में यदि यह श्लोक वेद के अनुकूल नहीं है तो क्या वेद के विरुद्ध है? आप वेद के ऐसे मन्त्र पेश करें जिनमें यह लिखा हो कि "आँखें बन्द करके चलो। गन्दा-गन्दा मैला-कुचैला बिना साफ़ किया पानी पीओ, झूठ बोलो, बिना सोचो-विचारे काम करो।" यदि आप ऐसे मन्त्र पेश नहीं कर सकते कि जो इस श्लोक को वेदविरुद्ध सिद्ध कर सकें तो निःसन्देह यह श्लोक ऋषिग्रन्थ में कथित होने से वेदानुकूल है, जैसाकि मनु की इसमें साक्षी है—

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

—मनु० २।७

जो कोई जिसका धर्म मनु ने वर्णन किया है, वह सब वेद में कहा हुआ है, क्योंकि वह वेद सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है॥७॥

यदि आपके कहने के अनुसार यह भी मान लिया जावे कि उक्त श्लोक में कथित चार बातों की वेद में स्पष्ट आज्ञा नहीं है तो भी ये चारों बातें वेद के विरुद्ध न होने तथा आर्ष होने से वेदानुकूल ही हैं, किन्तु इन चारों के विषय में तो वेद की आज्ञा भी विद्यमान है, जैसाकि—

(१) 'चक्षुरक्षणोः' [अथर्व० १९।६०।१] अर्थात् मेरी आँखों में दृष्टि हो।

'पादयोः प्रतिष्ठा'—[अथर्व० १९।६०।२] मेरे पाँवों में प्रतिष्ठा अर्थात् शोभायुक्त गति हो। वेद के इन वचनों की ही मनु ने सरल व्याख्या की है कि—**'दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्'**

(२) शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु। [अथर्व० १२।१।३०] हमारे शरीर के लिए शुद्ध-निर्मल जल बहता रहे।

हमारे शरीर के लिए हितकारी, पवित्र तथा निर्मल जल कैसे हो सकता है, इसकी ही सरल व्याख्या मनु ने की है कि—**'वस्त्र पूतं जलं पिबेत्'।**

(३) 'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।' [यजुः० १।५] यह मैं झूठ से हटकर सत्य को प्राप्त करता हूँ। इसी वेदवाक्य की सरल व्याख्या मनु ने की है कि—**'सत्यपूतां वदेद्वाचम्'।**

(४) यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

—यजुः० अ० ३४ मं० ३

जिसके बिना कोई भी काम नहीं किया जाता वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

'परोऽपेहि मनस्पाप' [अथर्व० ६।४५।१] हे मन के पाप! दूर हट जा।

इन्हीं वेदवचनों की मनु ने सरल व्याख्या की है कि—**'मनःपूतं समाचरेत्।'**

इन वेदवाक्यों से सिद्ध है कि मनु का उक्त श्लोक सर्वथा वेद के अनुकूल है। अब यदि सनातनधर्मसभा में कोई जीता-जागता उपदेशक हो तो वह यह सिद्ध करे कि—

"कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ते तथैव च। ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च अनृते नास्ति पातकम्॥ ४९॥

—महा० द्रोण० अ० १९१

[पूना सं० में कुछ पाठभेद से १६४ अ० में पादटिप्पणी में है।—सं०]

"स्त्रियों में, विवाह में, गौओं के भोजन में, और ब्राह्मणों की आपत्ति में यदि झूठ बोला

जावे तो उसमें पातक नहीं है।''

यह श्लोक कौन-से वेद के अनुकूल है?

(५४२) प्रश्न—राजा के विषय में मनुजी ने कुछ श्लोक लिखे हैं, वे वेदानुकूल समझ स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं। श्लोक ये हैं—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ १॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च। न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥ २॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः स धर्मराट्। स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ३॥

—मनु० ७।४, ६, ७

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सबका प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित, न्यायाधीश के समान बर्तनेवाला, सूर्य के समान न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाश, अन्धकार अर्थात् अविद्या-अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बाँधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बाँधनेवाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोषों का पूर्ण करनेवाला सभापति होवे॥ १॥ जो सूर्यवत् प्रतापी, सबके बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा, जिसको पृथिवी में कड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न होवे॥ २॥ और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धन-वर्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे॥ ३॥

क्या ये श्लोक वेदानुकूल हैं? मनुस्मृति के ३९० श्लोक स्वामी दयानन्दजी ने उद्धृत किये हैं। इन ३९० श्लोकों में से एक भी श्लोक ऐसा नहीं है कि जिसकी वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिए कोई माई का लाल आर्यसमाजी मैदान में आवे—पृ० १३४, पं० १०

उत्तर—धन्य हो महाराज! आपने तो आर्यसमाज के खण्डन की धुन में सनातनधर्म का भी सफ़ाया कर दिया। हाँ, आप हठ के पक्के हैं कि ''पड़ौसी की भैंस मर जावे, चाहे अपनी दीवार ही गिर पड़े'', किन्तु हमारे लिए आपका नाम तजवीज़ करना कठिन हो रहा है। हम सभी भर्तृहरि के शब्दों में यही कह सकते हैं कि **'ते के न जानीमहे'!** श्रीमान्‌जी! आप प्रश्न नं० ४६९ में तो मनुस्मृति आदि समस्त श्लोकबद्ध ग्रन्थों का 'गीली लकड़ी में से धूएँ की भाँति' ईश्वर से ही प्रकट हुए सिद्ध कर रहे थे। अब आपने उसी मनुस्मृति को वेदानुकूल रहने के क़ाबिल भी नहीं समझा। इसको कहते हैं अन्धा पक्षपात। यदि स्वामीजी के पेश किये हुए ३९० श्लोक वेद अनुकूल नहीं हैं तो क्या वेद के विरुद्ध हैं? यदि वेद के विरुद्ध हैं तो क्या वे श्लोक सनातनधर्म को क़तई मान्य नहीं हैं और वे कौन-से वेदमन्त्र हैं जिनके वे विरुद्ध हैं या वेदविरुद्ध होने की यही कसौटी सनातनधर्म में है कि ''जो श्लोक स्वामी दयानन्दजी ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत कर दिये वे वेदविरुद्ध और जो छोड़ दिये वे वेदानुकूल''? कसौटी तो बढ़िया है, किन्तु महँगी पड़ेगी। कहिए महाराज! आप तो मनु के ३९० श्लोकों को वेद के विरुद्ध बता रहे हैं और मनुजी अपनी सारी पुस्तक को वेदानुकूल बतला रहे हैं, जैसाकि—

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।

—मनु० २।७

जिसका जो कोई धर्म मनु ने वर्णन किया है वह सब वेद में वर्णित है, क्योंकि वह वेद सर्वज्ञानमय है॥ ७॥

कहिए, अब आपकी बात सच्ची मानें या मनु की? केवल ज़बानी कहने में तो मनु की ही मानी जाएगी। हाँ, यदि आप अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए वेदमन्त्र देकर मनु का उनसे

विरोध सिद्ध कर दें तो आपकी माननी पड़ेगी; किन्तु यह आपकी आदत नहीं, क्योंकि आप तो केवल प्रतिज्ञा करना ही जानते हैं उसको सिद्ध करना, आपकी शक्ति से बाहर है। अच्छा तो आप 'प्रतिज्ञाहानि-निग्रहस्थान' में आकर पराजय को प्राप्त हो चुके, क्योंकि आपकी अपेक्षा मनुजी अधिक विश्वसनीय व्यक्ति हैं। अब रही बात उपर्युक्त श्लोकों की, सो श्रीमान्‌जी! ये श्लोक सोलह आने वेदानुकूल हैं। मनुस्मृति ने वेद की ही सरल व्याख्या करके राजा के गुण बतलाये हैं। इससे भी अधिक व्याख्या मनु ने अ० ९ श्लोक ३०३ से ३०९ तक की है जो स्वामीजी की व्याख्या के सर्वथा अनुकूल है। वेद के मन्त्र निम्न प्रकार से हैं—

(१) सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि॥

—यजुः० १०।३०

(२) वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशंगाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः॥ —ऋ० ५।५७।४

(३) अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्या॥ —अथर्व० ४।२२।३

(४) अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा।
स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳसजातानां मध्यमेष्ठ्याय॥—यजुः० १०।२९

भाषार्थ--हे प्रजा और राजपुरुषो! जैसे मैं सम्पूर्ण चेष्टा करनेवाले, वायु के समान प्रशंसित, वेदवाणी के समान छेदक और प्रतापयुक्त सूर्य के समान सुखरूप, पृथिवी और पशु के समान और बिजली के समान हूँ। चार वेदों के विद्वान् के समान, बल से वरुण के समान, तेज़ ज्योतिवाले अग्नि के प्रकाश के समान, चन्द्रमा के समान, दश प्रकाशमान पदार्थों के समान, व्यापक ईश्वर के समान प्रेरणा किया हुआ मैं अच्छे प्रकार चलता हूँ, वैसे तुम लोग भी चलो॥ १॥ वायु की कान्ति के समान कान्तिवाला, यम के सदृश सुन्दर रूपवाला, भूरे और लाल रंग के घोड़ों पर चढ़नेवाला, निष्पाप, विशेष शक्तिमान, स्वदेशी कपड़े पहननेवाला, मरने के लिए तैयार वीर है, इसलिए वह महिमा से द्युलोक के समान विशाल है॥ २॥ यह धनों का धनपति होवे, यह प्रजाओं का योग्य पालन करने के कारण राजा होवे। हे प्रभो! इसमें बड़े तेज धारण कर इसके शत्रु को निस्तेज कर॥ ३॥ हे राजन्! जैसे महापुरुषार्थयुक्त, धर्म का रक्षक, सेवक, अग्नि के समान उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ वर्त्तमान पदार्थों के मध्य में स्थित होके सत्य क्रिया से घृतादि होम के पदार्थों को प्राप्त करता हुआ सूर्य की किरणों के साथ होम किये पदार्थों को फैलाके सुख देता है, वैसे धर्म के स्वामी बड़ी सेवा करनेवाले तेजस्वी आप राज्य को प्राप्त हूजिए। वैसे ही हे सत्य काम करनेवाले सभासद् पुरुषो! तुम यत्न किया करो॥ ४॥

जिस प्रकार से ये श्लोक वेदानुकूल हैं, उसी प्रकार से स्वामीजी के पेश किये हुए समस्त ३९० श्लोक भी वेद के मन्त्रों की सरल व्याख्या हैं और वे वेद के अनुकूल हैं। हाँ, आपके-से दूषित विचार के लोगों ने कुछ वेदविरुद्ध श्लोक मनु में अवश्य मिला दिये हैं, जिनका स्पष्टरूप से वेद से विरोध है, जैसेकि—

(१) न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम्॥ —मनु० ८।३८०

(२) न ब्राह्मणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्॥ —मनु० ८।३८१

(३) श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥
(४) एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥ ३१९ ॥
(५) अविद्वाँश्चैव विद्वाँश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ ३१७ ॥ —मनु० अ० ९

भाषार्थ—यदि ब्राह्मण सब पापों में स्थित भी हो तब भी ब्राह्मण को कभी भी नहीं मारना चाहिए। इसको सारा धन देकर बिना मार-पीटकर ज़ख़्मी किये अपने राज्य से बाहर कर दे॥ १॥ पृथिवी पर ब्राह्मण के वध से बढ़कर और कोई पाप नहीं है, इसलिए इसके वध के बारे में राजा को कभी मन से भी विचार नहीं करना चाहिए॥ २॥ तेजस्वी अग्नि श्मशान में भी दूषित नहीं होती और यज्ञों में हवन करने से अधिक-से-अधिक बढ़ती है॥ ३॥ इस प्रकार से ब्राह्मण यद्यपि सम्पूर्ण पापकर्मों में वर्त्तमान हों तो भी सर्वथा पूजा करने के योग्य हैं, क्योंकि वे परम देवता हैं॥ ४॥ चाहे विद्वान् हो चाहे अविद्वान् हो ब्राह्मण महान् देवता है जैसाकि चाहे यज्ञ में वर्त्तमान हो चाहे न हो तो भी अग्नि महान् देवता है॥ ५॥

ये ५ श्लोक प्रथम तो मनु के स्वयं विरुद्ध हैं, क्योंकि मनु कहते हैं कि—

(१) पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ ३३५ ॥
(२) गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥ —मनु० अ० ८
(३) पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ ३० ॥ —मनु० अ० ४

भाषार्थ—पिता, आचार्य, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र, पुरोहित जो अपने धर्म में स्थिर न रहे, राजा के लिए उनमें से कोई भी अदण्ड्य (क्षमा के योग्य) नहीं है॥ १॥ गुरु, बाल, बूढ़ा, ब्राह्मण, विद्वान्, चाहे कोई भी क्यों न हो, यदि वह पापी है तो राजा का धर्म है कि उसे बिना विचारे मार दे॥ २॥ जो ब्राह्मण पाखण्डी, कुकर्म करनेवाले, विडालवृति, अर्थात् छली, कपटी, शठ, कुतर्कवादी, बगुलाभक्त तथा धूर्त हों, उनकी वाणिमात्र से भी पूजा नहीं करनी चाहिए॥ ३॥

दूसरे, ऊपर दिये वे पाँच श्लोक वेदमन्त्रों से क़तई विरुद्ध हैं, क्योंकि ऊपर के मन्त्रों में राज्ञा को यम तथा वरुण भी कहा है और यम तथा वरुण के अर्थ हैं कि—

(१) यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥ ३०७ ॥
(२) वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥ ३०८ ॥ —मनु० अ० ९

जैसे यम प्रिय तथा शत्रु को समय प्राप्त होने पर वश में कर लेता है वैसे ही राजा को भी प्रजा का नियन्त्रण करना चाहिए, यही राजा का यमव्रत है॥ १॥ जैसे वरुण से पाशों द्वारा बँधा हुआ ही दीखता है वैसे ही राजा को पापियों का निग्रह करना चाहिए, राजा का यही वारुणव्रत है॥ २॥

अब है कोई माई का लाल पौराणिक पण्डितमन्य जो इन स्वयं मनु के विरुद्ध पाँच श्लोकों को वेद के अनुकूल सिद्ध कर सके?

(५४३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० १२३ में शतपथ का प्रमाण देकर लिखा है कि **"ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।"**

—शत० कां० १४

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे, अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

शतपथ के जितने भी प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं, कोई भी मनुष्य उनकी वेदानुकूलता सिद्ध नहीं कर सकता। —पृ० १३५, पं० १७

उत्तर—आप तो शतपथब्राह्मण को वेद सिद्ध करने में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे थे। अब उसके प्रमाण भी वेदानुकूल नहीं रहे? क्यों न हो, स्वामी दयानन्दजी ने जो अपने ग्रन्थों में दे दिये! बस उतने ही प्रमाण वेदानुकूल नहीं हैं जो स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में लिख दिये? बाकी सारा शतपथ वेदानुकूल ही नहीं अपितु स्वयं ही वेद है? यह है सनातनधर्म के पण्डितों का अन्धविश्वास, पक्षपात और मिथ्या दुराग्रह, जिससे कि इनको सचाई नज़र ही नहीं आती।

कहिए महाराज! यदि स्वामीजी के दिये हुए शतपथ के प्रमाण वेदानुकूल नहीं हैं तो क्या वेदविरुद्ध हैं? यदि ये वेदविरुद्ध हैं तो वे वेदमन्त्र पेश करो जिनके ये प्रमाण विरुद्ध हैं और यदि आप इनके विरोध में कोई वेदमन्त्र पेश नहीं कर सकते तो आर्ष होने से सारे ही प्रमाण वेदानुकूल हैं। रही बात उपर्युक्त प्रमाण की, सो यदि यह वेदानुकूल नहीं है तो आप ऐसा मन्त्र पेश करें जिसके यह प्रमाण विरुद्ध हो, अर्थात् जिस वेदमन्त्र से यह सिद्ध हो सके कि ये चारों आश्रम वेद के विरुद्ध हैं या इनका क्रम वेद के विरुद्ध है। यदि आप इस प्रमाण के विरोध में कोई वेदमन्त्र पेश नहीं कर सकते तो आप प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान में आकर पराजित हो चुके और हम यह प्रतिज्ञा करते हैं कि शतपथ का उपर्युक्त प्रमाण वेदानुकूल है और यह प्रमाण वेद के मन्त्रों की सरल व्याख्या है, जैसेकि—

(१) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९ ॥ —अथर्व० ११।५

(२) इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥ ४२ ॥ —ऋ० १०।८५

(३) अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीइँ ॥ १ ॥ —ऋ० १०।१४६

(४) अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥ २४ ॥ —यजुः० २०

भाषार्थ—ब्रह्मचर्यरूप तप से विद्वान् मृत्यु का नाश करते हैं। जीवात्मा ब्रह्मचर्य से ही इन्द्रियों के लिए सुख, तेज, ज्योति धारण कर सकता है॥ १ ॥ तुम दोनों पति-पत्नी यहाँ ही घर में रहो। एक-दूसरे से पृथक् मत होवो। पुत्रों तथा पौत्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए अपने घर में आनन्द से रहते हुए तुम दोनों पूर्ण आयु प्राप्त करो॥ २ ॥ यह जंगलों-जंगलों घूमनेवाला वानप्रसन्थ गाँवों से दूर प्राप्त होता है, अर्थात् गाँवों में नहीं रहता, अपितु उनसे दूर रहता है। वह तू नगरों तथा गाँवो में जाने की बात या दशा को क्यों नहीं पूछता? तुझे इस निर्जन वन में घूमते हुए क्या भय नहीं लगता है॥ ३ ॥ हे व्रतों की रक्षा करनेवाले, आगे ले-जानेवाले प्रभो! मैं समिधा को तुझमें सर्वथा धारण करता हूँ। मैं व्रत और श्रद्धा को प्राप्त होता हूँ। मैं दीक्षाप्राप्त संन्यासी तुझको अपने हृदय में प्रदीप्त करता हूँ।

इन चारों मन्त्रों में क्रमशः चारों आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास की आज्ञा है। इन्हीं के आधार पर शतपथ ने उपर्युक्त लेख दिया है, अतः स्वामीजी का दिया हुआ शतपथ का प्रमाण सर्वथा वेद के अनुकूल है। हाँ, आप-जैसे स्वार्थी लोगों ने शतपथ में भी वेदविरुद्ध लेख शामिल कर दिये हैं, जैसेकि—

अथ य इच्छेत्। पुत्रो मे पण्डितो विजिगीथः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान् वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेण वा॥ —शत० कां० १४।९।४।१७

भाषार्थ—और जो चाहे कि मेरा पुत्र पण्डित, वागीश, सभाजित्, शुभवाणी का वक्ता पैदा हो, चारों वेदों का वक्ता हो और पूर्ण आयु को प्राप्त हो वे माता-पिता दोनों मांस और चावल पकाकर घी डालकर खावें, वे समर्थ होंगे और पुत्र पैदा करेंगे। मांस गौ या बैल का हो।

अब यह बैल वा गौ के मांस खाने की आज्ञा वेद के क़तई विरुद्ध है, क्योंकि वेद में लिखा है—

(१) यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥ ४॥ —अथर्व० १।१६

भाषार्थ—यदि तू हमारी गौ की हिंसा करेगा और यदि हमारे अश्व और हमारे मनुष्य की हिंसा करेगा तो तुझको सीसे से हम वेधते हैं, जिससे हमारे में वीरों का नाश करनेवाला कोई न हो।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त॥
—अथर्व० २।२४।१

भाषार्थ—हे नीच हिंसक! हे वध करनेवाले! सर्वभोजियो! तुम्हारे अनुयायी लौट जाएँ। तुम्हारा हथियार लौट जाए, तुम जिसके सम्बन्धी हो उसको खाओ। जिसने तुम्हें भेजा है उसको खाओ, अपने मांस को खाओ।

ये दोनों वेदमन्त्र गौ-बैल आदि पशुओं के मारने तथा मांस खाने का निषेध करते हैं, अतः शतपथ का उपर्युक्त प्रमाण वेद के सर्वथा विरुद्ध है। क्या शतपथ के इस पाठ की वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिए कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित मैदान में निकलेगा?

(५४४) प्रश्न—शतपथ में लिखा है कि—

प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्यनेया स्यामिति ताᳫं सम्बभूव॥ १॥ तद्वै देवानामाग आस। य इत्थᳫंस्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोतीति॥ २॥ ते ह देवा ऊचुः। योऽयं देवः पशूनामीष्टेऽति सन्धं वाऽअयं चरति य इत्थᳫंस्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति विध्येममिति तᳫंरुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास॥ ३॥

प्रजापति ने अपनी दुहिता की इच्छा की। दिवरूप प्रजापति ने उषारूप दुहिता से संगम किया॥ १॥ यह देवताओं की दृष्टि में पाप हुआ। देवता कहने लगे कि यह ब्रह्मा दिवरूप प्रजापति बनकर हमारी बहिन और अपनी पुत्री उषा से जो समागम करता है, यह भारी पाप करता है। देवताओं ने इस समाचार को महादेव से कहा। महादेव ने यह सुनकर ब्रह्मा को बाण से बींधा। इसी बीच में ब्रह्मा के वीर्य का पतन हो गया।

जब आर्यसमाजी ब्रह्मा सरस्वती की कथा को हमारे आगे रखते हैं तब हम कह देते हैं कि

जैसा श्रीमद्भागवत में लिखा है वैसा ही शतपथ में भी है। तब आर्यसमाजी कहते हैं कि यह शतपथ वेदविरुद्ध है। इस बात के सुनते ही हम कहते हैं कि शतपथ का यह पाठ वेदानुकूल है, देखो—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्॥ —ऋ० १०।६१।७

पिता अपनी लड़की के पीछे भागा।

इसको सुनकर आर्यसमाजियों के बिस्तर बँधने लगते हैं। कहो, शतपथ के जो प्रमाण मन्त्रभाग से नहीं मिलते उनको तो दयानन्द वेदानुकूल मानते हैं और शतपथ की जो श्रुतियाँ वेद से मिलती हैं उनको वेदविरुद्ध कह देना क्या घोर पाप नहीं है? —पृ० १३६, पं० १५

उत्तर—धन्य हो महाराज! स्वामी दयानन्दजी ने शतपथ के जो प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिये हैं उनकी वेदानुकूलता तो आपको नज़र नहीं आई, किन्तु इस प्रमाण की वेदानुकूलता आपको नज़र आ गई, और वह भी पौराणिक चतुर्मुख ब्रह्मा का अपनी पुत्री पर आशिक़ होकर उसके पीछे भागने वा उसको पकड़कर उससे मैथुन की प्रार्थना करने आदि निन्दनीय, घृणित तथा पापमय कर्मों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए! क्यों न हो, ऐसे कर्मों की वकालत सनातनधर्म के सिवाय और कर ही कौन सकता है? हम आपको सनातनधर्म का नमक हलाल करने पर तो बधाई देते हैं, किन्तु यह बतलाए देते हैं कि ब्रह्मा के काम को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए आप जो प्रमाण पेश कर रहे हैं वे आपका अनुमोदन नहीं करते, क्योंकि उन प्रमाणों में चतुर्मुख पौराणिक ब्रह्मा का नाम तक भी नहीं है, अपितु उन प्रमाणों में अलंकार द्वारा 'सूर्य तथा उषा' तथा 'मेघ और पृथिवी' का वर्णन है। देखिए, शतपथ ने तो स्वयं बता दिया कि 'दिवं वोषसं वा' इत्यादि, जिसका अर्थ आपने स्वयं किया है कि 'दिवरूप प्रजापति ने उषारूप दुहिता से समागम किया'—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि यहाँ पर प्रजापति से चतुर्मुख ब्रह्मा तथा दुहिता से ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती अभिप्रेत नहीं है। अब दिवरूप प्रजापति कौन है और उषा कौन है सो शतपथ में लिखा है कि—

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता। [शत० कां० १० अ० २ ब्रा० २ कं० ४]

प्रजापति नाम सूर्य का है।

तीन-चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर जो पूर्व दिशा में रक्तता दीख पड़ती है, उसका नाम उषा है। वह सूर्य की किरण से उत्पन्न होने के कारण उसकी कन्या के समान है। इन दोनों के समागम से दिन पैदा होते हैं। उन्हीं का नाम देवता है, क्योंकि ये बारह आदित्यों में आ जाते हैं। महादेव नाम ब्रह्म का है, क्योंकि वह सब देवों से बड़ा है और वीर्य नाम बल का है। अब इन सबको दिमाग़ में रखकर शतपथ के पाठ के अर्थ लगावें तो यह अर्थ होंगे कि—

'सूर्य ने उषा से समागम किया। दिनरूप देवताओं ने ब्रह्मरूप महादेव से शिकायत की। ब्रह्मरूप महादेव ने सूर्यरूप प्रजापति को बींध दिया, अर्थात् सायंकालरूपी तीर मारा जिससे सूर्य का वीर्य अर्थात् बल क्षीण हो गया, अर्थात् रात्रि पड़ गई।'

कहिए महाराज! क्या आपके भागवतादि पुराणों में भी कहीं 'ब्रह्मा का पुत्री के पीछे भागना' लिखकर यह बतलाया हुआ है कि 'यहाँ ब्रह्मा नाम सूर्य का तथा सरस्वती का नाम उषा हैं'? यदि नहीं लिखा तो पुराणों की कथा को शतपथ के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न 'बालुरेत में से तेल निकालने के समान' व्यर्थ और निष्फल है। बस, इस शतपथ के अनुकूल ही ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ है कि—

'सूर्य उषा के पीछे भागा' अथवा

अत्र पिता दुहितुर्गर्भमाधात् पिता पर्जन्यः दुहिता पृथिव्याः। —निरुक्त अ० ४ खं० २१

इस निरुक्त के अनुसार यह अर्थ हो सकता है कि—

'बादल ने पृथिवी से समागम किया।'

अतः ये दोनों ही प्रमाण पौराणिक कथा की पुष्टि नहीं करते और पुष्टि करें भी कैसे जबकि वेद निकट के सम्बन्धों का स्वयं खण्डन करते हैं, जैसेकि—

परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि। पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः॥७२॥

—यजुः० ११

हे तेजस्वि पुरुष! अग्नि आदि पदार्थों से युक्त वाहनोंवाले आप इस श्रेष्ठ रूप-गुण-शीलवती के लिए दूर देश तथा सम्बन्ध से यहाँ आये हैं। आप पालना करनेवाले और सर्वप्रिय हैं॥७२॥

निरुक्त ने भी वेद में आये दुहिता शब्द का अर्थ करते हुए लिखा है कि—

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता। —निरु० अ० ३ खं० ४

दुहिता पुत्री को इसलिए कहते हैं कि यह दूर हुई हितकारक होती है। यहाँ दूर से दूर देश तथा दूर-सम्बन्ध दोनों ही इष्ट हैं।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वेद निकट के सम्बन्धों का बलपूर्वक खण्डन करता है। फिर पुराणों में प्रतिपादित निकट सम्बन्धों को वेदानुकूल सिद्ध करना मूर्खता नहीं तो क्या है?

हाँ, पुराणों में निकट-सम्बन्धों की आज्ञा विद्यमान है, जैसाकि—

एतस्मिन्नन्तरे वक्त्रात्समुद्भूता च शारदा। दिव्याङ्गं सुन्दरं तस्या दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः॥२॥
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडितः। रतिं देहि मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलम्॥३॥
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम्। पंचवक्त्रोऽयमशुभो न योग्यस्तव कंधरे॥४॥

—भविष्य० प्रति० सर्ग पर्व खं० ४ अ० १३

ततस्ते मुनयः सर्वे मोहिताश्चाप्यहं मुने। संहितो मनसा किंचिद्विकारं प्रापुरादितः॥२०॥
इत्थं पापगतिं वीक्ष्य भ्रातॄणां पितुस्तथा। धर्मः सस्मार शम्भुं वै तदा धर्मावनं प्रभुम्॥३०॥

—शिव० रुद्र० सती० अ० ३

दक्षश्च मोहितः शम्भोर्मायया ब्राह्मणः सुतः। भ्रातृभिः स भगिन्यां वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा॥२६॥
ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितः शिवमायया। अभवद्भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च॥२७॥

—शिव ० उमा० अ० ४

या तु ज्ञानमयी नारी वृणेद्यं पुरुषं शुभम्। कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत्॥२६॥
स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्। भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥२७॥
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसंभवः। विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत॥२८॥

—भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १८

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥३६॥
सार्द्धं रायणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥३८॥
कृष्णमातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्णमातुलः॥४१॥

—ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ४९

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः॥८८॥
कन्यकां मातुलानां च दाक्षिणात्यः परिग्रहः॥११५॥

—ब्रह्मवैवर्त खं० ४ अ० ११५

क्या संसारभर के सनातनधर्म-प्रतिनिधियों में यह दम है कि वे पुराणों में प्रतिपादित पूर्वोक्त

बेटी, बहिन, माता, भतीजी, मामी तथा मामा की पुत्री से विवाहों को वेदानुकूल सिद्ध कर सकें?

(५४५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३९ में लिखा है कि

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनं, चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदंसर्वं वासयन्ति।

—छान्दो० ३।१६

इस श्रुति को वेदानुकूल समझकर सत्यार्थप्रकाश में लिखा गया है, किन्तु आर्यसमाजियों से जब इसकी वेदानुकूलता पूछी जाती है तब वे घुड़दौड़ मचा देते हैं। सिवाय भाग जाने के और उनको कुछ नहीं सूझता, और जब हम छान्दोग्य की—

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते॥ ३॥ —छान्दोग्य खं० ४।१४

यह श्रुति पेश करके सिद्ध करते हैं कि ज्ञानी पुरुष को कर्मबन्धन नहीं होता, तब आर्यसमाजी कह उठते हैं कि यह श्रुति वेदविरुद्ध है। कौन कहता है कि यह श्रुति वेदविरुद्ध है? इस श्रुति के भाव को कहनेवाले वेदमन्त्र को भी देख लें—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥

—यजुः० अ० ४०

इस लोक में कर्मों को करते हुए सौ वर्ष जिओ, इस प्रकार वेदप्रतिपादित कर्म करने से मनुष्य को कर्म नहीं चिपटते। इस प्रकार से वेदानुकूल को वेदविरुद्ध और वेदविरुद्ध को वेदानुकूल कहकर अपनी नीचता का परिचय देते हैं। इसी प्रकार माण्डूक्य, कठ, कैवल्य, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, मुण्डकादि उपनिषदों के अनेक प्रमाण सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत किये हैं, क्योंकि वे दयानन्द की दृष्टि में वेदानुकूल हैं, किन्तु हम इस बात की घोषणा करते हैं कि किसी भी आर्यवीर रमणी ने ऐसा वीर पुत्र पैदा नहीं किया कि जो स्वार्थवश लिखे हुए दयानन्द के इस सफ़ेद झूठ को सत्य सिद्ध करे। —पृ० १३७, पं० २१

उत्तर—सनातनधर्म की हालत भी आजकल बड़ी दयनीय है। इन बिचारों को छिपने के लिए कोई स्थान और भागने के लिए कोई भी रास्ता नहीं मिलता। स्वामीजी ने वेदानुकूलता का सत्य सिद्धान्तरूप सूर्य क्या प्रकाशित किया है कि इन बेचारों की आँखें उल्लुओं की भाँति चुँधियाने लगीं और लगे भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलने! उदाहरणार्थ आपने ही प्रश्न नम्बर ४६९ में उपनिषदों को वेदों की भाँति ईश्वर से प्रकट होना माना है, फिर प्रश्न नं० ४९३ में आपने उपनिषदों को वेद माना है। अब यहाँ पर उपनिषदों की वेदानुकूलता से ही आप इनकार कर रहे हैं। कहिए श्रीमान्जी! स्वामीजी ने उपनिषदों के जो प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिये हैं यदि वे वेद के अनुकूल नहीं हैं तो क्या वेद के विरुद्ध हैं? यदि विरुद्ध हैं तो वे वेदमन्त्र पेश कीजिए जिनके साथ इन प्रमाणों का विरोध है। यदि कोई वेदमन्त्र आप विरोध सिद्ध करने के लिए पेश नहीं कर सकते तो आर्ष प्रमाण होने से स्वयं ही वेदानुकूल सिद्ध हो गये। अब रही बात **'पुरुषो वाव'** इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद् के प्रमाण की, सो आपने इस प्रमाण को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कोई वेदमन्त्र देकर वेद के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया, अतः आप प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान में आकर पराजित हो चुके। हम इस बात की बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि छान्दोग्य के ये प्रमाण सर्वथा वेदानुकूल हैं, जैसेकि वेदों में लिखा है—

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके॥ २१॥

—यजुः० अ० ४

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य! जैसे जो अग्नि आदि विद्या-सम्बन्धी जिसकी सेवा २४ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करनेवालों ने की हुई है जो प्रकाशकारक है, जो प्राणवायु सम्बन्धवाली और जिसको

४४ वर्ष ब्रह्मचर्य करनेहारे प्राप्त हुए हों वैसी है। जो सूर्यवत् सब विद्याओं की प्रकाश करनेवाली वा जिसका ग्रहण ४८ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्यसेवी मनुष्यों ने किया हो वैसी है, जो आह्लाद करनेवाली है, जिसको सर्वोत्तम, दुष्टों को रुलानेवाला परमेश्वर वा विद्वान् सुख में रमणयुक्त करता और जिस पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्यों के साथ वर्त्तमान हुई वाणी वा बिजली का निर्माण वा इच्छा करता अथवा जिसकी मैं इच्छा करता हूँ, वैसे तू भी उसको रमणयुक्त वा इसको सिद्ध करने की इच्छा कर।

बस, वेद के मन्त्र की ही छान्दोग्य ने सरल व्याख्या की है। इससे सिद्ध है कि छान्दोग्य का '**पुरुषो वाव यज्ञः**' सर्वथा वेदानुकूल है। इसी प्रकार उपनिषदों के सम्पूर्ण प्रमाण वेदानुकूल हैं। आपने जो 'यथा पुष्करपलाश' को 'कुर्वन्नेवेह' मन्त्र के अनुकूल साबित किया है सो हमें इसपर कोई शंका नहीं है, क्योंकि इन दोनों का यह अभिप्राय है कि 'जो मनुष्य वेदप्रतिपादित कर्म करता है उसको बुरे कर्म नहीं चिपटते'। यदि इससे आपका यह अभिप्राय हो कि 'ज्ञानी व्यक्ति को कर्मों का फल नहीं मिलता' तो आपकी यह कल्पना निर्मूल है और न ही छान्दोग्य तथा वेद का यह अभिप्राय है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को कर्मों का फल अवश्य मिलता है, जैसाकि वेद में लिखा है कि—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवास्मि सोऽस्मि॥

—यजुः० २।२८

भाषार्थ—हे न्याययुक्त, नियत कर्म के पालन करनेहारे सत्यस्वरूप परमेश्वर! आपने जो कृपा करके मेरे लिए सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध नियमों से युक्त सत्याचरण करने योग्य सत्य नियम को जिस प्रकार मैं करने में समर्थ होऊँ, अर्थात् उसका आचरण अच्छी प्रचार मैं कर सकूँ वैसा मुझको कीजिए। जो मैंने उत्तम वा अधम कर्म किया है उसी को भोगता हूँ। अब भी जो मैं जैसा कर्म करनेवाला हूँ वैसे कर्म के फल भोगनेवाला होता हूँ॥ २८॥

यह मन्त्र शिक्षा देता है कि प्रत्येक मनुष्य को यही निश्चय करना चाहिए कि मैं अब जैसा कर्म करता हूँ वैसा ही परमेश्वर की व्यवस्था से फल भोगता हूँ और भोगूँगा। हम इस बात की बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित मैदान में निकलकर ऐसा वेदमन्त्र पेश नहीं कर सकता कि जिससे यह सिद्ध हो सके कि ज्ञानियों को कर्मों का फल नहीं मिलता।

(५४६) प्रश्न—इसी प्रकार वेदान्त, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, योग, सांख्य, श्रौतसूत्र, गृह्यादि ग्रन्थों के सत्यार्थप्रकाश में प्रमाण उद्धृत किये हैं और उनको ज़बरदस्ती से संसार को अन्धा बताने के लिए वेदानुकूल माना है। —पृ० १३९, पं० ५

उत्तर—शाबाश सनातनधर्म के सपूतो, शाबाश! अब सब शास्त्रों पर पानी फेरकर ही दम लेना। हाँ, महाराज! यदि ये ग्रन्थ वेदानुकूल नहीं हैं तो क्या वेदविरुद्ध हैं? यदि वेदविरुद्ध हैं तो वे वेदमन्त्र पेश कीजिए जिनके उपर्युक्त ग्रन्थ विरुद्ध हैं और यदि आप विरोध में कोई वेदमन्त्र पेश नहीं कर सकते तो ये सारे ग्रन्थ आर्ष होने से वेदानुकूल ही हैं। श्रीमान्जी! वेदान्त आदि छह शास्त्र वेदों के उपाङ्ग हैं और गृह्यसूत्र कल्प हैं, वेदों का अंग हैं तो क्या वेदों के अङ्ग तथा उपाङ्ग भी वेदों के विरुद्ध ही होते हैं? आपको यह लिखते हुए कुछ शरम तो नहीं आई। हाँ, यह सत्य है कि इन गृह्यसूत्रों में भी आप-जैसे स्वार्थी लोगों ने कुछ ऐसी बातें अवश्य मिला दी हैं जो वेद के विरुद्ध हैं, जैसेकि—

आचान्तोदकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राह॥ २६॥
प्रत्याह माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यनाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।

मम चामुष्य च पाप्मानं हिनोमीति यद्यालभेत॥ २७॥
अथ यद्युत्सिसृक्षेत् 'मम चामुष्य च पाप्मा हतः' ओमुत्सृजत तृणान्यत्त्विति ब्रूयात्॥ २८॥
नत्वमांसोऽर्घः स्यात्॥ २९॥
अधियज्ञमधिविवाहं कुरुते त्येव ब्रूयात्॥ ३०॥

—पारस्कर० काण्ड १ कण्डिका ३ मधुपर्कसूत्रम्

भारद्वाज्या मांसेन वाक्प्रसारकामस्य॥ ७॥
कपिंजलमांसेनान्नाद्यकामस्य॥ ८॥
मत्स्यैर्जवनकामस्य॥ ९॥
कृकषाया आयुष्कामस्य॥ १०॥
आट्या ब्रह्मवर्चसकामस्य॥ ११॥
सर्वैः सर्वकामस्य॥ १२॥ —पारस्कर० काण्ड० १ कण्डिका १९ अन्नप्राशन

भाषार्थ—आचमन करके तलवार लेकर तीन बार गौ शब्द का उच्चारण करके 'मारो' ऐसा कहे। यदि गौ को मारनेकी इच्छा हो तो **'माता रुद्राणामिति'** मन्त्र पढ़े और यदि गौ को छोड़ना चाहे तो **'मम चामुष्य च'** इस मन्त्र का उच्चारण करे; किन्तु अर्घ्य तो बिना मांस के होता नहीं, इसलिए यज्ञ में और विवाह में अवश्य ही गौ को मारना चाहिए॥ ३०॥

यदि कोई चाहे कि मेरा बालक वागीश हो तो उसे भारद्वाजी का मांस खिलाये। यदि कोई चाहे कि मेरा बालक अन्नादिका स्वामी हो तो वह बालक को कपिञ्जल का मांस खिलावे यदि कोई बालक को तेज़ चाहे तो मछली का मांस, यदि बालक की बड़ी आयु चाहे तो कृकषा का मांस, यदि कोई तेजस्वी बालक चाहे तो आटि पक्षी का मांस तथा यदि कोई अपने बालक को सर्वगुणसम्पन्न चाहे तो बालक को इन सबका मांस खिलावे॥ १२॥

यजुर्वेद १।१ में 'अघ्न्या' शब्द से गौ को न मारने योग्य तथा अथर्ववेद ६।१४०।२ में **'व्रीहिमत्तं'** इत्यादि से मांस के खाने का निषेध किया है, अतः गौ का मारना तथा मांस का खाना वेदविरुद्ध होने से पाप है। इससे सिद्ध हुआ कि गृह्यसूत्रों का ऊपरवाला प्रमाण वेद के विरुद्ध है। क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक वीर पण्डित पैदा किया है जो गृह्यसूत्रों के इस प्रमाण को वेदानुकूल सिद्ध करके गौ का मारना तथा मांस का खाना धर्म सिद्ध कर सके?

(५४७) प्रश्न— माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

—चाण्क्यनीतिदर्पणः, अध्याय २, श्लोक ११

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

—चा० शास्त्रम्

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्। —चाणक्य० अ० १०।१३

स्वामी दयानन्द को इनकी भी वेदानुकूलता वेद में मिली होगी। —पृ० १३९, पं० १३

उत्तर—कहिए महाराज! यदि ये श्लोक वेदानुकूल नहीं हैं तो क्या ये वेदविरुद्ध हैं? यदि ये श्लोक वेदविरुद्ध हैं तो आप वेद में से ऐसे मन्त्र पेश करके अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करें कि जिनसे यह सिद्ध हो सके कि विद्या न पढ़ानेवाले माता-पिता मित्र हैं। अथवा विद्वत्ता और नृपता समान है। अथवा मूल के नष्ट होने पर भी वृक्ष के फूल-फल लग जाते हैं। यदि आप ऐसे वेदमन्त्र पेश करके उपर्युक्त श्लोकों को वेदविरुद्ध सिद्ध नहीं कर सकते तो ये श्लोक यद्यपि आर्ष होने से स्वयं ही वेदानुकूल हैं, तथापि प्रथम के दो श्लोकों में विद्या की प्रशंसा तथा अविद्या की निन्दा

है जो वेद के निम्न मन्त्रों के अनुकूल है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते॥ —यजुः० ४०।१२

विद्ययामृतमश्नुते॥ —यजुः० ४०।१४

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव चक्षुराततम्॥ —ऋ० १।२२।२०

तीसरे श्लोक में यह बतलाया गया है कि कारण के अभाव से कार्य का भी अभाव हो जाता है, अर्थात् कारण के होने से ही कार्य का होना सम्भव है, सो यह सिद्धान्त निम्न मन्त्रों के अनुसार होने से वेदानुकूल है—

अविर्वै नाम देवत ऋतेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥
—अथर्व० १०।८।३१

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्लं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥ —ऋ० १।१६४।२०

(५४८) प्रश्न—अपने-अपने विषय में सभी ग्रन्थ प्रमाण होते हैं। शब्दसिद्धि में व्याकरण, रोगनिर्णय में वैद्यक, संस्कारादि अनुष्ठान में धर्मशास्त्र, कालज्ञान तथा गणितज्ञान में ज्योतिष, ब्रह्मज्ञान में उपनिषत् स्वतःप्रमाण हैं। स्वामी दयानन्दजी ने इनमें वेदानुकूलता का झगड़ा लगाया है, यह घुसने-निकलने की कुञ्जी है? —पृ० १३९, पं० १९

उत्तर—व्याकरण, वैद्यक, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, तथा उपनिषथ् ये समस्त ग्रन्थ स्वतःप्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि ये ईश्वरकृत नहीं, अपितु मनुष्यकृत हैं। ये समस्त ग्रन्थ वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक इनका वेद से विरोध न हो, किन्तु जहाँ ये ग्रन्थ वेद से विरोध करेंगे वहाँ इनके मुक़ाबले में वेद का ही प्रमाण होगा, इनका नहीं। उपर्युक्त ग्रन्थ यद्यपि मुख्यतया अपने-अपने विषयों का ही प्रतिपादन करते हैं, तथापि गौणरूप से इनमें दूसरे विषयों का भी वर्णन आ जाता है। जैसेकि आपने ही अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ३१३ पर वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए व्याकरण के ग्रन्थ महाभाष्य का प्रमाण '**तपः श्रुतं च योनिश्च**' इत्यादि दिया है जोकि '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' यजुः० ३१।११ के अनुसार वेद के विरुद्ध है। यदि व्याकरण शब्दविषय में ही प्रमाण है तो आपने यह महाभाष्य-प्रमाण वर्णव्यवस्था विषय में क्यों दिया? इसी प्रकार से सब ग्रन्थों के बारे में समझ लेना चाहिए, अतः उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ परतःप्रमाण हैं, स्वतःप्रमाण नहीं।

(५४९) प्रश्न—वेदानुकूलता से एक लाभ अवश्य हुआ कि अब आर्यसमाज में सोलह संस्कार न होंगे, क्योंकि गर्भाधानादि सोलह संस्कार मन्वादि स्मृतियों और पारस्करादि गृह्यसूत्रों में लिखे हैं, वेदों में इनकी विधि नहीं, अतएव अब ये वेदानुकूलन न रहे।—पृ० १४०, पं० ४

उत्तर—यदि वेद में सोलह संस्कारों की विधि नहीं है तो क्या वेदों में सोलह संस्कारों का निषेध है? यदि निषेध है तो आप क्यों करते हैं? और वे कौन-से वेदमन्त्र हैं जो सोलह संस्कारों का निषेध करते हैं? यदि निषेध करनेवाले मन्त्र नहीं हैं तो भी सोलह संस्कार आर्षग्रन्थों में प्रतिपादित होने से वेदानुकूल ही हैं तथा आपकी यह प्रतिज्ञा भी ग़लत है कि वेदों में सोलह संस्कारों की विधि नहीं है। हमारी यह प्रतिज्ञा है कि सोलह संस्कारों की विधि वेद में मौजूद है। उस विधि की ही मनुस्मृति तथा गृह्यसूत्रों ने विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। सोलह संस्कारों के विधिमन्त्रों के लिए देखो विवाह-प्रकरण। हाँ, पुराणों में सोलह संस्कारों का खण्डन अवश्य है, जैसाकि—

विद्वत्सदसि योप्याह संस्काराद् ब्राह्मणो भवेत्। न्यायज्ञैः स निराकार्यो वाक्यैर्न्यायानुसारिभिः॥७॥
—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

भाषार्थ—जो कोई विद्वानों की सभा में कहे कि संस्कारों से ब्राह्मण होता है, तो न्याय के

जाननेवालों को न्यायानुसार वाक्यों से उसका खण्डन करना चाहिए॥७॥

क्या किसी सनातनधर्मी माता ने कोई ऐसा पौराणिक पण्डित पैदा किया है जो उपर्युक्त श्लोक में किये गये सोलह संस्कारों के खण्डन को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५५०) प्रश्न—एक और सुख हो गया—चोटी रखने और जनेऊ पहनने का भी झंझट उड़ गया। वेदों में शिखा रखना, यज्ञोपवीत धारण करना कहीं नहीं लिखा, केवल गृह्यसूत्र और धर्मशास्त्रों में लिखा है। ये दोनों वेदानुकूल नहीं हैं। वरना '**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्**' इसको वेदानुकूल सिद्ध किया जावे। पृ० १४०, पं० १०

उत्तर—यदि चोटी और यज्ञोपवीत की वेद में आज्ञा नहीं है तो क्या वेद में चोटी-यज्ञोपवीत का निषेध है? यदि निषेध है तो सनातनधर्मी क्यों धारण करते हैं? और वे कौन-से वेदमन्त्र हैं जो चोटी और यज्ञोपवीत का निषेध करते हैं? यदि ऐसे वेदमन्त्र नहीं हैं तो गृह्यसूत्र तथा धर्मशास्त्र प्रतिपाद्य आर्ष होने से यज्ञोपवीत और चोटी वेदानुकूल ही हैं। आपकी यह प्रतिज्ञा भी ग़लत है कि वेदों में चोटी और यज्ञोपवीत की आज्ञा नहीं है। हम डंके की चोट से इस बात की घोषणा करते हैं कि वेदों में चोटी और यज्ञोपवीत का विधान विद्यमान है, जैसाकि—

शिखिभ्यः स्वाहा। (अथर्व० १९।२२।१५) चोटी रखनेवालों से मीठा बोले।

उपवीतिने पुष्टानां पतये नमः। (यजुः० १६।१७) यज्ञोपवीत धारण करनेवाले बलवानों के पति का सत्कार करो। '**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्**' यह प्रमाण उपर्युक्त मन्त्र के अनुकूल है, किन्तु शिखा का रखना वेद में विकल्प से है, जैसाकि—

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽ इव॥ —यजुः० १७।४८

जिस संग्राम में बिना चोटी के वा बहुत चोटियोंवाले बालकों के समान बाण आदि अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं।

हाँ, पुराणों में चोटी कटाने की आज्ञा विद्यमान है, जैसाकि—

पुत्राद्या वृद्धपूर्वास्ते एकवस्त्राः शिखां विना॥७२॥
प्राचीनावीतिनः सर्वे विशेयुर्मौनिनो जलम्॥७३॥

—गरुड० प्रेत० अ० ४

पुत्रादि वृद्धोंसमेत एक वस्त्र पहिने पुए शिखा से शून्य; प्राचीनावीति हुए सब जल में प्रवेश करें।

क्या सनातन धर्म के नेता गरुड़पुराण की इस आज्ञा पर चलते हैं?

(५५१) प्रश्न—वेद में सन्ध्या तथा पञ्चयज्ञविधि की आज्ञा नहीं है। —पृ० ख, पं० ११

उत्तर—यदि वेद में पाँच यज्ञों की आज्ञा नहीं है तो क्या इनका निषेध है? यदि निषेध है तो सनातनधर्म वेदविरुद्ध पाँच यज्ञों को क्यों मानता है? और वे कौन-से मन्त्र हैं जो पाँच यज्ञों का निषेध करते हैं? यदि निषेध नहीं है तो पाँच यज्ञ आर्षग्रन्थ-प्रतिपाद्य होने से स्वयं ही वेदानुकूल हैं, और फिर पाँच महायज्ञों की तो आज्ञा भी वेदों में विद्यमान है, जैसाकि—

(१) ब्रह्मयज्ञ—**नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्॥** —अथर्व० १०।७।३१

भाषार्थ—जो प्रगतिशील आत्मा उषा की समाप्ति से पहले अर्थात् तारे निकलने से पूर्व सायंकाल तथा सूर्य के निकलने से पहले प्रात:काल नमस्कार करने योग्य प्रभु को ओंकार आदि नामों से स्मरण करता है वह महात्मा उस स्वराज्य को प्राप्त करता है, जिससे श्रेष्ठ कोई दूसरा पदार्थ नहीं है और जो स्वराज्य पहले भी था अथवा जो सबसे मुख्य है॥३१॥

इस मन्त्र में प्रातः तथा सायं दोनों समय सन्ध्या करने की आज्ञा है। आपके ग्रन्थों में जो त्रिकाल सन्ध्या का विधान है, जैसाकि—

इति त्रिकालसन्ध्याप्रयोगः समाप्तः। —(पञ्चमहायज्ञविधि, निर्णयसागर प्रेस)

कृपया बतलावें कि यह तीन काल की सन्ध्या किस वेद के अनुकूल है? यदि नहीं तो सनातनधर्म को चाहिए कि इस मिथ्या हठ का परित्याग कर दे।

(२) देवयज्ञ—**सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता॥ ३॥**
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥ ४॥

—अथर्व० १९।५५

भषार्थ—घर आदि की रक्षा करनेवाला यह अग्नि प्रत्येक सायं और हर प्रातः हमें सुख-शान्ति के देनेवाला हो॥ ३-४॥

इन मन्त्रों में सायं-प्रातः दोनों समय अग्निहोत्र करने की आज्ञा है।

पुराणों में यज्ञ की सामग्री में मांस भी डाला जाता है, जैसाकि—

पूगमानं च मांसस्य सगुडं तत्र दृश्यते॥ ९॥ —भविष्य० मध्यम० भाग १ अ० १८

मांस का कीमा भी गुडसहित सामग्री में होना चाहिए॥ ९॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्। पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च॥ २३॥

—मनु० अ० ५

ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के यज्ञों में पुराने ज़माने में खाने के योग्य पशु-पक्षियों के पुरोडाश होते थे॥ २३॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते॥ २५७॥

—मनु० अ० ३

मुनि-अन्न, दुग्ध, सोमरस, विकाररहित मांस, सेंधा नमक—ये सब वस्तुएँ स्वभाव से हवन की सामग्री कही जाती हैं॥ २५७॥

को वोऽध्वरं तुविजाता अरम्॥ —ऋ० १०।६३।६

इस वेदमन्त्र में यज्ञ को अध्वर लिखा है और अध्वर का अर्थ है—

अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः॥ १॥ —निरु० अ० १ खं० ८

अध्वर नाम यज्ञ का है। अध्वर उसको कहते हैं जिसमें हिंसा न हो, वेद यज्ञ में हिंसा का निषेध करता है, अतः यज्ञ में उपर्युक्त मांसविधान करनेवाले सब श्लोक वेद के विरुद्ध हैं। क्या कोई जीता-जागता सनातनधर्म का विद्वान् है जो इन श्लोकों को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(३) पितृयज्ञ—**ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।**
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ —यजुः० २।३४

भाषार्थ—पराक्रम, अन्न, रस आदि को प्राप्त करानेवाला जल, जीवनप्रद उत्तम अन्न, घी, दूध, उत्तम मधु और स्वयं पककर गिरे हुए फलादि पदार्थ मेरे पितरों—पिता-माता, पितामह, गुरु आदि को तृप्त करें और उनको शक्तिसम्पन्न करें॥ ३४॥

इस मन्त्र में पितृयज्ञ की आज्ञा विद्यमान है और जीते हुए माता-पिता आदि की सेवा करने का नाम पितृयज्ञ बतलाया है, परन्तु पौराणिक लोग मुर्दों का श्राद्ध करने तथा मुर्दे का हाथ निकालकर पिण्ड ग्रहण करना मानते हैं, जैसाकि—

ततस्तं दर्भविन्यासं भित्त्वा सुरुचिराङ्गदः। प्रलम्बाभरणो बाहुरुदतिष्ठद् विशाम्पते॥ १५॥

तमुत्थितमहं दृष्ट्वा परं विस्मयमागमम्। प्रतिग्रहीता साक्षान्मे पितेति भरतर्षभ॥ १६॥

—महा० अनु० अ० ८४

जलं त्रिदिवमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये॥ १३॥

अत्र स्नाहि पिबात्रेति मन्त्रेणानेन काश्यप॥ १४॥ —गरुड० प्रेत० अ० ५

भाषार्थ—उसके पश्चात् उस दर्भसमूह का भेदन करके सुन्दर कड़े पहने हुए, अलंकृत हाथ पिण्ड लेने के लिए बाहर निकला॥ १५॥ उस बाहर निकले हाथ को देखकर मैं बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि वह ग्रहण करने के लिए आया हुआ साक्षात् मेरा पिता ही था॥ १६॥ मृतक को जलाने से तीन दिन तक जल आकाश में रखना चाहिए और दूध मिट्टी के बरतन में रखना चाहिए॥ १३॥ यहाँ स्नान करो, यहाँ पियो—इस मन्त्र से धरना चाहिए॥ १४॥

क्या कोई अपने पेट को लैटरबक्स बनानेवाला पौराणिक पोप मृतकों के श्राद्ध, हाथ का निकलना तथा प्रेत का स्नान करना और दूध पीना वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है?

(४) बलिवैश्वदेवयज्ञ—**अहरहर्बलिमित्ते हरन्तो अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने।**
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम्।

—अथर्व० १९।५५।७

ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! हम तेरे आदेश से जिस प्रकार उपकारी अश्व आदि पशुओं को चाहे वे ठहरे हों या काम पर हों, घास देते हैं उसी भाँति प्रतिदिन ही सब प्राणियों के प्रति बलि अर्थात् भोज्य पदार्थ देते हुए धन-वृद्धि के द्वारा चक्रवर्ती राज्यलक्ष्मी से, शुद्ध इच्छा और सम्यग् ज्ञान से आनन्दित होते हुए हे सन्मार्ग-प्रदर्शक प्रभो! तेरे शासन में रहते हुए पड़ोसी जन एक-दूसरे को क्लेश न दें॥ ७॥

इस मन्त्र में बलिवैश्वदेवयज्ञ की स्पष्ट आज्ञा विद्यमान है, परन्तु पुराणों में वेदविरुद्ध बलि का वर्णन है, जैसाकि—

गवां लक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम्। चतुर्लक्षं शशानां च कूर्माणां च तथा कुरु॥ ६१॥
दशलक्षं छागलानां भेटानां तच्चतुर्गुणम्। पर्वणि ग्रामदेव्यै च बलिं देहि च भक्तितः॥ ६२॥
एतेषां पक्वमांसं च भोजनार्थं च कारय। परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुरु भूमिप॥ ६३॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० १०६

भाषार्थ—हे राजन्! रुक्मिणी के विवाहार्थ एक लाख गौवों को काटो, दो लाख हरिण काटो, चार लाख ख़रगोश तथा चार लाख ही कछवे काटो॥ ६१॥ दश लाख बकरे तथा चालीस लाख दुंबे काटो, पर्व में ग्राम की देवी को भक्तिपूर्वक बलि देकर॥ ६२॥ इन सबके मांस को भोजन के लिए तैयार करो। इस प्रकार से व्यंजनों से परिपूर्ण विवाह की सामग्री को तैयार करो॥ ६३॥

चूँकि '**मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः**'—यजुः० १२।३२ में प्राणियों की हिंसा करने तथा '**शेरभक शेरभ**' अथर्व० २।२४।१ में मांस के खाने का निषेध किया है, अतः उक्त पौराणिक बलिदान वेद के विरुद्ध होने से पाप है। क्या कोई मांसहारी, गोघातक पौराणिक इस प्रकार के बलिदान को वेदानुकूल सिद्ध करने को समर्थ है?

(५) अतिथियज्ञ—**तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥**

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्तु॥ २॥ —अथर्व० १५।११

भाषार्थ—जिसके घर में इस प्रकार का विद्वान् सत्यभाषण, परहित, कामनादि व्रतों से भूषित सदैव भ्रमण करके जनता को सत्यज्ञान प्राप्त करानेवाला अतिथि महात्मा आ जाए॥ १॥ तो गृहपति

आप उठकर उसका स्वागत करता हुआ कहे—हे उत्तमव्रतधारिन् महात्मन्! आप पहले कहाँ रहे? परोपकार आदि व्रतों से भूषित भगवन्! लीजिए यह जल है। हे लोगों को व्रतोपदेश करनेवाले धर्मात्मन्! मेरे समस्त पदार्थ आपको तृप्त करें। हे सब प्राणियों से प्रेम करनेवाले गुरो! जो आपको अच्छा लगे वैसा हो। हे कमनीय स्वभाववाले कृपालो! जैसे आपकी आज्ञा हो वैसे ही होगा। सत्कामना-सम्पन्न विद्वन्! जैसे आपकी इच्छा हो वैसे ही किया जाए॥ २॥

इन मन्त्रों में स्पष्ट रूप से अतिथियज्ञ की आज्ञा है, किन्तु पौराणिक लोग वेदविरुद्ध अतिथि सेवा करने को भी धर्म मानते हैं, जैसाकि—

युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि—

केन मृत्युर्गृहस्थेन धर्ममाश्रित्य निर्जितः। इत्येतत् सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेनापि च पार्थिव॥ ३॥

गृहस्थी धर्म का आश्रय लेकर मृत्यु को कैसे जीत सकता है? हे राजन्! ये मुझसे सम्पूर्ण तत्त्व कहिएगा।

भीष्म ने कहा कि इस बारे में मैं एक इतिहास सुनाता हूँ जैसे गृहस्थ मृत्यु को जीत सकता है। सुदर्शन नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम औघवती था। सुदर्शन ने अपनी स्त्री से कहा कि—

अतिथेः प्रतिकूलं ते न कर्तव्यं कथंचन॥ ४२॥
येन येन च तुष्येत् नित्यमेव त्वयाऽतिथिः। अप्यात्मनः प्रदानेन न ते कार्या विचारणा॥ ४३॥

तुझे अतिथि के प्रतिकूल कभी कुछ भी नहीं करना चाहिए। नित्यप्रति जिस-जिस उपाय से अतिथि सन्तुष्ट हो सके, चाहे वह शरीर के दान देने से ही हो, तुझे इसमें विचार नहीं करना चाहिए, यह कहकर ब्राह्मण लकड़ियाँ लेने जंगल में चला गया। उसके चले जाने के पीछे एक ब्राह्मण उसके घर में आया और उसने सुदर्शन की स्त्री औघवती से कहा कि—

यदि प्रमाणं धर्मस्ते गृहस्थाश्रमसम्मतः। प्रदानेनात्मनो राज्ञि कर्तुमर्हसि मे प्रियम्॥ ५४॥
स तया छन्द्यमानोऽन्यैरीप्सितैर्नृपकन्यया। नान्यमात्मप्रदानात् स तस्या वव्रे वरं द्विजः॥ ५५॥
सा तु राजसुता स्मृत्वा भर्तुर्वचनमादितः। तथेति लज्जमाना सा तमुवाच द्विजर्षभम्॥ ५६॥
ततो विहस्य विप्रर्षिः सा चैवोपविवेश ह॥ ५७॥

यदि गृहाश्रम का धर्म तुझको प्रमाण है तो अपने शरीर के दान से मुझे प्रसन्न कर। उस औघवती ने और बहुत-से मनोवाञ्छित वर देने चाहे, किन्तु उसने शरीरदान के सिवाय और कोई वर स्वीकार नहीं किया। तब उस राजपुत्री ने पति के पहले वचन को याद करके उस ब्राह्मण से कहा कि ''बहुत अच्छा।'' तब ब्राह्मण हँसकर और प्रसन्न होकर तथा औघवती दोनों घर में प्रविष्ट हो गये। इतने में सुदर्शन लकड़ियाँ लेकर वापस आया तो उसने अपनी पत्नी औघवती को न देखा। तब सुदर्शन ने उसको आवाज़ दी तो—

तस्मै प्रतिवचः सा तु भर्त्रे न प्रददौ तदा। कराभ्यां तेन विप्रेण स्पृष्टा भर्तृव्रता सती॥ ६०॥
उच्छिष्टास्मीति मन्वानां लज्जिता भर्तुरेव च। तूष्णीं भूताभवत् साध्वी न चोवाचाथ किंचन॥ ६१॥

उसने अपने पति को कोई भी जवाब नहीं दिया, क्योंकि उस पतिव्रता को ब्राह्मण ने हाथों से स्पर्श कर लिया था। इसलिए वह यह समझकर कि मैं उच्छिष्ट हूँ पति से शर्मिन्दा हुई चुप हो गई और कुछ भी न बोली। जब सुदर्शन बार-बार बुलाने लगा तो—

उटजस्थस्तु तं विप्रः प्रत्युवाच सुदर्शनम्। अतिथिं विद्धि सम्प्राप्तं ब्राह्मणं पावके च माम्॥ ६४॥
अनया छन्द्यमानोऽहं भार्यया तव सत्तम। तैस्तैरतिथिसत्कारैर्ब्रह्मन्नेषा वृता मया॥ ६५॥
अनेन विधिना सेयं मामर्चति शुभानना। अनुरूपं यदत्रान्यत्तद् भवान् कर्तुमर्हसि॥ ६६॥

वह कुटी में गया हुआ ब्राह्मण सुदर्शन से बोला कि हे पावके! मुझ ब्राह्मण अतिथि को तू अपने घार आया हुआ जान। इस तेरी पत्नी ने मुझे प्रसन्न करके कई प्रकार के अतिथि-सत्कारों से प्रसन्न किया है और मैंने इसको स्वीकार किया है। सो यह सुन्दरमुखी मुझे इस विधि से प्रसन्न कर रही है। अब जो कुछ आप उचित समझें सो करें। यह सुनकर सुदर्शन बोला कि—

सुरतं तेऽस्तु विप्राग्र्य प्रीतिर्हि परमा मम। गृहस्थस्य हि धर्मोऽ ग्र्यः सम्प्राप्ताऽतिथिपूजनम्॥ ६९॥
प्राणा हि मम दाराश्च यच्चान्यद्विद्यते वसु। अतिथिभ्यो मया देयमिति मे व्रतमाहितम्॥ ७१॥
निःसन्दिग्धं यथा वाक्यमेतन्मे समुदाहृतम्। तेनाहं विप्र सत्येन स्वयमात्मानमालभे॥ ७२॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! तेरा विषय सफल हो, मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। गृहस्थ का सबसे उत्तम धर्म अतिथि की पूजा है। मेरे प्राण, मेरी पत्नी, और भी जो कुछ मेरे पास धन है यह सब अतिथि को देने योग्य है, यह मेरा व्रत है। यह जो मैंने स्पष्ट वाक्य बोले हैं हे ब्राह्मण! सत्य जान मैं इनके कारण अपनी आत्मा को भूषित समझता हूँ।

यह कथा सुनाकर भीष्म बोले कि—

तस्माद् गृहाश्रमस्थस्य नान्यद्दैवतमस्ति वै। ऋतेऽतिथिं नरव्याघ्र मनसैतद्विचारय॥ ९१॥
एतत्ते कथितं पुत्र मयाख्यानमुत्तमम्। यथा हि विजितो मृत्युर्गृहस्थेन पुराभवत्॥ ९४॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमिदमाख्यानमुत्तमम्। बुभूषताभिमन्तव्यं सर्वदुश्चरितापहम्॥ ९५॥

—महा० अनु० अ० २

हे नरव्याघ्र! इस कारण से गृहस्थी के लिए अतिथि के बिना और कोई देवता नहीं है, यह विचार कर ले। हे पुत्र! यह मैंने उत्तम इतिहास तेरे लिए कह सुनाया जैसेकि पूर्वकाल में गृहस्थ ने मृत्यु को जीत लिया था। यह इतिहास धन्य है, यश तथा आयु का देनेवाला है और उत्तम है। इस इतिहास को भूषित करनेवाला तथा सम्पूर्ण दुश्चरित्र को दूर करनेवाला मानना चाहिए॥

यह है सनातनधर्म का अतिथियज्ञ! परन्तु वेद में आता है कि—

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्। य स्त्रीणां जीवभोजनः॥

—यजुः० २३।२१

हे शक्तिमान् राजन्! जो स्त्रियों के बीच प्राणियों का मांस खानेवाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो, उस पुरुष और उस स्त्री को बाँधकर ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके अपनी प्रजा के मध्य उत्तम सुख को धारण करो और अपने प्रकट न्याय को भली-भाँति चलाओ॥ २१॥

व्यभिचार करना पाप है, अतः उपर्युक्त पौराणिक अतिथि-सत्कार वेदविरुद्ध होने से पाप है। क्या संसार में कोई ऐसा व्यभिचार-प्रिय जीता-जागता पौराणिक पोप मौजूद है जो इस व्यभिचारमय पौराणिक अतिथि-यज्ञ को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५५२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ९५ पं० ९ में लिखा है कि "बच्चे को छह दिन तक माता और इसके बाद धाय दूध पिलावे" वेद में इसका कहीं पता नहीं। यहाँ पर वेद का बहाना लेकर वैदिक लोगों को ईसाई बनाने का उद्योग किया है। —पृ० ९३, पं० ६

उत्तर—स्वामीजी ने धायी का दूध पिलाना आवश्यक नहीं ठहराया और न ही छह दिन के बाद माता का दूध छोड़ना आवश्यक बतलाया है। हाँ, जो समर्थ हों तथा स्त्री का निर्बल होना न चाहते हों वे इस विधि पर यदि चाहें तो आचरण करें। देखिए, स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—

"जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त घृतादि से होम और स्त्री के भी स्नान, भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाए।

ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छह दिन तक बालक को पिलावे, पश्चात् धायी पिलाया करे, परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान-पान माता-पिता करावें। जो कोई दरिद्र हों, धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जोकि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों, उनको शुद्ध जल में भिगो, औंटा, छानके दूध के समान जल मिलाके बालक को पिलावें। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध हो वहाँ रक्खें। सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहाँ का वायु शुद्ध हो। और जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहाँ जैसा उचित समझें वैसा करें, क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव-समय निर्बल हो जाती है। इसलिए प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिए स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है। तबतक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रक्खे। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल-पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम, बल-पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक होंगे। स्त्री योनि-संकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।'' —सत्यार्थ० समु० २

(१) स्वामीजी ने यह विधि ईसाइयों से नहीं ली, अपितु ईसाइयों ने यह विधि वेद तथा शास्त्रों से सीखी है। इस विषय में वेद की आज्ञा है कि—

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳसमीची। द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः॥ २॥ —यजुः० १२

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस बिजली को बलदाता दिव्य प्राण धारण करें, जो रुचिकारक होके अन्तःकरण में प्रकाशित होता है, जो एक विचार से विदित अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध रूपवाले सब प्रकार सबको प्राप्त होनेवाली प्रकाश और भूमि तथा रात्रि और दिन जैसे एक बालक को दो माता दूध पिलाती है वैसे ही उसको तुम लोग जानो॥ २॥

जैसे जननी—माता और धायी बालक को दूध पिलाती है, वैसे ही दिन और रात्रि सबकी रक्षा करती हैं और जो बिजली के स्वरूप से सर्वत्र व्यापक है, वह अग्नि सूर्यादि का कारण है, इस बात का तुम सब निश्चय करो।

(२) इस वेदमन्त्र में स्पष्टरूप से धाय की आज्ञा मौजूद है। इसी की व्याख्या करते हुए सुश्रुत ने लिखा है कि—

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम्। चतू रात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते॥ २३॥ तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तामिश्रं मन्त्रपूतं त्रिकालं पाययेत्। द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिस्तृतीये च ततः प्राङ् निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत्॥ २४॥ ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमंगलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा॥ ३७॥ ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयसकामरोगां शीलवतीमचलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलंबौष्ठीमलम्बोर्ध्वस्तनीमव्यंगामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुलेजातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामामारोग्यबल-वृद्धये बालस्य॥ ३८॥ तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्यात्। लम्बस्तनीनासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत्॥ ३९॥ ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातामहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्त्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत्॥ ४०॥

—सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान, अध्याय १०

भाषार्थ—प्रसूता स्त्री के हृदय की नाड़ियों के मुख खुल जाते हैं। इससे चार रात्रि या तीन रात्रि के पश्चात् स्त्री के स्तनों में दूध उतरता है॥ २३॥ इस कारण पहले दिन शहद-घी में अनन्तमूल मिलाकर मन्त्रों को पढ़कर तीन बार बालक को पिलावे। दूसरे दिन लक्ष्मणा से सिद्ध किया हुआ घी, शहद मिलाकर पिलावे, तीसरे दिन भी यही करे। चौथे दिन स्तनों में से कुछ दूध निकाल डाले और दो समय थोड़ा-थोड़ा दूध प्रसूता के स्तनों से पिलावे तथा शहद और घी हाथ की हथेली जितना दोनों समय चटावे॥ २४॥ इसके पीछे दसवें दिन माता-पिता मंगलाचारपूर्वक स्वस्तिवाचन करके जैसा चाहें मनोहर, सुन्दर या नक्षत्र के नाम के अनुसार नाम रक्खें॥ ३७॥ इसके पश्चात् अपने वर्ण के अनुसार धायी नियत करनी चाहिए। वह धायी मध्यम आयुवाली, रोगरहित, शीलस्वभावयुक्त, चपलतारहित, लोभरहित, निर्बलतारहित, स्थूलपन से रहित, शुद्धदूधवाली, लम्बे होटों से रहित, लम्बे तथा ऊँचे स्तनों से रहित, अङ्गहीनता से रहित, व्यसनशून्य, जीवित बच्चेवाली, दूध देनेवाली, प्रेम करनेवाली, नीच कर्म से शून्य, अच्छे कुल में पैदा हुई, इससे भी अधिक गुणों से युक्त, श्यामसुन्दरी होनी चाहिए, ताकि बालक की अरोगता तथा बल को बढ़ानेवाली हो॥ ३८॥ जो धायी ऊँचे स्तनोंवाली हो वह बालक को कराल कर देती है और जो लम्बे स्तनोंवाली हो तो बालक के नाक और मुख को ढककर मार देती है॥ ३९॥ फिर अच्छे दिन में धीयी को शिरसमेत स्नान करवाकर अच्छे कपड़े पहनाकर पूर्वाभिमुख बिठाकर उसकी गोद में उत्तराभिमुख बालक को स्थापन करके धायी दक्षिण स्तन को जो धोया हुआ हो और जिसमें से थोड़ा दूध निकाल डाला हो उसे मन्त्र से मन्त्रित करके पिलावे॥ ४०॥

स्वामीजी ने इसी वेदानुकूल प्रमाण के आधार पर अपना लेख लिखा है। इसी बात को सनातनधर्म के ग्रन्थ प्रतिपादित करते हैं, जैसाकि—

(३) **विदारीकन्दस्वरसं मूलं कार्पासजं तथा।**
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी॥ १३॥
कुष्ठा वचाभया ब्राह्मी मधुरा क्षौद्रसर्पिषा।
वर्णायुः कान्तिजननं लेह्यं बालस्य दापयेत्॥ १४॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्॥ १५॥ —गरुड०आचार०अ० १७२

भाषार्थ—धायी के दूध को शुद्ध करने के लिए विदारीकन्द तथा कपास की जड़ के रस को पिलाया जावे॥ १३॥ कुष्ठ, बच, हरड़, ब्राह्मी आदि की चटनी के साथ शहद और घी को मिलाकर चटाने से बालक के रंग, आयु और तेज को बढ़ाती है॥ १४॥ धायी के दूध के अभाव में बकरी या गौ का दूध वैसे गुणों से युक्त बनाकर पिलावे॥ १५॥

(४) इस पद्धति का उल्लेख मनुस्मृति में भी विद्यमान है, जैसाकि—

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः॥ १६८॥
सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्। पुत्रं पुत्रगुणैर्युतं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः॥ १६९॥
माता-पितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा। यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते॥ १७१॥
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात्। स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा॥ १७४॥
—मनु० ९

जिसे पैदा करके किसी निःसन्तान पुरुष को दे देते हैं, वह लेनेवाले का 'दत्तक' पुत्र माना जाता है॥ १६८॥ जिस गुण-दोष में सदृश पुत्र के गुणों से युक्त को जो पुरुष पुत्र बना लेता है वह उस पुरुष का 'कृत्रिम' पुत्र कहाता है॥ १६९॥ जिस पुत्र को माँ-बाप दोनों ने वा एक ही ने त्याग दिया हो उसे लेकर जो पालता है वह उसका 'अपविद्ध' पुत्र होता है॥ १७१॥ जिस

पुत्र को माँ-बाप सन्तानार्थ किसी से मोल लें, वह सदृश हो वा असदृश वह उनका 'क्रीतक' पुत्र कहलाता है॥ १७४॥

ये चारों दत्तक, कृत्रिम, अपविद्ध और क्रीतक पुत्र अपनी जननी माता के दूध से[१] परवरिश नहीं पाते[१], अपितु पुत्र बनानेवाली माता के प्रबन्ध से परवरिश पाते हैं। इनके पालनेवालों को धायी अथवा गौ वा बकरी के दूध का ही प्रबन्ध करना पड़ता है, अतः मनुस्मृति भी स्वामीजी के लेख का अनुमोदन करती है।

(५) राम के पालन-पोषण के लिए भी धायी का प्रबन्ध किया गया था, जैसाकि रामायण में लिखा है—

सा हर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्। अविदूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीं पप्रच्छ मन्थरा॥ ७॥
विदीर्यमाना हर्षेण धात्री तु परया मुदा। आचचक्षेऽथ कुब्जायै भूयसीं राघवे श्रियम्॥ १०॥

—वाल्मी० अयोध्या० स० ७

भाषार्थ—मन्थरा ने पास में खड़ी हुई हर्ष से फूले नयनोंवाली, श्वेत रेशमीवस्त्र पहननेवाली धायी को देखकर पूछा॥ ७॥ हर्ष से विदीर्यमान धायी ने बड़ी प्रसन्नता से कुब्जा को राम का राज्याभिषेक बतलाया॥ १०॥

और भी सुनिए—

(६) **सगरो नाम धर्मात्मा प्रजाकामः स चाप्रजः॥ २॥**
अथ काले गते तस्य ज्येष्ठा पुत्रं व्यजायत। असमञ्ज इति ख्यातं केशिनी सगरात्मजम्॥ १६॥
सुमतिस्तु नरव्याघ्र गर्भतुम्बं व्यजायत्। षष्टिः पुत्रसहस्राणि तुम्बभेदाद्विनिःसृताः॥ १७॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु धात्र्यस्तान्समवर्धयन्। कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे॥ १८॥

—वाल्मी० बाल० स० ३८

धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् पुत्ररक्षणतत्परः॥ ३॥ —वाल्मी० वन० अ० १०७

भाषार्थ—सगर नाम का धर्मात्मा राजा था। उसके सन्तान न थी। उसे सन्तान की इच्छा थी॥ २॥ कुछ समय बीतने पर उसकी बड़ी रानी ने एक पुत्र पैदा किया। रानी का नाम केशिनी तथा पुत्र का नाम असमंज था॥ १६॥ सुमति नाम की दूसरी स्त्री ने अपने गर्भ से तूंबा पैदा किया। उस तूंबे के फोड़ने से ६० हजार पुत्र निकले॥ १७॥ घी के भरे हुए घड़ों में धायियों ने उनका पालन-पोषण किया, कुछ समय के पश्चात् वे सब जवान हो गये॥ १८॥ एक-एक के लिए राजा ने एक-एक धायी पुत्र-रक्षा के लिए नियत की॥ ३॥

(७) आपके ख़याल के अनुसार जब सीता खेत में से मिली तो उसका पालन-पोषण भी धायी अथवा गौ वा बकरी के दूध से ही किया होगा, जैसाकि—

क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता। भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा॥

—वाल्मी० बाल० स० ६६। १४

भाषार्थ—जनक ने कहा कि खेत का शोधन करते हुए सीता के नाम से प्रसिद्ध कन्या मुझे प्राप्त हुई। पृथिवी से निकली हुई मेरी पुत्री वृद्धि को प्राप्त हुई॥ १४॥

(८) महाभारत में भी इसकी पुष्टि विद्यमान है, जैसाकि—

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेवपिताभवत्। तस्या कन्या पृथा नाम रूपेणासदृशी भुवि॥ १२७॥
पितुः स्वस्त्रीयपुत्राय सोऽनपत्याय वीर्यवान्। अग्र्यमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यस्य वै तदा॥ १२८॥

---

१. पालित नहीं होते।

अग्रजातेति तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षया। अददात् कुन्तिभोजाय स तां दुहितरं तदा॥ १२९॥

—महा० आदि० अ० ६७

भाषार्थ—वसुदेव का पिता शूर नामवाला यादवों में श्रेष्ठ था। उसकी कन्या का नाम पृथा था जो अति ही सुन्दरी थी॥ १२७॥ उस बलवान् शूर ने निःसन्तान अपनी बुआ के पुत्र कुन्तिभोज के लिए अपनी पहली सन्तान देने की प्रतिज्ञा करके॥ १२८॥ प्रथम पैदा हुई उस कन्या को कृपापूर्वक कुन्तिभोज को दे दिया॥ १२९॥

कुन्तिभोज ने उसका पालन-पोषण धायी अथवा गौ वा बकरी के दूध से ही किया होगा।

(९) **प्रकाशकर्ता भगवांस्तस्यां गर्भं दधौ तदा। अजीजनत्सुतं चास्यां सर्वशस्त्रभृतां वरम्॥ १३५॥**
निगूहमाना जातं वै बन्धुपक्षभयात्तदा। उत्ससर्ज जले कुन्ती तं कुमारं यशस्विनम्॥ १३७॥
तमुत्सृष्टं जले गर्भं राधाभर्ता महायशाः। राधायाः कल्पयामास पुत्रं सोऽधिरथस्तदा॥ १३८॥

—महा० आदि० अ० ६७

भाषार्थ—उस कुन्ती में प्रकाश करनेवाले भगवान् सूर्य ने गर्भ धारण किया। उसमें सर्वशस्त्रधारियों में उत्तम पुत्र पैदा हुआ॥ १३५॥ बन्धुपक्ष के भय से कुन्ती ने उस पैदा हुए बालक को छिपाकर जल में छोड़ दिया॥ १३७॥ उस जल में छोड़े हुए गर्भ को राधा के पति अधिरथ ने राधा के लिए पुत्र कल्पित कर दिया॥ १३८॥

कहिए महाराज! राधा ने कर्ण का पालन-पोषण कैसे किया?

(१०) **ततो मामाह स मुनिर्गर्भमुत्सृज्य मामकम्।**
द्वीपेऽस्या एव सरितः कन्यैव त्वं भविष्यसि॥ ११॥
पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः। कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः॥ १२॥

[गीता० सं० में अ० १०४। १३-१४।—सं०]—महा० आदि० अ० १०५

भाषार्थ—सत्यवती ने कहा कि तब वह मुनि पराशर मुझसे बोले कि यह मेरा गर्भ इस नदी के द्वीप में ही छोड़ दे, तू कन्या ही हो जावेगी॥ ११॥ वह पराशर का पुत्र महान् ऋषि तथा महायोगी बना। वह मुझ कन्या का पुत्र था और द्वैपायन नाम से प्रसिद्ध हुआ॥ १२॥

कहिए श्रीमान्जी! पराशर ने व्यास का पालन-पोषण किस ढङ्ग से किया था?

(११) ऋष्यशृङ्ग मृगी से, कौशिक कुशा से, जाम्बुक गीदड़ से, वाल्मीक बांबी से, गौतम खरगोश की पीठ से, अगस्त्य घड़े से पैदा हुए (वज्रसूची उपनिषत्)। कणाद उलूकी से, माण्डव्य मण्डूकी से, शुक शुकी से पैदा हुए (भवि० १ ब्राह्मपर्व अ० ४२)। सत्यवती तथा मत्स्यराज मछली से, द्रोणाचार्य कलश से, शरस्तम्ब से कृपा-कृपी, कृष्णा तथा धृष्टद्युम्न यज्ञ की वेदी से पैदा हुए (महा० आदि० अ० ६३)।

सनातनधर्म के विचार से इन समस्त बालकों का पालन-पोषण कैसे किया गया था? निश्चित ही धायी अथवा गौ, बकरी आदि के दूध से किया गया मानना पड़ेगा।

(१२) कृष्ण ने एक भी दिन देवकी का दूध नहीं पीया, अपितु कृष्ण ने यशोधा के दूध से परवरिश पायी थी। हालाँकि देवकी क्षत्रिया तथा यशोदा वैश्या थी।

(१३) विश्वामित्र ने मेनका से व्यभिचार किया। मेनका के गर्भ से शकुन्तला पैदा हुी। मेनका तथा विश्वामित्र दोनों उसे जंगल में छोड़कर चले गये। तब कण्वमुनि ने उसका पालन-पोषण किया (महा० आदि० अ० ७२)। बतलाइए, उसका पालन-पोषण बिना धायी वा दूध के कैसे हुआ?

(१४) चन्द्रमा ने गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा से व्यभिचार किया। तारा ने बुध नामक पुत्र

पैदा किया और पैदा करते ही छोड़कर चली गई (भविष्य० उत्तर० अ० ९९)। तो बतलाइए, चन्द्रमा ने बुध का पालन-पोषण बिना धायी वा दूध के कैसे किया?

(१५) माधवी ने चार वर्ष में चार पतियों के लिए चार पुत्र पैदा किये और पुत्रों को उन्हें देकर वन में चली गई (महा० उद्योग० अ० १०५ से १२१)। उन चारों का पालन-पोषण बिना धायी अथवा गौ, बकरी के दूध के कैसे हुआ?

(१६) राजा सृञ्जय ने अपने पुत्र के पालनार्थ धायी रक्खी थी, जैसाकि—

ततो भागीरथीतीरे कदाचिन्निर्जने वने। धात्रीद्वितीयो बालः स क्रीडार्थं पर्यधावत॥ ३१॥

—महा० शान्ति० अ० ३१

तब कभी निर्जन वन में भागीरथी के तीर पर वह बालक धायी को साथ में लेकर खेलने के लिए दौड़ने लगा॥ ३१॥

(१७) पञ्चशिख का पालन-पोषण गुरु की स्त्री कपिला ने किया, जिससे उसका नाम कापिलेय हुआ, जैसेकि—

आसुरिर्मण्डले तस्मिन् प्रतिपेदे तदव्ययम् ॥ १३॥
तस्य पञ्चशिखः शिष्यो मानुष्या पयसा भृतः ।
ब्राह्मणी कपिला नाम काचिदासीत् कुटुम्बिनी ॥ १४॥
तस्या पुत्रत्वमागम्य स्त्रियाः स पिबति स्तनौ ।
ततः स कापिलेयत्वं लेभे बुद्धिं च नैष्ठिकीम् ॥ १५॥ —महा० शान्ति० अ० २१८

उस मण्डल में आसुरिजी आये॥ १३॥ उसका शिष्य पञ्चशिखा था जो स्त्री के दूध से पला था। कपिला नाम की कोई ब्राह्मणी उसकी पत्नी थी॥ १४॥ उस स्त्री का पुत्र बनकर उस स्त्री के दोनों स्तनों का दूध पीता था। उससे वह कपिल के पुत्रत्व तथा नैष्ठिकी बुद्धि को प्राप्त हुआ॥ १६॥

इत्यादि-इत्यादि अनेक लेख सनातनधर्म के ग्रन्थों में मौजूद हैं, जिनसे माता के अभाव में तथा माताजी की मौजूदगी में भी बच्चे को धायी के दूध तथा गौ वा बकरी आदि के दूध से पालना सिद्ध होता है। इतने प्रमाणों की विद्यमानता में सनातनधर्म का स्वामीजी के लेख पर आपत्ति करना यदि ढीठपन नहीं तो और क्या है? आप तो केवल धायी से ही घबरा रहे हैं, सनातनधर्म में तो बड़ी-बड़ी आश्चर्यजनक तथा वेदविरुद्ध घटनाएँ विद्यमान हैं, जैसेकि—

(१८) ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ २६॥
वामपार्श्वं विनिर्भिद्य सुतः सूर्य इव स्थितः ।
निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत् ॥ २७॥
युवनाश्वं नरपतिं तदभुतमिवाभवत् ॥ २८॥
प्रदेशिनीं ततोऽस्यास्ये शक्रः समभिसन्दधे ॥ २९॥

मामयं धास्यतीत्येवं भाषिते चैव वज्रिना। मान्धातेति च नामास्य चक्रुः सेन्द्रा दिवौकसः॥ ३०॥
प्रदेशिनीं शक्रदत्तामास्वाद्य स शिशुस्तदा। अवर्द्धत महातेजाः किष्कून् राजंस्त्रयोदश॥ ३१॥

—महा० वन० अ० १२६

भाषार्थ—तब सौ वर्ष पूरे होने पर उस महात्मा राजा युवनाश्व की॥ २६॥ बाईं कोख को फोड़कर सूर्य के समान पुत्र पैदा हुआ। वह महातेजस्वी पुत्र निकल आया, परन्तु उस युवनाश्व राजा को मृत्यु प्राप्त नहीं हुई यह आश्चर्य ही हुआ॥ २७-२८॥ तब उस बालक के मुख में इन्द्र ने अपनी अंगुली दे दी॥ २९॥ 'यह मुझको चूसेगा', इन्द्र के ऐसा कहने पर देवताओं ने उस

बालक का नाम मान्धता रख दिया॥ ३०॥ इन्द्र से दी हुई उस अंगुली को चूसते हुए वह महातेजस्वी बालक दश बालिश्त बढ़ गया॥ ३१॥

यह पुरुष के गर्भ होना, उसके पेट से बालक का पैदा होना तथा इन्द्र की अंगुली को चूसकर बालक का बढ़ना सर्वथा ही वेद के विरुद्ध है, क्योंकि वेद कहता है कि—

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते। तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत्॥ २॥

—अथर्व० कां० ६ सू० ११

पहले वीर्य मनुष्य में ही होता है। वह पीछे से स्त्री में सींच दिया जाता है। वह ही सन्तान की प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसा प्रजापति परमात्मा ने कहा है॥ २॥

क्या कोई ऐसा पुंमैथुनप्रिय सनातनधर्मी भूतल पर मौजूद है जो उपर्युक्त वेदविरुद्ध घटना को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आये?

(१९) तस्मिन्नवसरे तत्र कृत्तिकाख्याश्च षट् स्त्रियः। स्नातुं समागता बालं ददृशुस्तं महाप्रभुम्॥ २९॥
ग्रहीतुं तं मनश्चक्रुः सर्वास्ताः कृत्तिकाः स्त्रियः। वादो बभूव तासां तद् ग्रहणेच्छापरो मुने॥ ३०॥
तद्वादशमनार्थं स षण्मुखानि चकार ह। पपौ दुग्धं च सर्वासां तुष्टास्ता अभवन्मुने॥ ३१॥

—शिव० रुद्र० कुमार० अ० ३

षट् शिरा द्विगुणश्रोत्रो द्वादशाक्षिभुजक्रमः। एकग्रीवैकजठरः कुमारः समपद्यत॥ १७॥

—महा० वन० अ० २२४

भाषार्थ—उस समय वहाँ पर कृत्तिका नाम की छह स्त्रियाँ स्नान करने को आईं और उस महातेजस्वी बालक को देखा॥ २९॥ उन कृत्तिका नाम की सब स्त्रियों ने उसके ग्रहण करने की मन में इच्छा की। इसके ग्रहण की इच्छा के बारे में उनका विवाद हो गया॥ ३०॥ उनका विवाद शान्त करने के लिए उस बालक ने अपने छह मुख बना लिये और सबका दूध पीने लगा। वे सब प्रसन्न हो गईं॥ ३१॥ छह सिरवाला, बारह कानोंवाला, बारह नेत्रोंवाला, बारह भुजावाला, एकगर्दन और एक पेटवाला, कुमार पैदा हुआ॥ १७॥

इस प्रकार के बालक की पैदाइश वेद विरुद्ध है, क्योंकि "**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**" इत्यादि मन्त्र से स्पष्ट है कि पुरुष के एक मुख, दो हाथ, दो नेत्र, दो कान ही सृष्टिक्रम के अनुकूल हैं। क्या कोई पौराणिक ज्ञानी इस बालक की बनावट को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ है?

(२०) यथासमयमाज्ञाय तदा स नृपसत्तमः। द्वाभ्यामेकं फलं प्रादात् पत्नीभ्यां भरतर्षभ॥ ३३॥
ते तदाम्रं द्विधा कृत्वा भक्षयामासतुः शुभे। भावित्वादपि चार्थस्य सत्यवाक्यतया मुनेः॥ ३४॥
तयोः समभवद् गर्भः फलप्राशनसम्भवः। ते च दृष्ट्वा स नृपतिः परां मुदमवाप ह॥ ३५॥
अथ कले महाप्राज्ञ यथासमयमागते। प्रजायेतामुभे राजन् शरीरशकले तदा॥ ३६॥
एकाक्षिबाहुचरणे अर्द्धोदरमुखस्फिचे। दृष्ट्वा शरीरशकले प्रवेपतुरुभे भृशम्॥ ३७॥
उद्विग्ने सह सन्मन्त्र्य ते भगिन्यौ तदाबले। सजीवे प्राणिशकले तत्यजाते सुदुःखिते॥ ३८॥
तयोर्धात्र्यौ सुसंवीते ते कृत्वा गर्भसंप्लवे। निर्गम्यान्तःपुरद्वारात् समुत्सृज्याभिजग्मतुः॥ ३९॥
ते चतुष्पथनिक्षिप्ते जरा नामाथ राक्षसी। जग्राह मनुजव्याघ्र मांसशोणितभोजना॥ ४०॥
कर्त्तुकामा सुखवहे शकले सा तु राक्षसी। संयोजयामास तदा विधानबलचोदिता॥ ४१॥
ते समानीतमात्रे तु शकले पुरुषर्षभ। एकमूर्तिधरो वीरः कुमारः समपद्यत॥ ४२॥

—महा० सभा० अ० १७

तस्य नामाकरोच्चैव पितामहसमः पिता। जरया सन्धितो यस्माज्जरासंधो भवत्वयम्॥ ११॥

—महा० सभा० अ० १८

भाषार्थ—तब राजा बृहद्रथ ने समय की अनुकूलता जानकर अपनी दोनों पत्नियों को एक फल दे दिया॥ ३३॥ उन दोनों सुन्दरियों ने उस आम के दो भाग करके आधा-आधा खा लिया, क्योंकि भावि ऐसी थी और मुनि का वाक् सत्य होना था॥ ३४॥ फल के खाने के कारण उन दोनों के गर्भ हो गया। उन दोनों को गर्भवती देखकर राजा अति प्रसन्न हुआ॥ ३५॥ उसके बाद समय के प्राप्त होने पर उन दोनों ने शरीर के दो टुकड़े पैदा किये॥ ३६॥ एक आँख, एक हाथ, एक पैर, आधा पेट, आधा मुख, आधे गुर्दे, शरीर के इस प्रकार दो टुकड़े देखकर दोनों रानियाँ काँपने लगीं॥ ३७॥ ये दोनों दुःखित हुईं। आपस में परामर्श करके दोनों अबला बहिनों ने प्राण रखनेवाले उन दोनों शरीर के टुकड़ों को त्याग दिया॥ ३८॥ उन दोनों की धायियाँ उन दोनों टुकड़ों को ढककर महल से बाहर फेंककर चली गईं॥ ३९॥ उनके चौरस्ते पर फेंके जाने पर जरा नाम की मांस-खून भोजन करनेवाली राक्षसी ने उनको ग्रहण कर लिया॥ ४०॥ उन सुखी करनेवाले दोनों टुकड़ों को राक्षसी ने चीरने की कामना करते हुए विधि के बल से प्रेरित होकर आपस में जोड़ दिया॥ ४१॥ वे दोनों टुकड़े समीप लानेमात्र से ही एक मूर्त्ति धारण करनेवाला कुमार बन गया॥ ४२॥ ब्रह्मा के समान उसके पति ने उसका नामकरण किया, चूँकि जरा ने इसकी सन्धि की है, इसलिए इसका नाम जरासन्ध हो गया॥ ११॥

यह सम्पूर्ण कथा सृष्टिक्रम तथा वेद के विरुद्ध है, क्योंकि वेद कहता है—

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि॥

—ऋ० ५।७८।९

हे परमात्मन्! दश महीने तक माता के उदर में सोनेवाला सुकुमार जीव प्राण धारण करता हुआ जीती हुई अपनी माता से बिना किसी ज़ख़्म के बाहर निकले॥ ९॥

यह मन्त्र एक माता से ही एक पुत्र उत्पत्ति वर्णन करता है, अतः दो माताओं से पुत्र का पैदा होना सर्वथा वेदविरुद्ध है। क्या कोई पौराणिक डाक्टरी में निपुण जीता-जागता पौराणिक पण्डित भूगोल में मौजूद है जो दो माताओं के पेट से एक बालक का पैदा होना सिद्ध कर सके?

(५५३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४ में लिखा है कि—

''**प्रश्न**—जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जावे तो उसके माँ-बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जावेगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए।

उत्तर—न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे।'' लड़कों का यह परिवर्तन बिल्कुल वेदविरुद्ध है। इस बारे में जो आर्यसमाज के पण्डितों की तरफ़ से यह तर्क पेश किया जाता है कि **'अहं राष्ट्री संगमनी'** [अथर्व० ४।३०।२] इस मन्त्र में राजसभा खुद कहती है कि मैं जिसको जैसा चाहती हूँ वैसा बना देती हूँ। यहाँ आर्यसमाज के पण्डित धोखा देते हैं। इस सारे सूक्त का देवता 'वागाम्भरणी शक्ति दुर्गा' है। फिर यहाँ राजसभा कहाँ से कूद बैठी? इन मन्त्रों में पुत्र-परिवर्तन की आज्ञा नहीं है। —पृ० ८३, पं० २२

उत्तर—स्वामीजी का उपर्युक्त लेख क़तई तौर से वेद के अनुकूल है, क्योंकि **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** इस मन्त्र द्वारा परमात्मा ने मानव-समाज को मनुष्य के शरीर के साथ उपमा देकर हमको यह शिक्षा दी है कि हे मनुष्यो! तुम कर्मों के अनुसार चार वर्णों में विभक्त होते हुए भी आपस में ऐसे प्रेम के साथ संगठित रहो जैसे शरीर के चारों हिस्से आपस में प्रीति के साथ रहते हैं। जैसे सारा शरीर विविध प्रकार की वस्तुओं को बनाने में लगा रहता है और बनने पर जो वस्तु जिस अंग के लिए आवश्यक होती है उसी को दे देता है और सारा ही शरीर सम्मिलित रूप से अपनी सम्पत्ति का अपने को मालिक समझता है वैसे ही हे इनसानो! देश की सारी सम्पत्ति

को चारों वर्ण सम्मिलित रूप से अपनी समझो और देश की सारी सन्तान को राष्ट्रीय सम्पत्ति समझकर उसको सुयोग्य बनाने का यत्न करो और नौजवान होने पर जो सन्तान जिसकी सेवा करने के योग्य हो वह उसके अर्पण कर दो। जब इस मन्त्र के अनुसार सारे देश की सन्तान ही सारे राष्ट्र की सम्पत्ति है तो फिर परिवर्तन में किसी प्रकार की आपत्ति ही नहीं है। रहा प्रबन्ध का प्रश्न, सो वह राजसभा तथा विद्वत्सभा करेगी, जैसाकि वेद में आता है—

(२) **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।**
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥ २ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ३ ॥ —अथर्व० ४।३०

राजसभा, विद्यासभा तथा धर्मसभा कहती है कि मैं राष्ट्र के प्रबन्ध को चलानेवाली हूँ। मैं वसु, रुद्र तथा आदित्य ब्रह्मचारियों की गृहस्थ में जाने से पूर्व व्यवस्था करनेवाली हूँ। सब-के-सब विद्वान् लोग मिलकर मुझको दृढ़तापूर्वक प्रथम ही स्थापित करें॥ २॥

मैं स्वयं इस बात को कहती हूँ कि मैं देवों तथा मनुष्यों का सेवन करती हूँ। मैं जिस-जिसको चाहती हूँ उस-उसको तेजोमय क्षत्रिय बनाती हूँ और जिस-जिसको चाहती हूँ उस-उसको ब्राह्मण, ऋषि और सुमेधा बनाती हूँ॥ ३॥

इस सारे सूक्त में यही वर्णन है कि विद्यासभा, राजसभा और धर्मसभा सब मनुष्यों की कर्मानुसार वर्णव्यवस्था करती हैं। इस सूक्त का देवता अर्थात् प्रतिपाद्यविषय ''वागाम्भृणी'' है जिसके अर्थ हैं वेदवाणी को धारणा करनेवाली सभा, अतः मन्त्र में पड़ा हुआ **''राष्ट्री संगमनी''** पद हमारे अर्थ की पुष्टि करता है। यहाँ शक्ति और दुर्गा का चिह्न भी नहीं है, क्योंकि पौराणिक दुर्गा का स्वरूप निम्न प्रकार का है—

कंसविद्रावणकरी, असुराणां क्षयंकरी, शिलातटविनिक्षिप्ता, आकाशं प्रतिगामिनी ॥ ३ ॥ वासुदेवस्य भगिनी, खड्गखेटकधारिणी ॥ ४ ॥ वरदा, कृष्णा, कुमारी, ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥ चतुर्भुजा, चतुर्वक्त्रा, पीनश्रोणिपयोधरा ॥ ८ ॥ —महा० विराट० अ० ६

इत्यादि-इत्यादि दुर्गा के अनेक विलक्षण गुण वर्णन किये गये हैं जिनमें से इस सूक्त में एक भी दिखाई नहीं देता। इससे सिद्ध हुआ कि इस सूक्त में पौराणिक दुर्गा का वर्णन नहीं है अपितु राष्ट्र की प्रबन्धकर्त्री राजसभा, धर्मसभा, तथा विद्यासभा का ही वर्णन है और वर्णाश्रम की व्यवस्था उसका कर्त्तव्य है, जैसाकि—

(३) **त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥**
—ऋ० मं० ३ सू० ३८ मं० ६

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः। त्र्यश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ १११ ॥ ऋग्वेद्विद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च। त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ११२ ॥
—मनु० १२

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥ १४८ ॥
—मनु० २

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ। वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २४ ॥
—मनु० ८

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः। वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षति ॥ ३५ ॥
—मनु० ७

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्। कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥ १५२॥

—मनु० ७

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम्॥ १९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्॥ २०॥ —महा० अनु० अ० १०४

सम्यग्वेदान् प्राप्य शास्त्राण्यधीत्य सम्यग्राज्यं पालयित्वा च राजा।
चातुर्वर्ण्यं स्थापयित्वा स्वधर्मे पूतात्मा वै मोदते देवलोके॥ ३५॥ —महा०शान्ति०अ० २५

प्राप्य राज्यं महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं स्वे स्वे स्थाने न्यवेशयत्॥ ४॥

—महा० शान्ति० अ० ४५

चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता। धर्मसंकररक्षा च राज्ञां धर्मः सनातनः॥ १५॥

—महा० शान्ति० अ० ५७

विकर्मस्थाश्च नोपेक्ष्या विप्रा राज्ञा कथञ्चन। नियम्याः संविभज्याश्च धर्मानुग्रहकारणात्॥ ११॥

—महा० शान्ति० अ० ७६

पूजयेद्धार्मिकान् राजा निगृह्णीयादधार्मिकान्। नियुञ्ज्याच्च प्रयत्नेन सर्ववर्णान् स्वकर्मसु॥ १८॥

—महा० शान्ति० अ० ८६

अभिरूपैः कुले जातैर्दक्षैर्भक्तैर्बहुश्रुतैः। सर्वा बुद्धीः परीक्षेथास्तापसाश्रमिणामपि॥ ५०॥

—महा० शान्ति० अ० १

इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध है कि राजा ही विद्यासभा, धर्मसभा तथा राजसभा द्वारा कर्मानुसार वर्णों तथा आश्रमों की व्यवस्था करनेवाला है।

(४) सन्तान के तबादले की आज्ञा वेदों में अनेक प्रकार से विद्यमान हैं। विवाह में लड़कियाँ पिता के घर से पति के घर में तब्दील होती हैं, जैसेकि—

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः। अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा॥

—अथर्व० १४।२।५२

ये कामना करती हुई शोभावती कन्याएँ पितृकुल से पतिकुल को जाती हुई सुन्दर वाणी से नियमव्रत को धारण करें॥ ५२॥

इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या मनुजी करते हैं कि—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ५॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥ १३॥

—मनु० ३

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि। तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा॥ २२॥

—मनु० ९

माताकी सपिण्ड न हो तथा पिता की सपिण्ड और सगोत्र न हो ऐसी कन्या द्विजातियों के लिए पत्नी बनाने को योग्य है॥ ५॥ शूद्र की पत्नी शूद्रा ही होती है, वैश्य की शूद्रा तथा वैश्या भी पत्नी हो सकती हैं। क्षत्रिय की शूद्रा, वैश्या तथा क्षत्रिया पत्नी बन सकती हैं और ब्राह्मण की शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया तथा ब्राह्मणी पत्नी बन सकती हैं॥ १३॥ जिस प्रकार के गुणोंवाले पति से स्त्री विधिपूर्वक मिल जाती है, उसी प्रकार के गुणोंवाली वह हो जाती है, जैसे समुद्र में मिलकर नदियाँ समुद्ररूप हो जाती हैं॥ २२॥

(५) और कभी-कभी पति की पत्नी के घर में तब्दीली होती है जैसेकि जब लड़की के

बाप के यहाँ पुत्र न हो तो वह पुत्री को ही पुत्रिका बना लेता है और उसका पति कन्या के बाप के घर तब्दील हो जाता है। उस कन्या से जो लड़का होता है वह कन्या के बाप का पौत्र ही माना जाता है, जैसेकि—

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे॥

—ऋ० मं० ३ सू० ३१ मं० १

धारण करनेवाला पुत्री को सन्तानकर्म में पुत्र प्रसिद्ध करता है और दोहते को पोता स्वीकार करता है। सन्तान पैदा करने के विधान की पूजा करता हुआ प्रजनन यज्ञ को जानता है।

—निरु० अ० ३ खं० ४

पिता जिस समय कन्या के दान से पहले जँवाई के साथ प्रतिज्ञा बाँधता है कि इसमें जो पुत्र होगा वह मेरा होगा। इस प्रकार मन के सन्ताप को दूर करता है।

—निरु० अ० ३ खं० ५

इसकी व्याख्या मनु ने इस प्रकार की है—

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्। यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्॥ १२७॥
अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिका। विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः॥ १२८॥
यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्॥ १३०॥
पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः। तयोर्हि मातापितरौ सम्भूतौ तस्य देहतः॥ १३३॥

—मनु० ९

पुत्रहीन मनुष्य इस विधि से अपनी पुत्री को पुत्रिका बना लेवे कि जो इसमें पुत्र पैदा हो वह मुझे अन्न-जल प्रदान करनेवाला हो॥ १२७॥ इस विधान से पूर्व समय में स्वयं दक्ष प्रजापति ने अपने वंश की वृद्धि के लिए पुत्रिका बनाई थी॥ १२८॥ जैसा आत्मा वैसा पुत्र और पुत्र के समान पुत्री। उस आत्मा की विद्यमानता में अन्य कैसे धन ले-जा सकता है॥ १३०॥ संसार में पोते और दोहते में धर्म से कोई फ़र्क नहीं है, क्योंकि उन दोनों के पिता और माता उसकी देह से ही पैदा हुए हैं॥ १३३॥

(६) इसके अतिरिक्त अन्य के पुत्रों को भी अपनी अनुकूलता से पुत्र बनाया जाता है और उनका भी उत्पन्नकर्त्ता के घर से ग्रहणकर्त्ता के घर में परिवर्तन हो जाता है, जैसाकि वेद में लिखा है—

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः॥ —ऋ० ७।४।८

भाषार्थ—हे मनुष्य! जो (**अरण्यः**) प्रसन्न न करता हुआ (**सुशेवः**) सुन्दर सुख से युक्त (**अन्योदर्यः**) दूसरे उदर से पैदा हुआ हो (**सः**) वह (**मनसा**) अन्तःकरण से (**ग्रभाय**) ग्रहण के लिए (**नहि**) नहीं (**मन्तवै**) मानने योग्य है (**चित् उ पुनः इत्**) और फिर वही (**ओकः**) घर को (**नहि**) नहीं (**एति**) प्राप्त होता (**अध**) इसके पीछे जो (**नव्यः**) नया (**अभीषाड्**) अच्छा सहनशील (**वाजी**) विज्ञानवाला (**नः**) हमको (**आ, एतु**) प्राप्त हो।

अभिप्राय—जो दूसरे पेट से पैदा हुआ बालक स्वयं चाहे सुखी हो, किन्तु यदि वह हमको प्रसन्न करनेवाला नहीं है, अर्थात् उसके गुण-कर्म-स्वभाव हम से नहीं मिलते तो ऐसे बालक को मन से भी ग्रहण करने के योग्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह घर का मालिक नहीं बन सकता। बालक जो नया नौजवान अच्छा सहनशील, अर्थात् हमारे गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार विज्ञानवाला

हो वह हमको प्राप्त करना चाहिए। सारांश यह कि जो गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल हो वह पुत्र बनाना चाहिए जो हमारे गुण-कर्म-स्वभाव के विरुद्ध हो उसको पुत्र नहीं बनाना चाहिए।

इसी मन्त्र की व्याख्या मनुजी करते हैं—

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च। गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट्॥ १५९॥
कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा। स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः॥ १६०॥
माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्त्रिमः सुतः॥ १६८॥
सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्। पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः॥ १६९॥
मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा। यं पुत्र परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते॥ १७१॥
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात्। स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा॥ १७४॥
मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्। आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः॥ १७७॥
क्षेत्रजादीन् सुतानेतानेकादश यथोदितान्। पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः॥ १८०॥

—मनु० ९

यहाँ पर एक औरस पुत्र को छोड़कर शेष ग्यारह में ही सन्तान-परिवर्तन का सिद्धान्त विद्यमान है।

स्वपत्नीप्रभवान् पंच लब्धान् क्रीतान् विवर्धितान्। कृतानन्यासु चोत्पन्नान् पुत्रान् वै मनुरब्रवीत्॥ ९८॥

—महा० आदि० अ० ७४

भाषार्थ—लब्धक, क्रीतक, विवर्धित, कृतक तथा अन्य स्त्री में पैदा किये हुए पुत्र अपनी पत्नी में पैदा हुए ही माने जाते हैं।

महाभारत तथा रामायण में भी सन्तान-परिवर्तन का वर्णन विद्यमान है, जैसाकि—

(७) **स्थापयित्वा प्रजापालं पुत्रं राज्ये च पाण्डव।**
अन्यगोत्रं प्रशस्तं वा क्षत्रियं क्षत्रियर्षभ॥ १९॥ —महा० शान्ति० अ० ६३

भाषार्थ—हे पाण्डव! प्रजा के पालन करनेवाले पुत्र को राज्य में स्थापित करके अथवा हे श्रेष्ठ क्षत्रिय! किसी अन्य गोत्र में पैदा हुए श्रेष्ठ क्षत्रिय को राज्य में स्थापित करके वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे॥ १९॥

(८) **विश्वामित्रस्य पुत्रत्वमृचीकतनयोऽगमत्।**
ऋग्भिः स्तुत्वा महाबाहो देवान् वै यज्ञभागिनः॥ १३॥ —महा० शान्ति० अ० ६३
निःसाध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम्। अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम्॥ १६॥
श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु। पूर्णवर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ॥ १७॥

—वाल्मी० बाल० स० ६२

भाषार्थ—ऋचीक का पुत्र शुनःशेप विश्वामित्र का पुत्र बन गया। यज्ञ के अधिकारी देवताओं की ऋचाओं से स्तुति करके॥ १३॥ विश्वामित्र ने कहा कि मधुछन्दादि पुत्रो! तुम सबने मेरे वचन का अनादर करके धर्म से निन्दित, कठोर, रोमांच करनेवाला, पापमय वचन कहा है॥ १६॥ इसलिए तुम सब सहस्र वर्ष तक कुत्ते के मांस का भोजन करते हुए जाति में वासिष्ठों की भाँति पृथिवी पर निवास करोगे॥ १७॥

यहाँ पर विश्वामित्र ने ऋचीक के पुत्र शुनःशेप को तो धर्मात्मा समझकर अपना पुत्र बना लिया और मधुछन्दादि अपने पुत्रों को पापाचारी होने के कारण घर से निकाल दिया।

(९) सूर्य का पुत्र कर्ण अधिरथ सूत का पुत्र बनकर रहा।

(१०) शूर की पुत्री कुन्ती राजा कुन्तिभोज की पुत्र बनी।

(११) वसुदेव का पुत्र कृष्ण वृन्दावन में नन्द का पुत्र बनकर रहा।

(१२) नन्द की पुत्री एकानंशा मथुरा में वसुदेव की पुत्री बनकर रही।

(१३) आपके मतानुसार राजा उपरिचर की पुत्री सत्यवती मल्लाह की पुत्री बनकर रही।

(१४) विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला कण्वमुनि की पुत्री बनकर रही।

(१५) बृहस्पतिपुत्र भारद्वाज राजा भरत का पुत्र बनकर राजवंश का चलानेवाला बना।

—भाग० स्क० ९ अ० २०

(१६) धनपाल वैश्य का पुत्र कबीर अली नामक जुलाहे का पुत्र बनकर रहा।

—भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १७ श० ३७

(१७) अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन को उसके नाना ने पुत्र बनाकर रक्खा।

—भाग० स्कं० ९ अ० २२

इत्यादि अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जो सन्तान-परिवर्तन को सिद्ध करते हैं, अतः स्वामी दयानन्दजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। हाँ, पौराणिक ग्रन्थों में इस प्रकार के परिवर्तन भरे पड़े हैं कि जो वेद तथा सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं, जैसाकि—

(१८) उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ॥ ८ ॥ —वाल्मी० बाल० स० ४९

(१९) राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु ॥ १४ ॥

—रा० महा० अ० १ [अनुपलब्ध]

(२०) प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ॥ ४९ ॥
तच्छिरश्च तदा नीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् ॥ ५० ॥

—शिव० रुद्र० कुमार० अ० १७

(२१) अथ प्रजापतेस्तस्य सवनीयपशोः शिरः ।
बस्तस्य सन्दधुश्शम्भोः कायेनारं सुशासनात् ॥ २६ ॥

—शिव० रुद्र० सती० अ० ४२

(२२) अहं हि किन्दमो नाम तपसा भावितो मुनिः ।
व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्यां मैथुनमाचरम् ॥ २८ ॥
मृगो भूत्वा मृगैः सार्द्धं चरामि गहने वने ॥ २९ ॥

—महा० आदि० अ० ११८

(२३) एवमुक्त्वा ययातिस्तु स्मृत्वा काव्यं महतपाः ।
संक्रामयामास जरां तदा पूरौ महात्मनि ॥ ३४ ॥ —महा० आदि० अ० ८४

(२४) मासं स स्त्री तदा भूत्वा रमयत्यनिशं सदा ।
मांस पुरुषभावेन धर्मबुद्धिं चकार सः ॥ २२ ॥ —वाल्मी०उत्तर०अ० ८९

(२५) भर्त्रा य एष दत्तस्ते चरुर्मन्त्रपुरस्कृतः ।
एनं प्रयच्छ मह्यं त्वं मदीयं त्वं गृहाण च ॥ ३१ ॥
तथा च कृतवत्यौ ते माता सत्यवती च सा ॥ ३५ ॥ —महा०अनु० अ० ४

(२६) गवां शतसहस्रेण शुनःशेपं नरेश्वरः। गृहीत्वा परमप्रीतो जगाम रघुनन्दन ॥ २३ ॥

—वाल्मी० बाल० स० ६१

(२७) देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया।

रोहिणी जठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च॥ ३७॥ —ब्रह्मवैवर्त०खं० ४ अ० ७

(१८) इन्द्र के अण्डकोशों के स्थान में मेंढे के अण्डकोशों का परिवर्तन (१९) राक्षसों का ब्राह्मण के रूप में परिवर्तन (२०) गणेश के सिर का हाथी के सिर से परिवर्तन (२१) अज के सिर का बकरे के सिर से परिवर्तन (२२) किंदम का मृग के शरीर से परिवर्तन (२३) ययाति के बुढ़ापे का पूरु के यौवन से परिवर्तन (२४) एक मास स्त्री का एक मास पुरुष के शरीर से परिवर्तन (२५) सत्यवती तथा उसकी माता का चरु परिवर्तन (२६) गौवों के बदले शुन:शेप का परिवर्तन (२७) देवकी के गर्भ का रोहिणी में परिवर्तन, इत्यादि अनेक परिवर्तन सनातनधर्म में विद्यमान हैं जोकि बुद्धि तथा वेद के विरुद्ध हैं। वेद ने **"भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्"** इत्यादि गायत्रीमन्त्र द्वारा बुद्धि को श्रेष्ठ बतलाया है। क्या कोई जन्माभिमानी पौराणिक पोप संसार में विद्यमान है जो उपर्युक्त परिवर्तनों को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५५४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४ पृ० ९० पं० ३ में लिखा है कि "जब एक वर्ष या छह महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहे तब उन कन्याओं और कुमारों का प्रतिबिम्ब, अर्थात् जिसको फोटोग्राफ़ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतारके कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस-जिसका रूप मिल जाए उस-उसके इतिहास, अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिनपर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मँगवा के देखें। जब दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव सदृश हों तब जिस-जिसका विवाह होना योग्य समझें उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें।"

चारों वेद में से एक भी मन्त्र ऐसा नहीं कि जिसमें फोटू और जीवनचरित्र से विवाह होना लिखा हो। —पृ० ८७,पं० ३

उत्तर—आप अपनी सारी पुस्तक में समस्त प्रश्नों में प्रतिज्ञाहानि-निग्रहस्थान का शिकार होकर बुरी तरह परास्त हुए हैं, क्योंकि आपने एक स्थान में भी वेदमन्त्र देकर स्वामी दयानन्दजी के लेख का वेद से विरोध सिद्ध नहीं किया। जब आप स्वामीजी के लेख के विरोध में कोई वेदमन्त्र पेश नहीं कर सकते तो स्वामीजी का लेख आर्ष होने से स्वयं ही वेदानुकूल है। इस प्रश्न में भी आपने स्वामीजी के लेख को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिए कोई वेदमन्त्र पेश नहीं किया। हम आपको बतलाना चाहते हैं कि स्वामीजी का उपर्युक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है। देखिए वेद में लिखा है कि—

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः॥ ४३॥ —अथर्व० १४।२

भाषार्थ—हे स्त्री और पुरुष! जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभातवेला को प्राप्त होता है, वैसे सुख से घर के मध्य में एक-दूसरे को अच्छे प्रकार से परीक्षापूर्वक जाननेहारे, हास्य और आनन्दयुक्त बड़े प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न हुए, उत्तम चाल-चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलनेहारे, उत्तम पुत्रवाले, श्रेष्ठ गृहादि सामग्रीयुक्त उत्तम प्रकार जीवन को धारण करते हुए गृहाश्रम के व्यवहारों के पार होवो॥ ४३॥

इस वेदमन्त्र में गृहप्रवेश करनेवालों के लिए परस्पर एक-दूसरे की आयु, रूप, स्वास्थ्य, सदाचार, सम्पत्ति तथा विद्या की परीक्षा करके गृहाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा है। इसी वेदमन्त्र की व्याख्या मनुजी महाराज ने इस प्रकार की है—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च। अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि॥ ८८॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ ८९॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ ९०॥

—मनु० ९

भाषार्थ—उत्तम गुणयुक्त, रूपवान्, सदृश वर के लिए यदि कन्या माता की सातवीं पुश्त से कुछ नज़दीक भी हो तो भी विधिपूर्वक दे देनी चाहिए॥ ८८॥ कन्या ऋतुमती होने पर भी चाहे घर में ही मरण-पर्यन्त बैठी रहे किन्तु उसे कभी भी गुणहीन पुरुष के लिए न देवे॥ ८९॥ कुमारी कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे। इस समय के पश्चात् अपने सदृश पति को प्राप्त हो॥ ९०॥

यहाँ पर मनुजी महाराज ने कन्या और वर की आयु, गुण, रूप आदि का परस्पर सदृश होना विवाह के लिए अत्यावश्यक ठहराया है।

अब प्रश्न यह है कि उस सादृश्यता का निश्चय किस प्रकार किया जावे? यह देश-कालानुसार जैसे साधन सादृश्यता को जानने के लिए उचित हों वैसे प्रयोग करने चाहिएँ। रामायण और महाभारत के पढ़ने से पता लगता है कि उस समय में स्वयंवर को सादृश्यता जानने का साधन बनाया जाता था और कन्या और वर स्वयं अपने सामने एक-दूसरे को आँखों से देखकर और गुणों की परीक्षा करके परस्पर विवाह का निश्चय करते थे। इस बारे में राम-सीता, अर्जुन-द्रौपदी, नल-दमयन्ती, सत्यवान-सावित्री आदि के स्वयंवर विवाह चमकते हुए दृष्टान्त विद्यमान हैं। महाभारत के पीछे पौराणिक काल आया जिसमें आज्ञा हुई कि—

मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते। द्विजैस्तु सह वा गम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित्॥ ४॥
हस्तौ पादौ परीक्षेत अंगुलीर्नखमेव च। पाणिमेव च जंघे च कटिनासोरु एव च॥ ५॥
जघनोदरपृष्ठं च स्तनौ कर्णौ भुजौ तथा। जिह्वां चौष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा॥ ६॥
चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्तथैव च। रोमराजिं स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः॥ ७॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० २८

भाषार्थ—उत्तम मुहूर्त्तयुक्त तिथि तथा श्रेष्ठ नक्षत्र में ब्राह्मणों को साथ में लेकर शास्त्रज्ञ कन्या को भली प्रकार देखे॥ ४॥ हाथ, पाँव, अँगुली और नाखुन, जंघा, कटि और नासिका की परीक्षा करे॥ ५॥ जघन, पेट, पीठ और स्तन, कान तथा भुजा, जिह्वा, होंठ, दाँत, कपोल तथा गाल की परीक्षा करे॥ ६॥ आँख, ललाट, शिर तथा केशों को देखे। शरीर के रोम, कण्ठ का स्वर तथा शरीर का रंग और पेट के बलों को बार-बार देखे॥ ७॥ वे अंग कैसे होने चाहिएँ इस विषय में लिखा है कि—

प्रतिष्ठिततलौ सम्यग्रक्तांभोजसमप्रभौ। ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगवर्धनौ॥ १२॥
अंगुल्यः संहिता वृत्ताः स्निग्धाः सूक्ष्मनखास्तथा। कुर्वन्त्यत्यन्तमैश्वर्यं राजभावं च योषितः॥ १४॥
सुभगत्वं नखैः स्निग्धैराताम्रैश्च धनाढ्यता। पुत्राः स्युरुन्नतैरेभिः सुसूक्ष्मैश्चापि राजता॥ १८॥
गुल्फाः स्निग्धाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा। यदि स्युर्नूपुरान् दध्युर्बाधवाद्यैःसमाप्नुयुः॥ २०॥
अशिराः शरकाण्डाभाः सुवृत्ताल्पतनूरुहाः। जंघाः कुर्वन्ति सौभाग्यं यानं च गजवाजिभिः॥ २१॥
हस्तिहस्तनिभैर्वृत्तैरंभाभैः करभोपमैः। प्राप्नुवन्त्यूरुभिः शश्वत्स्त्रियः सुखमनंगजम्॥ २७॥
संध्यावर्णं समं चारु सूक्ष्मरोमान्वितं पृथु। जघनं शस्यते स्त्रीणां रतिसौख्यकरं द्विज॥ २९॥
अरोमको भगो यस्याः समः सुश्लिष्टसंस्थितः। अपि नीचकुलोत्पन्ना राजपत्नी भवत्यसौ॥ ३०॥
अश्वत्थपत्रसदृशः कूर्मपृष्ठोन्नतस्तथा। शशिबिम्बनिभश्चापि तथैव कलशाकृतिः।
भगः शस्ततमः स्त्रीणां रतिसौभाग्यवर्धनः ॥ ३१॥

तिलपुष्पनिभो यश्च यद्यग्रे खुरसन्निभः। द्वावप्येतौ परप्रेष्यं कुर्वाते च दरिद्रताम्॥ ३२॥
उलूखलनिभैः शोकं मरणं विवृत्ताननैः। विरूपैः पूतिनिर्मांसैर्गजसंनिभरोमभिः।
दौःशील्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्यमधिगच्छति ॥ ३३॥
कपित्थफलसंकाशः पीनो बलिवर्जितः। स्फीतः प्रशस्यते स्त्रीणां निन्दितश्चान्यथा द्विजाः॥ ३४॥
सुवृत्तमुन्नतं पीनमदूरोन्नतमायतम्। स्तनयुग्ममिदं शस्तमतोऽन्यदसुखावहम्॥ ४२॥
उन्नतिः प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य भूयसी। वासे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः॥ ४३॥
दीर्घे तु चूचके यस्याः सा स्त्री धूर्ता रतिप्रिया। सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि सा पुरुषं सदा॥ ४४॥
स्तनैः सर्पफणाकारैः श्वजिह्वाकृतिभिस्तथा। दारिद्र्यमधिगच्छन्ति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः॥ ४५॥
ईदृग्लक्षणसम्पन्नां सुकन्यामुद्वहेत्तु यः। ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा कीर्तिस्तत्र तिष्ठति नित्यशः॥ ११॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ५

जो पुरुष इस प्रकार के लक्षणों से युक्त कन्या से विवाह करता है, उसके यहाँ ऋद्धि-वृद्धि तथा कीर्ति नित्य ठहरती है।

पुराणों में केवल स्त्री की ही परीक्षा नहीं लिखी अपितु पुरुष की भी लिखी है, जैसाकि—

शिवेऽहनि सुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ। पूर्वाह्णे मंगलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः॥ १०॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० २४

कल्याणकारी दिन, शुभ नक्षत्र, सौम्य ग्रह तथा सूर्य के शुभ होने पर दिन के पूर्व भाग अर्थात् प्रातःकाल बुद्धिमान् को पुरुष की परीक्षा करनी चाहिए॥ १०॥ पुरुष के अंग किस प्रकार के होने चाहिएँ, आगे इसका वर्णन है, जैसाकि—

दक्षिणावर्तलिंगश्च नरो वै पुत्रवान् भवेत्। वामावर्त्ते तथा लिंगे नरः कन्यां प्रसूयते॥ १॥
स्थूलैः शिरालैर्विषमैर्लिंगैर्दारिद्र्यमादिशेत्। ऋजुभिर्वर्तुलाकारैः पुरुषा पुत्रभागिनः॥ २॥
निम्नपादोपविष्टस्य भूमिं स्पृशति मेहनः। दुःखितं तं विजानीयात् पुरुषं नात्र संशयः॥ ३॥
भूमौ पादोपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः। ईश्वरं तं विजानीयात् प्रमदानां च वल्लभम्॥ ४॥
सिंहव्याघ्रसमो यस्य ह्रस्वो भवति मेहनः। भोगवान् स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः॥ ५॥
रेखाकृतिर्मनिर्यस्य मेहने हि विराजते। पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा॥ ६॥
विस्तीर्णा मांसला स्निग्धा बस्तिः पुंसां प्रशस्यते। निर्मांसा विकटा रूक्षा बस्तिर्येषां न ते शुभाः॥ १९॥
गोमायुसदृशी यस्य श्वानोष्ट्रमहिषस्य च। स भवेद् दुःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः॥ २०॥
यश्चैकवृषणस्तात जले प्राणान् विमुञ्चति। स्त्री चंचलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते॥ २१॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० २५

जिन पौराणिकों के यहाँ इस प्रकार की परीक्षा करके विवाह करना लिखा हो वे स्वामीजी के उपर्युक्त लेख पर आपत्ति करें तो आश्चर्य नहीं तो क्या है? स्वामीजी ने लड़का-लड़की के रूप, आचरण, गुणों में सादृश्यता मिलाने के लिए तस्वीर तथा जीवन-चरित्र का परिवर्तन तथा सबके सामने एक-दूसरे को देखना मौखिक तथा लिखकर भी प्रश्नोत्तर करना साधन बतलाया है जोकि युक्तियुक्त तथा वेदानुकूल है। हाँ, पौराणिक रिवाज नाई-ब्राह्मण के द्वारा लड़के-लड़कियों का रिश्ता करना तथा मुँह-सिर लपेट, पार्सल बना फेरों के समय वेदी पर बिठाना और बैठकर लड़की का फेरे लेना, घूँघट निकालना आदि सम्पूर्ण ही वेद के विरुद्ध हैं। क्या कोई सनातनधर्म का पण्डित जीता-जागता है जो पौराणिकों के यहाँ होनेवाली अनमेल शादियों को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि अनिरुद्ध तथा उषा ने एक-दूसरे की तस्वीर को स्वप्न में देखा और दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गये। अन्त में दोनों ने विवाह कर लिया—

स्वप्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते॥ ३॥
वायुप्रेरणवस्त्रेण व्यक्तगुप्तस्थलोज्ज्वलाम्॥ ९॥
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः॥ १०॥
स्वप्नं च दर्शयामास बाणपुत्रीं च कामुकीम्॥ ४२॥
नवीननीरदश्याममतीव नवयौवनम्॥ ४४॥
कामात्मजप्रिया कान्ता कामबाणप्रपीडिता॥ ४८॥
पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रेमे विगतज्वरा। गान्धर्वेण विवाहेन तामुवाह स्मरात्मजः॥ ८३॥

[आनन्द० सं० में श्लोक-संख्या में अन्तर है।]—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ११४

भाषार्थ—अनिरुद्ध ने पार्वती की माया के कारण स्वप्न में, फूली हुई फुलवाड़ी में एक युवती स्त्री उषा को देखा॥ ३॥ वायु की प्रेरणा से जिसका उज्ज्वल गुप्त स्थान नंगा होरहा था॥ ९॥ उसको देखकर काम का पुत्र अनिरुद्ध कामातुर हो उठा॥ १०॥ उस कामातुरा बाण की पुत्री को कृष्ण ने स्वप्न दिखलाया॥ ४२॥ जिसमें उसने नये श्याम कमल के समान यौवनवाले पुरुष को देखा॥ ४४॥ उस काम के पुत्र अनिरुद्ध को देखकर बाण की पुत्री उषा कामातुर हो उठी॥ ४८॥ अन्त में यत्नपूर्वक मिलने पर उस पतिव्रता उषा ने पति अनिरुद्ध को देखकर उससे आनन्दपूर्वक रमण किया और अनिरुद्ध ने उससे गान्धर्व विवाह की विधि से विवाह कर लिया॥ ८३॥

कहिए महाराज! यह तो घर में से ही सब-कुछ निकल आया। अब स्वामीजी के लेख पर किस मुख से आक्षेप करने का साहस कर सकेंगे?

(५५५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १०, पृ० २६३, पं० ९ में लिखा है कि—"इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रखके अन्य डाढ़ी-मूँछ और शिर के बाल सदा मुँडवाते रहना चाहिए, अर्थात् पुनः कभी न रखना। शीतप्रधान देश हो तो कामाचर है, चाहे जितने केश रक्खे; और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिए, क्योंकि सिर में बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है।" यवन साम्राज्य में सहस्रों हिन्दुओं ने जान दे दी, किन्तु चुटिया न दी। जब शास्त्रार्थ में शिखा कटवाने का वेदमन्त्र माँगा जाता है तो आर्यसमाजियों की नानी मर जाती है। —पृ० ८७, पं० २३

उत्तर—स्वामीजी के लेख में चोटी कटाने की नित्यविधि नहीं है अपितु स्वामीजी ने नैमित्तिक रूप से चोटी का कटाना लिखा है, क्योंकि उपर्युक्त लेख में ही "इसके पश्चात् केवल शिखा को रखके अन्य डाढ़ी-मूँह और शिर के बाल सदा मुँडवाते रहना चाहिए" ये शब्द स्वामीजी के अभिप्राय को स्पष्ट बता रहे हैं। तथा 'पञ्चमहायज्ञविधि' में भी स्वामीजी ने सन्ध्या के आरम्भ में लिखा है कि "इसके पश्चात् गायत्री मन्त्र से शिखा, अर्थात् चोटी को बाँधकर रक्षा करे", इससे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामीजी साधारणावस्था में चोटी का नित्य रखना स्वीकार करते हैं। नैमित्तिक रूप से विशेष अवस्थाओं में चोटी का कटाना भी मनुष्य की इच्छा पर निर्भर मानते हैं, जैसाकि "जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिए"—ये शब्द स्पष्ट बता रहे हैं। और यह लेख भी स्वामीजी का अपना नहीं है, अपितु स्वामीजी ने मनुस्मृति के श्लोक की व्याख्या तथा उसपर होनेवाली शंकाओं का समाधान किया है। मनुस्मृति में लिखा है कि—

(१) केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥ ६५॥

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित् ॥ २१९ ॥ —मनु० २

भाषार्थ—ब्राह्मण का केशान्त-संस्कार सोहलवें वर्ष में होता है, क्षत्रिय का बाईसवें वर्ष तथा वैश्य का चौबीसवें वर्ष में होता है ॥ ६५ ॥ चाहे तो सारे बाल मुँडवाकर रक्खे, चाहे जटाजूट रहे, चाहे चोटी रखकर बाकी सब मुँडवा दे। ग्राम में सोये हुए इस ब्रह्मचारी को कभी सूर्य उदय और अस्त न हो ॥ २१९ ॥

और मनु ने भी चोटी कटवाने का यह विकल्प अपनी ओर से नहीं लिखा, अपितु वेद में इसकी आज्ञा है, जैसाकि—

(२) व्युप्तकेशाय च नमः ॥ —यजुः० १६।२९

व्युप्ता मुण्डिताः केशा यस्य स व्युप्तकेशस्तस्मै नमः। —महीधर

(३) यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव।
तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वहा शर्म यच्छतु॥ —यजुः० १७।४८

यथा कुमारा अदृष्टपरिकारिणः विगतशिखाः सर्वमुण्डाः तं तमर्थं सन्निपतेयुरेवं सम्पतन्ति तत्रेत्यर्थः। —उव्वट

कुमारा विशिखा इव विगता शिखा येषां ते विशिखाः शिखारहिता मुण्डितमुण्डा विकीर्णकवचा वा अतिबालाश्चपलाः सन्तो यथा इतस्ततो गच्छन्ति तद्वत्। —महीधर

भाषार्थ—(२) समस्त केश मुँडवानेवाले का सत्कार करो (३) जिस संग्राम में बिना चोटी-केश और बहुत चोटियोंवाले बालकों के समान बाण आदि शस्त्र-अस्त्रों के समूह अच्छे प्रकार गिरते हैं वहाँ बड़ी सभा वा सेना पालनेवाला सेनापति आश्रय वा सुख को देवे और नित्य सभासदों से शोभायमान सभा सब दिन हम लोगों के लिए सुख सिद्ध करनेवाले घर को देवे। —दयानन्द

यहाँ पर उव्वट और महीधर चोटियों को सर्वथा मुँडवाने तथा स्वामी दयानन्दजी चोटी कटवाने में विकल्प मानकर चोटी के रखने का भी विधान करते हैं, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। पौराणिक ग्रन्थों में चोटी कटवाने के अनेक प्रमाण हैं, जैसेकि—

(४) यथा मंगलं केशशेषकरणम्। (पारस्कर० २।१।२२)

केशानां शेषकरणं शिखास्थापनं केशशेषकरणं यथा मंगलं मंगलं कुलाचार-व्यवस्थामनतिक्रम्य भवति। कुलाचाराश्च बहुधा। तद्यथा लौगाक्षिः। तृतीयस्य वत्सरस्य भूयिष्ठे गते चूडां कारयेत् दक्षिणतः कंबुजा वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुण्डा भृगवः पंचचूडा आंगिरसः वाजिमेके मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये। —हरिहर

यस्य कुले यथा प्रसिद्धं तस्य तथैव शिखास्थापनं कार्यम्। अत्र कारिकायाम्। केशशेषं तथा कुर्याद्यस्मिन् गोत्रे यथोचितम्। वसिष्ठाः दक्षिणे भागे उभयत्रापि काश्यपाः। शिखां कुर्वन्त्यंगिरसः शिखाभिः पञ्चभिर्मताः। परितः केशपंक्त्या वा मुण्डाश्च भृगवो मतः॥ कुर्वन्त्यन्ये शिखामत्र मंगलार्थमिह क्वचित्॥ —गदाधार

भाषार्थ—कुलाचार के अनुसार केश कटवाने चाहिएँ, और कुलाचार बहुत हैं, जैसे वसिष्ठ तथा कम्बोज दायीं ओर चोटी रखते हैं, अत्रि तथा कश्यपों के दोनों ओर चोटी रक्खी जाती है, आंगिरस पाँच चोटियाँ रखते हैं। भृगु लोग सर्वथा मुँडे हुए चोटी से रहित रहते हैं और दूसरे सब लोग मङ्गलार्थ चोटी रखते हैं।

(५) यथा गोत्रकुलकल्पम्। गोभिल० २।९।२५

गोत्रकुलानुरूपं सशिखं शिखाशून्यं वा, पंच चूडं वा। (तथा च ''वासिष्ठाः पंच चूडा

स्युस्त्रिचूडाः कुण्डपायिनः'' किंच ''सशिखं वयनं कार्यमाम्नायाद् ब्रह्मचारिणाम्। आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्यं न चेद् भवेत्'' इति। एवं च वसिष्ठ गोत्राणां पंचचूडं मुण्डनम्। कुण्डपायिनां त्रिचूडं मुण्डनम्, कौथुमानामासमावर्तनात् सशिखं वपनं चेति) बहुवचनं साधारणविध्यपेक्षम्।

—सत्यव्रत सामश्रमी

भाषार्थ—गोत्र और कुलानुसार पाँच या तीन शिखा या शिखारहित या शिखासहित मुण्डन करवाये।

—ठाकुर उदयनारायण सिंह

(६) **धनान्यपत्यं दाराश्च रत्नानि विविधानि च।**
पन्थानं पावकं हित्वा जनको मौण्ड्यमास्थितः॥ ४॥ —महा०शान्ति०अ० १८

भाषार्थ—धन, सन्तान, स्त्री तथा विविध प्रकार के रत्न, मार्ग और अग्नि का त्याग करके जनक मौण्ड्य भाव को प्राप्त हुआ।

(७) **मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः।**
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह॥ २६॥ —महा० द्रोण० अ० ११९

सात्यकि ने सारथी से कहा कि मैं आज इन मुण्डित मुंडों को ऐसे मारूँगा जैसे इन्द्र दानवों को मारता है। मैं आज अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूँगा। मुझे इन काम्बोजों के सामने ले-चल।

(८) **पुत्राद्या वृद्धपूर्वास्ते एकवस्त्राः शिखां विना॥ ७२॥**
प्राचीनावीतिनः सर्वे विशेयुर्मौनिनो जलम्॥ ७३॥ —गरुड अ० ४ प्रेतखण्ड

पुत्रादि वृद्धोंसहित एकवस्त्रधारी चोटी मुँडवाकर सब प्राचीनवीति होकर जल में प्रवेश करें।

इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि पौराणिक साहित्य भी नैमित्तिक रूप से चोटी का काटना स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। यवन साम्राज्य में हिन्दुओं ने चोटी के लिए जान नहीं दी अपितु हिन्दुधर्म के लिए जानें दी। इसका कारण यह है कि चोटी हिन्दूधर्म की नींव नहीं है। यदि चोटी को हिन्दूधर्म की नींव मान लिया जाए और यह माना जाए कि जो चोटी रक्खे वही हिन्दू है तो ऐसी स्थिति में हिन्दुओं की गिनती बहुत कम रह जावेगी। हिन्दुओं में लाखों की गिन्ती में साधु लोग हैं जो चोटी नहीं रखते। क्या उनको हिन्दूधर्म से खारिज समझा जाएगा? जिला हिसार, रोहतक, करनाल, फ़ीरोजपुर, बिजनौर तथा रियासत जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि में एक कौम आबाद है जिसका नाम विष्णोई है। वे कट्टर हिन्दू हैं, किन्तु वे चोटी नहीं रखते। क्या उनको भी हिन्दुओं से बाहर माना जाएगा? पंजाब में तीस लाख सिक्ख हैं उनके सिर पर चोटी नहीं है। चौबीस करोड़ हिन्दुओं में से बारह करोड़ स्त्रियाँ हैं जिनके सिर पर चोटी नहीं है तो क्या सिक्खों और स्त्रियों को भी चोटी के बिना गैर-हिन्दु माना जाएगा? यदि कोई यह कहे कि पूरे केशों को भी चोटी ही माना जाता है और प्रत्येक पूरे केश रखनेवाले को भी चोटी रखने में गिना जाकर हिन्दू ही माना जाएगा तो फिर भी सनातनधर्म की लुटिया तो डूब ही जाएगी, क्योंकि इससे ईसाई तथा मुसलमान औरतों को भी हिन्दू स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि उनके सिर पर पूरे केश हैं, अतः यह सिद्ध है कि चोटी का रखना हिन्दूधर्म का लक्षण नहीं है, अपितु जो गौ का भक्त है वही हिन्दू कहलाने का अधिकारी है दूसरा नहीं है। और हिन्दूधर्म को स्थिर रखनेवाली गोमाता के शिर पर पौराणिकधर्म ने छुरी चलाकर हिन्दूधर्म का खात्मा ही कर दिया है। जैसे पुराणों में लिखा है कि—

ब्राह्मणानां त्रिकोटीश्च भोजयामास नित्यशः॥ ४८॥
पंचलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः॥ ४९॥

—ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ५४

भाषार्थ—जीवन्मुक्त मनु आदि तीन करोड़ ब्राह्मणों को घी में अच्छे प्रकार पके हुए पाँच लाख गौवों के मांस से नित्यप्रति भोजन कराया करते थे, और भी लिखा है कि—

पंचकोटिगवां मांसं सापूपं स्वन्नमेव च॥ ९८॥
एतेषां च नदी राशीर्भुञ्जते ब्राह्मणा मुने॥ ९९॥

—ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ६१

धार्मिक और बली राजा चैत्र के यज्ञ में ब्राह्मण लोग पाँच करोड़ गौवों के मांस के पूड़े और पापड़ों समेत भोजन कर जाते थे।

पूछने पर पोपमण्डल उत्तर देता है कि—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्॥ ११२॥
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ १२३॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ११५

घोड़े का यज्ञ में मारना, गौ का यज्ञ में मारना, संन्यास लेना, श्राद्ध में मांस का पिण्ड देना तथा देवर से नियोग करके सन्तान पैदा करना—पाँच कामों की कलियुग में मनाही है।

क्यों साहब! ये पाँचों काम धर्म हैं या पाप? यदि धर्म हैं तो कलियुग में इनकी मनाहीं क्यों? और यदि पाप हैं तो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, तीन युगों में इनकी आज्ञा क्यों? इसका सनातनधर्म के पास क्या उत्तर है? सत्य तो यह है कि सनातनधर्म के ये लेख हिन्दूधर्म का नाश करनेवाले हैं, क्योंकि '**यदि नो गां हंसि**' अथर्व० १।१६।४ में गौ का मारना पाप लिखा है, और '**यथा मांसं यथा सुरा**' अथर्व० ६।७०।१ में मांस का खाना पाप बतलाया है, अतः ब्रह्मवैवर्तपुराण का उपर्युक्त लेख वेद के सर्वथा विरुद्ध है और हिन्दूधर्म का नाशक है। क्या पौराणिक पोपमण्डल में कोई ऐसा गोमांसप्रिय, पापी, राक्षस मौजूद है जो ब्रह्मवैवर्त के उपर्युक्त लेख को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आये?

(५५६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ७७, पं० १० में लिखा है कि—

'सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह-समय उत्तम है।' आर्यसमाजी इतने मिथ्यावादी और दुराग्रही हैं कि ये अब भी बड़ी उम्र के विवाह को वेदाज्ञा ही कहते जाते हैं। वास्तव में जो मनुष्य धर्म को एकदम तिलाञ्जलि दे देता है, फिर वह अकर्म, कुकर्म सभी कर सकता है।

—पृ० ७८, पं० ११

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। वेद ने कन्या का युवावस्था में विवाह लिखा है, जैसाकि—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः। —ऋ० २।३५।४
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्। —ऋ० ३।५५।१६
युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामे। —ऋ० १०।१८३।२

भाषार्थ—जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध युवती कन्याएँ जैसे जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे हमको प्राप्त होनेवाली जवान पति को प्राप्त होती हैं॥ ४॥ नवीन-नवीन शिक्षा और अवस्था से पूर्ण युवतियाँ विद्वानों के अद्वितीय, शिक्षायुक्त प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त हों॥ १६॥ हे सन्तान चाहनेवाली वधू! अत्यन्त तरुणावस्था-सम्पन्न तू मुझे प्राप्त हो॥ २॥

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं जो कन्याओं को युवावस्था में विवाह करने की आज्ञा देते हैं, किन्तु

पौराणिक लोग ऐसे हठी, दुराग्रही और असत्यवादी हैं कि इतने प्रमाणों की विद्यमानता में अभी तक भी बचपन के विवाह, बुढ़ापे के विवाह तथा अनमेल विवाह की वकालत ही करते चले जा रहे हैं। पौराणिक ग्रन्थों में लिखा है—

बाल विवाह—

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। विवाहो हि अष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते॥

—संवर्त्तस्मृति ६८

पंचमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते॥४९॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा॥५०॥

—महा० वन० अ० १९०

भाषार्थ—इसलिए कन्या को तबतक विवाह देना चाहिए जबतक कि वह ऋतुमती न हो। कन्या का विवाह आठवर्ष की आयु में प्रशंसनीय है। —संवर्त

पाँच वा छह वर्ष की आयु में कन्या प्रसूता होगी और सात वा आठ वर्ष की आयु में पुरुष सन्तान पेदा करेंगे। —महाभारत

वृद्ध विवाह—

मुनिर्ययाचे कन्यां स तां देहीति नृपेश्वर॥१९॥
रुरोद राजा सगणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम्॥२०॥
राजा सर्वान् परित्यज्य दत्त्वा वृद्धाय चात्मजाम्।
ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तपसे वनम्॥३३॥

—शिव० रुद्र० पार्वति० अ० ३४

भाषार्थ—राजा अनरण्य से पिप्पलाद मुनि ने कन्यादान माँगा। राजा ब्राह्मण मुनि को बूढ़ा देखकर रोपड़ा। राजा बूढ़े को कन्या देकर और सबको छोड़कर चित्त में ग्लानि धारण करके तप करने के लिए वन में चला गया।

अनमेल विवाह—

साऽऽत्मानं मान्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता। वार्द्धक्येन च राजेन्द्र तपसा चैव कर्षिता॥८॥
सा नाशकद्यदा गन्तुं पदात् पदमपि स्वयम्॥९॥
यथादृष्टेन विधिना हुत्वा चाग्निं विधानतः। चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहं च गालविः॥१५॥

—महा० शल्य० अ० ५२

निश्चक्रमुर्गृहात्तस्मात् सा वृद्धाथ व्यतिष्ठत॥७४॥
अथ सा वेपमानांगी निमित्तं शीतजं तदा। व्यपदिश्य महर्षेर्वै शयनं व्यवरोहत॥७७॥
स्वागतेनागतां तां तु भगवानभ्यभाषत। सोपागूहद् भुजाभ्यां तु ऋषिं प्रीत्या नरर्षभ॥७८॥

—महा० अनु० अ० १९

भाषार्थ—वह बूढ़ी अपने-आपको कृतकृत्य मानती हुई भी थकावट से युक्त बूढ़ी होने के कारण और तप से दुबली हुई एक क़दम तक न चल सकती थी। तब गालव के पुत्र ने विधि-विधान के अनुसार अग्नि में हवन करके उसके साथ पाणिग्रहणपूर्वक विवाह कर लिया।

उस घर से सबके निकल जाने पर वह बूढ़ी वहाँ बैठी रही। रात को वह शीत से काँपती हुई महर्षि की चारपाई पर चढ़ा गई। महर्षि ने उसका स्वागत किया। उसने ऋषि को छाती से लगाकर भींच लिया।

इस आर्यजाति की नस्ल को तबाह करनेवाला कोई पौराणिक पोप क्या उपर्युक्त विवाहों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आने का साहस करेगा?

युवावस्था के विषय में सुश्रुत का लेख है कि—

आषोडशाद् वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। —सुश्रुत, सूत्रस्थान अ० ३५

भाषार्थ—मनुष्य के शरीर की सोलह वर्ष तक वृद्धि और सोलह से पच्चीसवें वर्ष तक यौवनावस्था होती है। इससे सिद्ध हो गया कि कन्याओं को सोलह वर्ष से आरम्भ करके पच्चीसवें वर्ष तक विवाह करने की आज्ञा है।

रही बात पुरुषों के विवाह-समय अवस्था की, सो वेद कहता है कि—

आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु॥ —यजुः० २।५

वसु, रुद्र, तथा आदित्य किसको कहते हैं? इसपर छान्दोग्य उपनिषत् व्याख्या करता है कि—

यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि तत्प्रातःसवनम्॥ १॥

यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनम्॥ ३॥

यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनम्॥ ५॥ —छान्दोग्य० प्रपा० ३ खं० १६

इस व्याख्या में स्पष्ट बतलाया है कि २४ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम वसु, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम रुद्र तथा ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का नाम आदित्य है।

इससे सिद्ध हुआ कि वेद विवाह के समय कन्याओं की आयु १६ से २५ के आरम्भ तक तथा पुरुषों की २४ से ४८ तक मानता है।

(५५७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४, पृ० ९७, पं० ८ में लिखा है कि—

''पितृयज्ञ के दो भेद हैं—एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' नाम सत्य का है, **'श्रत् सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जावे उसको श्रद्धा और जो कर्म श्रद्धा से किया जावे उसका नाम श्राद्ध और **'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्'** जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जाएँ, उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिए है, मृतकों के लिए नहीं''। यदि वेद टटोला जावे तो उसमें कहीं पर भी जीवित माता-पिता का श्राद्ध करना नहीं लिखा। —पृ० ८८, पं० २७

उत्तर—चारों वेदों में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो मृतक पितरों के श्राद्ध का नाममात्र भी वर्णन करता हो। सच तो यह है कि चारों वेदों में 'मृतकश्राद्ध' शब्द ही नहीं है और पितर संज्ञा भी जीवितों की हो सकती है, मृतकों की नहीं। कर्म का फल कर्त्ता को मिलता है, अकर्त्ता को नहीं मिलता, अतः मृतकश्राद्ध सर्वथा वेदविरुद्ध है। वेदों में जीवित पितरों के श्राद्ध की स्पष्ट आज्ञा है, जैसेकि—

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतं समाः॥ ४६॥ —यजुः० १९

जीवन्तीति जीवास्तेषु जीवेषु प्राणिषु मध्ये ये समानाः समनसः समनस्काः मामका मदीया जीवाः प्राणिनाः। सपिण्डाः ये मे ते मामकाः। —महीधर

य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म॥

—अथर्व० १८।४।८७

भाषार्थ—जो इस लोक में जीवते हुओं में समान गुण-कर्म-स्वभाववाले समानधर्म में मन रखनेहारे मेरे जीते हुए पितादि हैं उनकी लक्ष्मी मेरे समीप सौ वर्षपर्यन्त समर्थ होवे॥ ४६॥ जो

हमारे इस लोक में जीवित पितर हैं, वे हमसे और हम उनसे सदा श्रेष्ठ व्यवहार के करनेवाले हों॥ ४७॥

इन मन्त्रों से सिद्ध है कि स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। हाँ, पुराणों में प्रेत-सम्बन्धी वर्णन वेदविरुद्ध अवश्य हैं, जैसेकि—

एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकम्॥ ६७॥
रोदितव्यं ततो गाढमेवं तस्य सुखं भवेत्॥ ६८॥
अश्रुपातं न कुर्वीत दत्त्वा दाहजलांजलिम्।
श्लेश्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः॥ ८०॥
ऊनद्विवर्षं निखनेत्, न कुर्य्यादुदकं ततः॥ ८९॥ —गरु० प्रेत० अ० ४

भाषार्थ—इस प्रकार से मन्त्रपूर्वक तिलसहित आज्याहुति देकर (६७) खूब अच्छी प्रकार से रोवे इससे मृतक को सुख होता है॥ ६८॥ दाह, जलांजलि देकर अश्रुपात न करे, क्योंकि बन्धु लोगों से छोड़े हुए आँसू, बलगम आदि मृतक को विवश होकर खाने पड़ते हैं॥ ८०॥ दो वर्ष से कम बच्चे को भूमि में गाड़ दे और उसके पश्चात् उसका क्रियाकर्म न करे॥ ८९॥

क्या कोई मृतकों का माल उड़ानेवाला पितरों का बनावटी लैटरबक्स, पौराणिक पोप गरुड पुराण के ऊपर लिखे हुए श्लोकों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ के मैदान में पग रखने का साहस करेगा?

(५५८) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ८०, पं० ४ में लिखा है कि—

''लड़का लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है''।

''विवाह कन्या और वर के अधीन ही वेद ने कहा है'' हमारी समझ में ये मूर्ख महाशय प्रलय के बाद इस बात को दिखला सकेंगे, प्रलय तक तो दिखा ही नहीं सकते।

—पृ० ८९, पं० २०

उत्तर—स्वामीजी ने स्पष्ट कर दिया है यदि विवाह लड़का-लड़की के ही अधीन हो तो 'उत्तम' और यदि उसमें माता-पितादि की भी सहमति हो तो 'अत्युत्तम' तथा यदि केवल माता-पिता की सम्मति से हो तो 'निकृष्ट' है। जैसाकि—

प्रश्न—विवाह करना माता-पिता के अधीन होना चाहिए वा लड़का-लड़कि के अधीन रहे।

उत्तर—लड़का-लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए, क्योंकि एक-दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर-कन्या का है, माता-पिता का नहीं, क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में इन्हीं को दुःख होता है।

—सत्यार्थ० समु० ४

मनुस्मृति भी इसकी पुष्टि करती है कि—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ ९०॥

—मनु० ९

कुमारी कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे, इस समय के पश्चात् अपने सदृश पति को प्राप्त करे॥ ९०॥

यहाँ भी कन्या को स्वयं ही पति प्राप्त करने की आज्ञा है। रामायण और महाभारत में सीता, द्रौपदी, दमयन्ती और सावित्री आदि ने स्वयं ही अपनी इच्छा से सदृश वरों को प्राप्त किया था।

स्वयंवर का अर्थ ही यह है कि जिसमें कन्या स्वतन्त्रता से अपने वर को स्वीकार करे, उसका नाम स्वयंवर उत्सव है जैसाकि मद्रदेश के राजा अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को आज्ञा दी कि—

पुत्रि प्रदानकालस्ते न च कश्चिद् वृणोति माम्। स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ ३१ ॥

—महा० वन० अ० २९२

तब उसने अपनी इच्छा से सत्यवान् को वर लिया।

कृपया आप बतलावें कि रुक्मिणी-हरण, सुभद्रा-हरण, अम्बा-अम्बिका-अम्बालिका-हरण, धृतराष्ट्र-गान्धारी की शादी इत्यादि शादियाँ कौन-कौन-से वेद के अनुकूल हैं?

(५५९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ८, पृ० २२५, पं० २९ में लिखा है कि—

"मनुष्यों की प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई"। वह कौन आर्यसमाजी है जिसने अपनी जननी का दूध पिया हो और वह यह सिद्ध करके दिखलावे कि त्रिविष्टप का अर्थ तिब्बत है और स्वर्ग नहीं है और इस सिद्धान्त को वैदिक सिद्ध करे? —पृ० ९१, पं० २९

उत्तर—यदि तिब्बत का नाम त्रिविष्टप तथा स्वर्ग भी हो तो हमारी इसमें क्या हानि है! हम आपको यह बताना चाहते हैं कि त्रिविष्टप तथा स्वर्ग के सम्पूर्ण लक्षण तिब्बत में ही मिलते हैं, अतः त्रिविष्टप वा स्वर्ग तिब्बत का ही नाम है और उसी में प्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई। हमारी इस प्रतिज्ञा में निम्नलिखित प्रमाण हैं—

१. **साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।**
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति॥ —अथर्व० ११।१।७

२. **इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय। शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे॥**
—ऋ० ८।९१।५

३. **उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत॥** —यजुः० २६।१५

४. **सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥**
—ऋ० १०।१९०।३

५. **तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।** —तैत्तिरीयोपनिषत् ब्रह्मानन्दवल्ली २।१

६. **वाक्शौचं कर्मशौचं च यच्च शौचं जलात्मकम्।**
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्गो नात्र संशयः॥ ८२॥ —महा० वन० अ० १९९

७. **ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।**
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रनाशिनी॥ ८३॥ —महा० वन० अ० ८३

८. **ततो हिमवतः शृंगं यत्परं भरतर्षभ॥ ४७॥**
तत्राकर्षत्ततो नावं स मत्स्यः कुरुनन्दन। अथाब्रवीत्तदा मत्स्यस्तानृषीन् प्रहसन् शनैः॥ ४९॥
अस्मिन् हिमवतः शृंगे नावं बध्नीत मा चिरम्॥ ५०॥ —महा० वन० अ० १८७
गृहीतास्त्रस्तु कौन्तेयो भ्रातॄन् सस्मार पाण्डवः।
पुरन्दरनियोगाच्च पञ्चाब्दानवसत् सुखी॥ ५॥ —महा० वन० अ० ४४

१०. **निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भारतर्षभ।**
अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः॥ ६॥ —महा० महाप्रस्थान० अ० ३

भाषार्थ—हे मनुष्य! जिसको त्रिविष्टप और स्वर्गलोक भी कहते हैं, उसपर तू चढ़ जा। वह सब पृथिवी से ऊँचा, सुख का देनेवाला स्थान है। वह पृथिवी पानी से सबसे पहले बाहर आई और जिसमें एक साथ पैदा हुए, समान मनुष्य प्रकट हुए। महान् वीर्यप्राप्ति के लिए उसको तू प्राप्त कर॥ १॥ हे राजन्! तू उस त्रिविष्टप स्थान को प्राप्त कर जो सारी पृथिवी से ऊँचा है और मनुष्यों के लिए सुखकारी है तथा माता के उदर के समान मनुष्यों को पैदा करने का स्थान है॥ २॥

इन दोनों वेदमन्त्रों के द्वारा परमात्मा ने सैद्धान्तिक रूप से बतलाया कि जो स्थान पानियों से सारी पृथिवी से पहले बाहर प्रकट हुआ और जिसमें इन्सानों की पहलेपहल उत्पत्ति हुई उसी का नाम त्रिविष्टप वा स्वर्ग है। वह स्थान मनुष्यों के लिए सुखकारक है, उसको तुम भी प्राप्त होवो॥

पहाड़ों की गुफाओं में तथा नदियों के संगम पर ध्यान करने से विप्रपन की प्राप्ति होती है॥ ३॥

इस सारे संसार को धारण करनेवाले परमात्मा ने सूर्य, चाँद, द्युलोक, पृथिवी, सितारों तथा सुखदायक स्थान, अर्थात् स्वर्ग को पैदा किया। जैसे पूर्व कल्प में पैदा किया था वैसे ही॥ ४॥

इन दोनों मन्त्रों से भी सिद्ध है कि जिस देश में पहाड़ों की गुफाएँ तथा नदियों के संगम हों वह देश ही ध्यान के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के सुख का हेतु होने से स्वर्ग है तथा उसे ही परमात्मा ने यथापूर्व पैदा किया। इन दोनों मन्त्रों में कथित लक्षणों के अनुसार भी तिब्बत का ही नाम स्वर्ग वा त्रिविष्टप सिद्ध होता है।

इस आत्मा के निमित्त से आकाश प्रकट हुआ। आकाश के पश्चात् वायु। वायु के पश्चात् अग्नि। अग्नि के पश्चात् पानी। पानी के पश्चात् पृथिवी। पृथिवी से ओषधियाँ। ओषधियों से अन्न। अन्न से पुरुष। सो यह पुरुष अन्न-रसमय है॥ ५॥

इससे सिद्ध है कि जब सर्वत्र जल-ही-जल थे तो उस समय जलों के सूखने पर पृथिवी का जो भाग सबसे पहले नज़र आया, उसी पर पहलेपहल ओषधि, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की प्रथम सृष्टि हुई। इस पृथिवी पर मनुष्यों के रहने के योग्य सबसे ऊँची पृथिवी का भाग तिब्बत ही है, अतः सिद्ध हुआ कि पृथिवी का यही भाग जलों से पहलेपहल बाहर आया और और इसी पर प्रथम सृष्ट हुई॥

वाणी की शुद्धता, कर्मों की शुद्धता, और जलमय शुद्धता, ये तीन प्रकार की शुद्धता जिस देश में हों, उसी का नाम स्वर्ग है॥ ६॥ इससे सिद्ध है कि स्वर्ग पृथिवी से भिन्न किसी स्थान का नाम नहीं है, अपितु शुद्धता द्वारा विशेषसुख के साधन का नाम ही स्वर्ग है। इसके पश्चात् मनुष्य को चाहिए कि वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिविष्टप देश में जावे, वहाँ पापों के नाश करनेवाली पवित्र नदी वैतरणी बहती है॥ ७॥

इससे सिद्ध है कि त्रिविष्टप वा स्वर्ग इसी पृथिवी पर विद्यमान है, जहाँ यात्रा करने की पौराणिकों को आज्ञा दी गई है।

उसके पश्चात् हिमालय की चोटी से परे जो देश है हे राजन्! यहाँ पर मत्स्य ने नावों को खेंचा। तब मत्स्य ने उन ऋषियों को आहिस्ता से कहा कि इस हिमालय की चोटी से नावों को बाँध दो, देर मत करो॥ ८॥

इससे सिद्ध है कि बाढ़ के समय भी ऋषियों की रक्षार्थ इसी स्थान को पौराणिकों के अवतार ने चुना, अतः यह तिब्बत स्थान ही पृथिवी में मनुष्यों के रहने के योग्य ऊँचाई पर है, अतः प्रथम सृष्टि का स्थान यह तिब्बत ही सिद्ध होता है।

अस्त्रों को ग्रहण करने के पश्चात् अर्जुन ने अपने भाइयों को याद किया और इन्द्र की आज्ञा

से अर्जुन पाँच वर्ष सुखपूर्वक स्वर्ग में निवास करता रहा॥ ९॥

इससे सिद्ध है कि स्वर्ग इसी पृथिवी पर है, क्योंकि अन्य लोक में रहकर शास्त्रास्त्र का सीखना सर्वथा असम्भव है। उसी स्वर्ग का नाम ही त्रिविष्टप या तिब्बत है।

हे राजन्! वे सब शरीर को छोड़कर स्वर्ग को गये और आप इसी शरीर से स्वर्ग में जाएँगे इसमें सन्देह नहीं है॥ १०॥

राजा युधिष्ठिर का स्वर्ग में जाने के लिए पाँचों भाइयों, द्रौपदी तथा कुत्तेसहित यात्रा करते हुए हिमालय की तरफ़ जाना और उसी शरीर के साथ कुत्तेसमेत स्वर्ग में पहुँच जाना इस बात को सिद्ध करता है कि पौराणिक स्वर्ग इस पृथिवी पर विद्यमान है, क्योंकि इस पृथिवी के निवासी का शरीरसमेत किसी दूसरे लोक-लोकान्तरों में जाना अत्यन्त असम्भव है। इससे सिद्ध है कि तिब्बत का ही नाम त्रिविष्टप वा स्वर्ग है।

(५६०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ९३, पं० १५ में लिखा है कि—

''दिन-रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों, तब-तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक-दूसरे से करें''। क्या कोई आर्यसमाजी संसार में ऐसा पैदा हुआ है जो वेद से परस्पर में नमस्ते करना सिद्ध कर दे? —पृ० ९०, पं० २३

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। 'नमस्ते' शब्द '**नमः**' और '**ते**' इन दो पदों से मिलकर बना हुआ है। नमस् अव्यय है और '**ते, युष्मद्**' शब्द के चतुर्थी के एक वचन 'तुभ्यम्' के स्थान में 'ते' आदेश हो जाता है। संस्कृत में मध्यम पुरुष के लिए केवल 'युष्मद्' शब्द ही नियत है और 'नमः' के योग में चतुर्थी विभक्ति ही प्रयुक्त होती है। इस नियम से नमः+ते= नमस्ते पद सिद्ध होता है। संस्कृत साहित्य में नमः पद प्रत्येक के लिए प्रयुक्त हुआ है, जैसेकि—

नमस्ते रुद्र मन्यवे॥ १॥ इषवे नमः। बाहुभ्यां नमः॥ १॥ नमस्त आयुधाय॥ १४॥ नमो वृक्षेभ्यः॥ १७॥ नमोपवीतिने॥ १७॥ स्तेनानां पतये नमः॥ २०॥ नमो वंचते परिवंचते। तस्कराणां पतये नमः॥ २१॥ मुष्णातां पतये नमः। नमोऽसिमद्भ्यः॥ २१॥ व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः॥ २५॥ नमो महद्भ्यः, अर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ २६॥ नमस्तक्षभ्यः। रथकारेभ्यश्च वो नमः। नमः कुलालेभ्यः। कर्मकारेभ्यश्च वो नमः। नमो निषादेभ्यः। पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमः॥ २७॥ नमः श्वभ्यः। श्वपतिभ्यश्च वो नमः॥ २८॥ नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च॥ ३२॥ —यजुः० १६

इत्यादि-इत्यादि प्रत्येक अवस्थावाले, प्रत्येक कर्म करनेवाले, प्रत्येक प्राणी तथा अप्राणी के लिए भी नमः शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में मौजूद है।

इसी प्रकार ही 'ते' शब्द भी प्रत्येक के लिए प्रयुक्त हुआ है, जैसेकि—

अर्जुन ने द्रोण के लिए—

गुरुर्भवान्न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि 'ते'॥ ३४॥ —महा० द्रोण० अ० ९१

भीष्म ने सत्यवती के लिए—

तत् 'ते' धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम्॥ २५॥ —महा० आदि० अ० १०३

व्यास ने सत्यवती के लिए—

ईप्सितं 'ते' करिष्यामि दृष्टं ह्येतत् सनातनम्॥ ३६॥ —महा० आदि० अ० १०५

विश्वामित्र ने राम के लिए—

न श्रमो न ज्वरो वा 'ते' न रूपस्य विपर्ययः॥ १३॥ —वाल्मी० बाल० स० २२

राम ने विश्वामित्र के लिए—

श्रोतुमिच्छामि भद्रं 'ते' विस्तरेण कथामिमाम्॥ २॥ —वाल्मी० बाल० स० ३९

राम ने परशुराम के लिए—

तस्माच्छक्तो न 'ते' राम मोक्तुं प्राणहरं शरम्॥ ६॥ —वाल्मी० बाल० स० ७६

राम ने कौसल्या से—

नाहं धर्ममपूर्वं 'ते' प्रतिकूलं प्रवर्तये॥ ३६॥ —वाल्मी० अयोध्या० स० २१

सीता ने राम के लिए—

न 'ते' दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सह॥ १६॥ —वाल्मी० अयोध्या० स० २७

राम ने दशरथ के लिए—

अपगच्छतु 'ते' दुःखं मा भूर्वाष्पपरिप्लुतः॥ ४६॥
प्रत्यक्षं तव सत्येन सुकृतेन च 'ते' शपे॥ ४८॥ —वाल्मी० अयो० स० ३४

इत्यादि-इत्यादि अनेक स्थलों में प्रत्येक के लिए 'ते' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

जब 'नमः' भी सबके लिए प्रयुक्त हो सकता है और 'ते' भी तो नमस्ते के परस्पर प्रत्येक के लिए प्रयुक्त होने में क्या सन्देह है?

अर्थों के अनुसार भी नमस्ते परस्पर प्रत्येक के लिए प्रयुक्त हो सकता। नमः शब्द के अर्थ निम्न प्रकार से हैं—

नमः। आयुः। ब्रह्म। वर्चः। यशः। अन्नम् —ये सब भी पर्यायवाची शब्द हैं।
—निरुक्त अ० ३ खं० ९

नमः। बधः। सायकः। परशुः। वज्रः। —ये सब भी पर्यायवाची शब्द हैं।
—निरु० अ० खं० ११

नमस्यति धातु परिचरण अर्थ में है। —निरु० अ० ३ खं० १३

परिचरण के अर्थ सेवा तथा पूजा भी होते हैं। इस प्रकार से नमः तथा पूजा शब्द पर्यायवाची हैं, अर्थात् दोनों के एक ही अर्थ हैं। पूजा शब्द के संस्कृत साहित्य में चार अर्थ आते हैं—किसी वस्तु का उचित सत्कार, किसी वस्तु का उचित प्रयोग, किसी वस्तु की उचित रक्षा और उचित दण्ड, जैसेकि—

(१) उचित सत्कार—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः॥ ५६॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः॥ ५९॥ —मनु० ३

(२) उचित प्रयोग—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्॥ ५४॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति॥ ५५॥ —मनु० २

(३) उचित रक्षा—

इयं हि नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा॥१३॥
—महा० विराट० अ० ३

(४) उचित दण्ड—

वत्स योऽयं विधिः साक्षाज्जगतामाद्यदैवतम्। नूनमर्चय खड्गेन तिग्मेन जवसा परम्॥ ३॥
—शिव० रुद्र० कुमार० अ० १६

यह पूजा शब्द आशीर्वाद अर्थों में भी आता है जो अर्थ कि सत्कार के अन्तर्गत ही आ जाते हैं, जैसेकि—

जयाशीर्भिस्तु तं विप्रो धर्मराजानमार्चयत्॥ १२॥ —महा० सभा० अ० ५

ते समाश्वासयामासुराशीर्भिश्चाप्यपूजयन्॥ १६॥ —महा० वन० अ० १४४

सम्मानितश्च धौम्येन द्रौपद्या चार्चितोऽश्रुभिः॥ ४६॥ —महा० वन० अ० २२

ततो हते दशग्रीवे देवाः सर्षिपुरोगमाः। आशीर्भिर्जययुक्ताभिरानर्चुस्तं महाभुजम्॥ २॥

[गीता० सं० अ० २९१]—महा० वन० अ० २९०

यह पूजा शब्द प्रत्येक के लिए प्रयुक्त होता है, जैसेकि—

गुरु शुक्राचार्य से शिष्य कच की—

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः। अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः॥ २१॥

—महा० आदि० अ० ७६

माता सत्यवती ने पुत्र व्यास की—

तस्मै पूजां ततः कृत्वा सुताय विधिपूर्वकम्॥ २३॥ —महा० आदि० १०५

दादा सगर ने पोते अंशुमान् की—

तत् श्रुत्वा सगरो राजा पुत्रजं दुःखमत्यजत्। अंशुमन्तं च सम्पूज्य समापयत तं क्रतुम्॥ ६२॥

—महा० वन० अ० १०७

द्रोण से अर्जुन की—

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि॥ ३४॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत्॥ ३५॥ —महा०द्रोण०अ० १८९

राम से विभीषण की—

राघवः सत्यचेष्टाभिः सम्यक् सुचरितेङ्गितैः। यदा तत्त्वेन तुष्टोऽभूत् तत एनमपूजयत॥ ४८॥

—महा० वन० अ० २८२

ब्राह्मणों से शूद्र की—

तत्र कश्चित् समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः। आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्त तपस्विभिः॥ ११॥

—महा० अनुशासन० अ० १०

अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमभिपूजयेत्॥ ४८॥ —महा० अनु० अ० ४८

इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि 'नमः' और 'पूजा' शब्द प्रत्येक के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं और अर्थों के अनुसार भी प्रत्येक के लिए पूजा और नमः शब्द के प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं है।

रहे 'ते' शब्द के अर्थ। सो 'ते' शब्द 'युष्मद्' का प्रयोग है और मध्यम पुरुष के लिए युष्मद् शब्द ही प्रयुक्त हो सकता है। आप मध्यम पुरुष को भाषा में जिन शब्दों से भी सम्बोधित करना चाहें वही अर्थ 'युष्मद्' वा 'ते' शब्द का हो सकता है। आप, तू, तुम, श्रीमान्, जनाब इत्यादि—आप जिन शब्दों से भी मध्यम पुरुष को सम्बोधित करना चाहें वही अर्थ 'ते' शब्द का होगा और नमः शब्द के साथ लगने से वैसे भी 'ते' शब्द निन्दनीय नहीं रहता, जैसेकि—

युधिष्ठिर ने अर्जुन के धनुष को धिक्कार कहा तो अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा-अनुसार युधिष्ठिर का सिर उतारने को तैयार हो गया। तब कृष्ण के कहने से अर्जुन ने युधिष्ठिर को मारने के बदले उसका अपमान करते हुए 'त्वम्' शब्द का प्रयोग किया। फिर अर्जुन प्रायश्चित्तार्थ आत्महत्या करने

को तैयार हो गया। तब कृष्ण ने 'त्वम्' कहकर अपमान करने का प्रायश्चित्त अर्जुन को यह बतलाया कि तुम अपनी प्रशंसा करो। जब यह सब कलह शान्त हो गया तब अर्जुन ने फिर युद्ध को जाते हुए युधिष्ठिर को नमस्ते कहा—

प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते॥ ३९॥

—महा० कर्ण० अ० ७०

अब यदि नमस्ते में प्रयुक्त 'ते' शब्द भी 'त्वम्' की भाँति अपमानजनक समझा जाता तो अर्जुन पुनः इस शब्द का प्रयोग क्यों करता जबकि पूर्व ही 'त्वम्' कहने के पाप का प्रायश्चित्त कर चुका था? इससे सिद्ध है कि नमस्ते में प्रयुक्त 'ते' शब्द 'त्वम्' की भाँति अपमानजनक नहीं है, अतः अर्थों के अनुसार 'ते' शब्द भी प्रत्येक के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

अतः सिद्ध हुआ कि नमस्ते शब्द हर प्रकार से परस्पर प्रत्येक के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, जैसीकि वेद की आज्ञा है—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः (यजुः० १६।३२) इत्यादि।

(५६१) प्रश्न—नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिए है और ईश्वर भी नमस्ते के उत्तर में नमस्ते नहीं करता। ईश्वर को छोड़ परस्पर में नमस्ते करना किसी वेदमन्त्र में नहीं लिखा; जहाँ कहीं नमस्ते किया है, करनेवाले को ईश्वर समझकर किया गया है। —पृ० ९१

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है कि नमस्ते करना केवल ईश्वर के लिए ही है, क्योंकि यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में वृक्ष, डाकू, ठग, चोर, बालक, तरखान, रथकार, कुम्हार, लुहार और कुत्तों तक के लिए भी नमस्ते करने की आज्ञा मौजूद है। ईश्वर नमस्ते के उत्तर में तो नमस्ते नहीं करता किन्तु जय रामजी, जय गोपालजी और जय राधाकृष्ण, जय सीताराम के बदले में तो अवश्य ही उन्हीं शब्दों में उत्तर देता होगा। यह शंका लिखते हुए शरम तो नहीं आई? आपकी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सर्वथा असत्य है कि जहाँ कहीं किसी को नमस्ते की है वहाँ उसे ईश्वर समझकर की है। देखिए संस्कृत साहित्य में किस प्रकार से नमस्ते का परस्पर में प्रयोग मिलता है—

(१) यमाचार्य ने नचिकेता को—

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽ स्तु। —कठ० १।१।९

(२) गार्गी ने याज्ञवल्क्य को—

सा होवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवलक्यानु मा शाधीति॥ —बृहद्० ४।२।१

(३) जनक का याज्ञवल्क्य को—

जनको ह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति॥

—बृहद्० ४।२।१

(४) विश्वामित्र ने वसिष्ठ को—

नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा॥ १७॥ —वाल्मी० बाल० स० ५२

(५) सीता ने वृक्ष को—

नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्॥ २४॥ वाल्मी० अयो० स० ५५

(६) सीता ने राक्षस को—

मां हरोत्सृज काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम॥ ३॥ —वाल्मी० अरण्य० स० ४

(७) देवयानी ने शुक्राचार्य को—

नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे॥ ३०॥ —महा० आदि० अ० ८१

(८) विदुर ने दुर्योधन को—
यथा तथा तेऽस्तु नमश्च तेऽस्तु॥ १९॥ —महा० सभा० अ० ६३

(९) शकुनि ने युधिष्ठिर को—
ज्येष्ठो राजन् वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ॥ १९॥ —महा० सभा० अ० ६४

(१०) दमयन्ती ने पर्वत को—
शरण्य बहुकल्याण नमस्तेऽस्तु महीधर॥ ४२॥ —महा० वन० अ० ६४

(११) नल ने दासी को—
वयं च देशातिथयो गच्छ भद्रे नमोऽस्तु ते॥ २८॥ —महा० वन० अ० ७५

(१२) व्यास ने देवदूत को—
देवदूत नमस्तेऽस्तु गच्छ तात यथासुखम्॥ ३८॥ —महा० वन० अ० २६०

(१३) दूतों ने दुर्योधन को—
सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ॥ १७॥ —महा० विराट० अ० २५

(१४) द्वारपाल ने धृतराष्ट्र को—
संजयोऽयं भूमिपते नमस्ते॥ ५॥ —महा० उद्योग० अ० ३१

(१५) संजय का धृतराष्ट्र को—
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ॥ ९॥ —महा० भीष्म० अ० ४

(१६) अर्जुन ने कृष्ण को—
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ ३९॥
—महा० भीष्म० अ० ३५

(१७) युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य को—
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते॥ ४७॥ —महा० भीष्म० अ० ४३

(१८) भीष्म ने कृष्ण को—
नमोऽस्तु ते शार्ङ्ग गदासिपाणे। —महा० भीष्म० ५९।९६

(१९) कृष्ण ने धृतराष्ट्र को—
शिवेन पाण्डवान् ध्याहि नमस्ते भरतर्षभ॥ ५१॥ —महा० अनु० अ० ११८

(२१) युधिष्ठिर ने भीष्म को—
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जाह्नवीसुत॥ १९॥ —महा० अनु० अ० १६७

(२२) ब्राह्मण ने युधिष्ठिर को—
कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ॥ ५०॥ —महा० आश्रमवासी० अ० १०

(२३) महादेव ने पार्वती को—
तथा प्रणयभंगेन भीतो भूतपतिः स्वयम्।
पादयोः प्रणमन्नेव भवानीं प्रत्यभाषत्॥ ४०॥ —शिव० वायु० खं० १ अ० २४

(२४) ब्रह्मा ने पुत्र को—
नमस्ते भगवान् रुद्र भास्करामिततेजसे॥ ४१॥
भगवन् भूतभव्येश मम पुत्र महेश्वर॥ ४५॥
—शिव० वायु० खं० १ अ० १२

(५६२) प्रश्न—आर्यपण्डित **'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च'** पर दौड़ लगाते हैं कि इस मन्त्र में परस्पर नमस्ते करना लिखा है। (१) इस मन्त्र में समष्टि-व्यष्टिरूप परमात्मा को नमस्कार

किया है। (२) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है कि बड़ों को अन्न दो और उनका सत्कार करो और छोटों को अन्न दो और उनका सत्कार करो। फिर नमस्ते करना कहाँ से आ गया? (३) इस मन्त्र में तो केवल 'नमः' है, नमस्ते नहीं है। —पृ० ९१

उत्तर—स्वामीजी ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय नमो मध्याय
चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च। —यजुः० १६।३२

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग अत्यन्त वृद्धों और अति बालकों का सत्कार और अन्न तथा ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण और छोटे भाई वा नीच का भी सत्कार वा अन्न, क्षत्रियबन्धु वा वैश्य और ढीटपन छोड़े हुए सरल स्वभाववाले इन सबका सत्कार आदि और नीच कर्मकर्त्ता वा म्लेच्छ तथा अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का अन्नादि से सत्कार करो॥३२॥

भावार्थ—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रिय आदि ब्राह्मणों और ब्राह्मणादि क्षत्रियों का निरन्तर सत्कार करें। सब लोग इसी वेदोक्त प्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें॥३२।

(१) आपके विचारानुसार जब संसार के सारे रूप ब्रह्म के ही रूप हैं तो सब छोटे-बड़े मनुष्य भी समष्टि-व्यष्टिरूप परमात्मा के ही रूप हुए, फिर परस्पर नमस्ते से सत्कार करने में क्या आपत्ति है?

(२) स्वामीजी ने अन्न के साथ जो सत्कार अर्थ किया है उसका अभिप्राय भावार्थ में बतला दिया है कि परस्पर नमस्ते वाक्य से सत्कार करें।

(५६३) प्रश्न—जिनको नमस्ते किया गया है उसने लौटकर नमस्ते नहीं कहा, फिर परस्पर में नमस्ते करना क्या वेदों का गला घोंटना नहीं है? —पृ० ९१

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा भी निर्मूल है कि नमस्ते के उत्तर में किसी ने नमस्ते नहीं कहा। प्रथम तो वेद की आज्ञा है कि सबको आपस में नमस्ते करनी चाहिए और साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण भी विद्यमान हैं, जैसेकि—

सावित्री ने ब्रह्मा से नमस्ते की—

यद्येष ते स्थिरो भावस्तिष्ठ देव नमोऽस्तु ते॥१४०॥

इसके उत्तर में ब्रह्मा ने सावित्री को नमस्ते की—

पादयोः पतितस्तेऽहं क्षम देवि नमोऽस्तु ते॥१४४॥ —पद्म० सृ० अ० १७

यहाँ पर स्पष्टरूप से वर्णन है कि पति-पत्नी, ब्रह्मा तथा सावित्री ने परस्पर नमस्ते की, अतः परस्पर नमस्ते का प्रयोग वेदानुकूल तथा जय रामजी की, जय कृष्णजी की, जय राधाकृष्ण, जय सीताराम, जय गोमाता इत्यादि शब्दों का परस्पर मिलने में प्रयोग करना वेदविरुद्ध है। क्या कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित पृथिवी पर मौजूद है कि जो परस्पर मिलने में उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग करना वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५६४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ९१, पं० ६ में लिखा है कि—

'भोग के अन्त में सोंठ, केशर, असगन्ध, छोटी इलायची और सालमिश्री दूध में डालकर और गरम जल से स्नान करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठण्डा दूध है, उसको यथारुचि पीकर दोनों अलग अपनी-अपनी शय्या में शयन करें।'

अब पूछना यह है कि यह नुस्खा कौन-से वेद में लिखा है क्या यह नुस्खा स्वामीजी का

स्वकीयानुभूत तो नहीं है? पृ० ९८, पं० २

उत्तर—आपके विचार में क्या यह नुस्खा वेदविरुद्ध या हानिकारक है? यदि ऐसी बात है तो आपको कोई वेदमन्त्र देकर स्वामीजी के लेख का वेद से विरोध या नुस्खे में कोई त्रुटि बतलाकर उससे हानि बतलानी चाहिए थी, किन्तु आपने ऐसा नहीं किया, अतः आपका प्रश्न प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान में आकर आपकी पराजय का कारण है। रही बात वेदानुकूलता की, सो इसके बारे में हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि स्वामीजी का उपर्युक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है। वेद में बीजरूप से वैद्यकशास्त्र का मूल विद्यमान है, जैसेकि—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टिं यं च वयं द्विष्मः॥
—यजुः० ६।२२

भाषार्थ—हे परमेश्वर! आपकी कृपा से जो प्राण और जल आदि पदार्थ तथा सोमलता आदि सब ओषधि हमारे लिए सुखकारक हों तथा जो दुष्ट, प्रमादी, हमारे द्वेषी लोग हैं और हम जिन दुष्टों से द्वेष करते हैं उनके लिए विरोधिनी हों, क्योंकि जो धर्मात्मा और पथ्य के करनेवाले मनुष्य हैं उनको ईश्वर के रचे सब पदार्थ सुखवाले होते हैं और जो कुपथ्य करनेवाले तथा पापी हैं उनके लिए सदा दुःख देनेवाले होते हैं। इत्यादि मन्त्र वैद्यकविद्या के मूल के प्रकाश करनेवाले और सारा वैद्यकशास्त्र इन्हीं वेदमन्त्रों की सरल व्याख्या है, अतः स्वामीजी का लेख इस मन्त्र के अनुकूल होने से वेदानुकूल है। देखिए, आपके पुराण भी इसकी पुष्टि करते हैं, जैसेकि—

अश्वगन्धा घृतं दुग्धं क्वथितं पुत्रकारकम्॥ २८॥ —गरुड० आचार० अ० १७९

यवास्तिलाश्वगन्धा च मुशली सरला गुडम्। एभिश्च रचितां जग्ध्वा तरुणो बलवान् भवेत्॥ ५॥
—गरुड० आचार० अ० १८२

घी और उबाले हुए दूध में असगन्ध का सेवन पुत्र के देनेवाले होते हैं।

हाँ, पुराणों में वेद के विरुद्ध अनेक लेख मौजूद हैं, जैसेकि—

गुडस्य तु पुराणस्य पलमेकं तु भक्षयेत्। स्त्रीसहस्त्रं च संगच्छेत् पुमान् बलयुतो हर॥ २॥
—गरुड० आचार० अ० १८२

निजशुक्रं गृहीत्वा तु वामहस्तेन यः पुमान्। कामिनीचरणं वामं लिंपेत्स स्यात् स्त्रियाः प्रियः॥ १५॥

क्या कोई पौराणिक वाममार्गी संसार में जीता-जागता विद्यमान है जो इस अश्लील लेख को वेदानुकूल सिद्ध कर सके और क्या ये नुस्खे व्यासजी के स्यवं अनुभूत थे?

(५६५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४ में लिखा है कि—

'जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री-पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य-प्राप्ति-समय अपानवायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।'

क्या कोई जीता-जागता आर्यसमाजी इसको वैदिक सिद्ध कर सकता है? क्या यह स्वामीजी का अपना अनुभव है? —पृ० ९८, पं० २१

उत्तर—गर्भाधान मनुष्य के पैदा करने का प्रथम पवित्र सम्बन्ध है। यदि वेद ही इसकी शिक्षा न देगा तो कौन देगा? अतः स्वामीजी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है। वेदप्रमाण, जैसेकि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत्त उल्बं जहाति जन्मना॥ ७६॥
मुखꣳसदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती॥ —यजुः० १९।७६, ८८

उपनिषत्-प्रमाण, जैसेकि—

स ह प्रजापतिरीक्षांचक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठां कल्पयानीति स स्त्रियꣳससृजेताꣳसृष्ट्वाऽध उपास्त तस्मात् स्त्रियमध उपासीत्—इत्यादि॥ २॥

तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ इत्यादि॥ ३॥

अथास्य ऊरू विहापयति विजिहीथां द्यावापृथिवी इति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं सन्धाय त्रिरेनामनुलोमामनुमार्ष्टि। विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते। गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि गर्भं पृथुष्टुके। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥ २१॥ —बृहदारण्यक अ० ६, ब्राह्मण ४

संवसेयातां स्नानात्प्रभृति युग्मेष्वहःसु पुत्रकामौ, अयुग्मेषु दुहितृकामौ॥ ५॥ न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा सं सेवेत। न्युब्जाया वातो बलवान् स योनिं पीडयति। पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा स च्युतः पिदधाति गर्भाशयम्। वामे पार्श्वे पित्तं तदस्याः पीडितं विदहति रक्तं शुक्रं च। तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात्॥ ६॥ —चरक० शारीरिक० अ० ८

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुपृक्तम्।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्द्धयतीह गर्भम्॥ १४॥

—महा० आदि० अ० ९०

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि स्वामी जी का गर्भाधान-विषयक लेख सर्वथा वेदानुकूल है। अब पौराणिकों का वेदविरुद्ध गर्भाधान देखिए—

आकर्षण—

महिषी अश्वसमीपे शेते। अश्वदेवत्यम्। हे अश्व गर्भधं गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजानि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भधं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि॥

—महीधर य० २३। १९

अश्वाधान—

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति॥ —महीधर य० २३। २०

अर्जुनाधान—

आराधयन्त्या ताम्बूलमर्पयन्त्या शुचिस्मितम्। समालोक्यार्जुनीयाऽसौ मदनावेशविह्वला॥ १८९॥
ततस्तां च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित्। तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्वक्रीडावनान्तरे॥ १९०॥
यथाकामं रहो रेमे महायोगेश्वरो विभुः॥ १९१॥ —पद्म० पाताल० अ० ७४

रामाधान—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छत्सुविग्रहम्॥ १६६॥
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूतास्तु गोकुले। हरिं संप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥ १६७॥

—पद्म० उत्तर० अ० २४५

ब्रह्माधान—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः। ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो॥ २६॥

—भागवत० स्क० ३ अ० २०

कर्णाधान—

तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शंभोर्महर्षिभिः। कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम्॥ ६॥

—शिव० शत० रुद्र० अ० २०

मुखाधान—

अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत्॥ ५५॥

नासिकाधान—

सा तं विवस्वतः शुक्रं नासाभ्यां समधारयत्॥ ५६॥ —भविष्य० ब्राह्म० अ० ७९

अश्वाधान—

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा। अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया॥ ३४॥
होताध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्॥ ३५। —वाल्मी० बाल० स० १४

क्या कोई इस प्रकार का पौराणिक पण्डित किसी वीर रमणी ने भूतल पर पैदा किया है जो अश्वाधान, मनुष्यधान, कर्णाधान,मुखाधान, नासिकाधान इत्यादि गर्भाधानों को वेदानुकूल सिद्ध कर सके? रही स्वामीजी के अनुभव की बात, सो सारी बातें अपने ही अनुभव से नहीं लिखी जातीं, दूसरों के अनुभव से भी लाभ उठाया जाता है, जैसेकि भीष्म से युधिष्टिर ने प्रश्न किया है—

स्त्रीपुंसयोः सम्प्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत्। एतस्मिन् संशयो राजन् यथावद्वक्तुमर्हसि॥ १॥

स्त्री और पुरुष के संयोग में स्पर्शसुख किसको अधिक होता है? हे राजन्! इस संशय के बारे में आप यथायोग्य उत्तर देने की कृपा करें॥ १॥ इस प्रश्न पर भीष्म ने उत्तर दिया कि—

एवं स्त्रिया महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते॥ ५३॥ —महा० अनु० अ० १२

इस प्रकार से हे महाराज! स्त्री को पुरुष-संयोग में आनन्द अधिक होता है॥ ५३॥

क्या आपके विचर में यह भी भीष्म का अपना अनुभव था?

(५६६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृ० ४०, पं० १७ में लिखा है कि—

'उत्तम ब्रह्मचर्य के सेवन से पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्षपर्यन्त आयु को बढ़ावें' ज़रा हमको वह वेदमन्त्र तो दिखलाया जावे जिसमें मनुष्य की चार सौ वर्ष की आयु बनाने का हुक्म हो। सभी आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्दजी मरणपर्यन्त आबाल ब्रह्मचारी रहे, फिर वह चार सौ वर्ष की अवस्था होकर क्यों न मरे, बीच में ही क्यों मर गये? —पृ० ९९, पं० ५

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है, क्योंकि वेदों में अधिक-से-अधिक मनुष्य की आयु चार सौ वर्ष ही लिखी है, जैसाकि—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।
—यजुः० ३६। २४

इस वेदमन्त्र में सौ वर्ष से अधिक भी मनुष्य की आयु होने का प्रमाण मौजूद है, अतः प्रतीत हुआ कि यह मनुष्य की साधारण आयु का वर्णन है। मनुष्य की विशेष आयु का वर्णन भी वेद ने किया है, जैसेकि—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥ ६॥
—यजुः० ३

इस वेदमन्त्र में मनुष्य की साधारण आयु से विशेष आयु तिगुनी हो सकती है, यह वर्णन विद्यमान है।

अब यदि सौ और सौ से अधिक का तिगुना किया जावे तो चार सौ होने में क्या सन्देह हो सकता है? इन्हीं वेदमन्त्रों की सरल व्याख्या करते हुए मनुजी महाराज लिखते हैं कि—

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥ ८३॥
—मनु० १

रोगरहित, सर्वसिद्धियों के देनेवाली मनुष्य की आयु सत्ययुग में चार सौ वर्ष की होती है और इनकी आयु त्रेतादि में एक-एक पाद घट जाती है॥ ८३॥

यहाँ पर कृत, त्रेता आदि समयवाचक नहीं है, अपितु राजा का नाम है, क्योंकि राजा के धर्मात्मा वा पापी होने से प्रजा धर्मात्मा वा पापी होती है और श्रेष्ठ वा निकृष्ट आचार के अनुसार आयु बढ़ती-घटती रहती है, जैसेकि—

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च। राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते॥ ३०१॥
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्। कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्॥ ३०२॥

—मनु० ९

आचाराल्लभते ह्यायुः। —मनु० ४।१५६

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि आयु-सम्बन्धी स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। रहा स्वामीजी का पहले मरना, सो उनकी वह मौत स्वाभाविक नहीं अपितु नैमित्तिक अर्थात् अकालमृत्यु थी। यदि धर्मद्वेषी, गोत्रहत्यारे, देशद्रोही, पापी लोग उनको ज़हर न देते तो स्वामीजी की आयु अवश्य ही चार सौ वर्ष की होती।

हाँ, सनातनधर्म के ग्रन्थों में प्रतिपादित मनुष्य की आयु वेदविरुद्ध अवश्य है, जैसेकि—

दशरथ की आयु साठ हजार वर्ष—

षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशक॥ १०॥ —वाल्मी० उत्तर० स० ७३

पाँच हजार वर्ष का बालक—

अप्राप्तयौवनं बालं पंचवर्षसहस्रकम्॥ ५॥ —वाल्मी० उत्तर० स० ७३

इत्यादि-इत्यादि अनेक लेख विद्यमान हैं। क्या संसार में कोई ऐसा जीता-जागता पौराणिक पण्डितंमन्यः विद्यमान है जो इस प्रकार की आयु को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आने का साहस कर सके?

(५६७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ७, पृ० २१४, पं० ४ में लिखा है कि—

'ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है'।

क्या कोई आर्यसमाजी इस चण्डुखाने की गप्प को सत्य सिद्ध करने के लिए लेखनी उठाकर हमको यह बतलाएगा कि अमुक वेद के अमुक मन्त्र में लिखा है ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है?

—पृ० ९९, पं० २५

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है, क्योंकि ईश्वर अनादि, अनन्त अर्थात् नित्य पदार्थ है और नित्य पदार्थों से काल का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जब ईश्वर के साथ काल का सम्बन्ध ही नहीं है तो फिर ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता नहीं तो क्या है? यदि जीवों की अपेक्षा से कहो तो भी एक अंश में ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है। ईश्वर भूत तथा वर्त्तमान को जानता है तथा अपने कर्मों के भविष्य तथा जीवों के कर्मानुसार अनेक भविष्यफल को भी ईश्वर जानता है, किन्तु जीव से स्वतन्त्रतापूर्वक किये जानेवाले भविष्य-कर्मों को ईश्वर नहीं जानता, क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसमें वेदप्रमाण इस प्रकार है—

परमात्मा अजन्मा है—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीम्॥ —ऋ० १।६७।३

शन्नो अज एकपाद्देवो अस्तु॥ —ऋ० ७।३५।१३

परमात्मा अमर है—

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन। —ऋ० १०।४८।५

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवः। —ऋ० ४।२।१

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। —यजुः० ४०।२

काल का लक्षण—

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति॥ —वैशे० अ० २ आ० २ सू० ९

अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

किन्तु पुराणों में जीव को कठपुतली की भाँति कर्म करने में परतन्त्र माना है, जैसाकि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया महादेव हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥४॥

—शिव० रुद्र० सृष्टि० अ० १३

क्या कोई ऐसा वीरपुत्र पौराणिक माता ने पैदा किया है जो इस प्रकार जीव की परतन्त्रता को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५६८) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७, पृ० १८७, पं० ११ में लिखा है कि—'मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर करे'। वेद ने जो मूर्त्ति के द्वारा मन अवरोध करना बतलाया था उसका तो स्वामीजी ने खण्डन कर दिया और तुम्हारे जीवन को बरबाद करने के लिए नाभि, कण्ठ, नासिका, प्रभृति स्थानों में मन स्थिर करना लिखा। यदि स्वामी दयानन्दजी का यह लेख वैदिक है तो फिर इसमें वैदिक प्रमाण दिखाओ। —पृ० १००, पं० १४

उत्तर—स्वामीजी का उपर्युक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है, जैसाकि—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियाः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥१॥

—यजुः० ११

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥२६॥

—अथर्व० १०।२

इन दोनों मन्त्रों में मन को स्थिर करके योगाभ्यास करने की आज्ञा विद्यमान है। इसकी सरल व्याख्या, जैसाकि—

उपस्थाप्योदरे तौ च नासिकाग्रमधो भ्रुवोः। भ्रुकुट्या चैव मनसा शनैर्धारयतस्तदा॥१८॥

—महा० शान्ति० अ० २००

नाभ्यां कण्ठे च शीर्षे च हृदि वक्षसि पार्श्वयोः। दर्शने श्रवणे चापि घ्राणे चामितविक्रम॥३९॥
स्थानेष्वेतेषु यो योगी महाव्रतसमाहितः। आत्मना सूक्ष्ममात्मनं युंक्ते सम्यग्विशाम्पते॥४०॥
स शीघ्रमचलप्रख्यं कर्म दग्ध्वा शुभाशुभम्। उत्तमं योगमास्थाय यदीच्छति विमुच्यते॥४१॥

—महा० शान्ति० अ० ३००

आत्मा के द्वारा परमात्मा का अनुभव होता है। पाषाण में परमात्मा तो है, परन्तु आत्मा नहीं है और मनुष्य के शरीर में आत्मा और परमात्मा दोनों विद्यमान हैं, अतः पाषाणमूर्त्ति में ध्यान निरर्थक तथा मनुष्य-शरीर में सार्थक है। पाषाणमूर्त्तियों के ध्यान से उनके निर्माता मनुष्य का विश्वास तथा मनुष्य के अंगों की कारीगरी के चिन्तन से मनुष्य-शरीर के निर्माता परमात्मा की हस्ती का विश्वास होता है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हाँ, पुराणों में जो देवताओं के लिंग, स्तन, जाँघ तथा योनि का ध्यान लिखा है वह सर्वथा

वेदविरुद्ध है, जैसाकि—

लक्ष्मी के स्तनों का ध्यान—

स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयम्॥ ४४॥ —भविष्य० उत्तर० अ० ३७

भवानी की जंघा का ध्यान—

जंघे शोकविनाशिन्यायानन्दाय नमः प्रभो॥ ५॥ —भविष्य० उत्तर० अ० २७

शिव के लिंग का ध्यान—

मेढ्रं चैवानुराधासु अनंगांगहराय च॥ ८॥ —भविष्य० उत्तर० अ० १०९

क्या कोई पौराणिक पण्डित इस प्रकार के ध्यान को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है?

(५७९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास २, पृ० २२, पं० १० में लिखा है कि 'धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जबतक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे'। कितनी असम्भव बात है कि जिस दिन गर्भाधान हो उसी दिन से गर्भ में पड़े हुए वीर्य को सुशीलता सिखा दी जावे? वेद का सिद्धान्त है कि सप्तम मास में चेतना पाकर जीव गर्भ के दुःखों से घबरा जाता है। —पृ० १०१, पं० ११

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है कि जीव का सातवें मास में गर्भस्थित शरीर से सम्बन्ध होता है, तथा आपने इस बारे में कोई वेद का प्रमाण भी नहीं दिया। हमारी प्रतिज्ञा है कि जीव कर्मानुसार पिता वा माता के शुक्र द्वारा ही गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है, अन्यथा गर्भ गन्दा होकर नष्ट हो जावे, जैसेकि बिना जीव के अण्डा गन्दा होकर नष्ट हो जाता है। यदि उसी समय जीव का प्रवेश न हो तो अण्डा खाने और गर्भपात में कोई दोष न रहे और गर्भाधान, पुंसवनादि गार्भिक संस्कारों का करना व्यर्थ हो जावे, अतः हमारी प्रतिज्ञा सर्वथा सत्य है। इसी कारण से वेद ने गर्भाधान से पूर्व माता-पिता को पूर्व तैयारी करने की आज्ञा दी है, क्योंकि माता-पिता के प्रत्येक आचार-व्यवहार का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है, जैसेकि—

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथिस्तस्मिन् मत्स्व।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वधा विश्वाहारप एधते गृहे। —यजुः० ८।५

भाषार्थ—हे विविध प्रकार के स्थानों में बसनेवाले अविनाशीस्वरूप विद्वान् गृहस्थ! जिसमें सोमलतादि ओषधियों के रस पीने में आएँ ऐसा जो आपका गृहाश्रम है, उसमें आप सब दिन आनन्दित रहो। हे गृहाश्रम करनेवाले गृहस्थो! आप लोग इस गृहाश्रम के वाग्व्यवहार के लिए सत्य ही का धारण करो। जिस गृहाश्रम में स्त्री-पुरुष प्रशंसनीय गृहस्थाश्रम के धर्म को प्राप्त होते हैं, उसमें कामना पूर्ण करनेवाला, निष्पाप, धर्मात्मा, पुरुषार्थी, वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है और वह उत्तम धन को प्राप्त होता है। इसके अनन्तर वह विद्या, कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है॥ ५॥

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि जो स्त्री-पुरुष सदाचारी रहेंगे उन्हीं के धर्मात्मा सन्तान पैदा होगी। वेद के इस भाव की व्याख्या आपके ग्रन्थों में अनेक प्रकार से विद्यमान है, जैसेकि—

गर्भ से पूर्व भोजन का प्रभाव—

स य इच्छेत् पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित वै॥ १४॥ इत्यादि —बृह० अ० ६ ब्राह्मण ४

विवाह का प्रभाव भावी सन्तान पर—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्व्यशः। ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः॥ ३९॥

—मनु० ३

माता के आचार का प्रभाव—

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्। तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः॥ ९॥

—मनु० ९

ऋतु अवस्था का सन्तान पर प्रभाव—

स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान्। पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्॥ ११४॥

—वाल्मी० युद्ध० स० १२८

कथा सुनने का गर्भ पर प्रभाव—

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता॥ ४६॥

ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता॥ ४७॥ —महा० स्वर्गारो० अ० ५

जीव का वीर्य के साथ गर्भ में प्रवेश—

जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः। स्त्रीणा पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत॥ ३४॥

—महा० अनु० अ० १११

महोष्मान्तर्गतश्चापि गर्भत्वं समुपेयिवान्। दशमासान् वसन् कुक्षौ नैषोऽन्नमिव जीर्यते॥ ११॥

—महा० शान्ति० अ० २५२

गर्भ-समय माता के आँखें बन्द करने का प्रभाव—

महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति॥ ९॥

किन्तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति॥ १०॥

—महा० आदि० अ० १०६

गर्भ-समय माता के भय का प्रभाव—

यस्मात् पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह।

तस्मादेष सुतस्ते वै पाण्डुरेव भविष्यति॥ १७॥ —महा० आदि० अ० १०६

गर्भ-समय माता की प्रसन्नता का प्रभाव—

अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः। धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः॥ २७॥

—महा० आदि० अ० १०६

इत्यादि अनेक प्रमाण विद्यमान हैं जो सिद्ध करते हैं कि गर्भाधान से ही माता अपने बच्चे को अपने आचार-विचार द्वारा शिक्षा देती है।

हाँ, पुराणों में असम्भव बातें अवश्य हैं, जैसेकि—

गर्भ में वेद पढ़ना, बोलना, पैर अड़ाना—

अयं च मे महाभाग कुक्षावेव बृहस्पते। औतथ्यो वेदमत्रापि षडङ्गं प्रत्यधीयत्॥ ११॥

उत्सृजन्तं तु तं रेतः सगर्भस्थोऽभ्यभाषत॥ १४॥

शक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भगतो मुनिः। पद्भ्यामरोधयन्मार्गं शुक्रस्य च बृहस्पतेः॥ १७॥

—महा० आदि० अ० १०४

गर्भ में से वेद पढ़ने की आवाज—

पुत्रिकस्यैष सांगस्य वेदस्याध्ययनस्वनः। पुरा सांगस्य वेदस्य शक्तेरिव मया श्रुतः॥ १४॥

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते। समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यस्यतो मुने॥ १५॥

[गीता० सं० में अ० १७६।—सं०]—महा० आदि० अ० १७९

क्या कोई पौराणिक पण्डित इन असम्भव घटनाओं को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ है?

(५७०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृ० ३५, पं० १९ में लिखा है कि—'आचमन से कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति थोड़ी-सी होती है'। आर्यसमाजी कान खोलकर सुन लें—जल से कफ की निवृत्ति नहीं होती, वृद्धि होती है। जल से कफ की निवृत्ति का होना स्वामी दयानन्दजी का यह मिथ्या गपोड़ा तुमने माना कैसे? क्या वेद में आचमन करने की आज्ञा लिखी है और आचमन से कफ की निवृत्ति होना वैदिक धर्म है? यदि है तो श्रुति पेश की जाए। —पृ० १०, पं० १५

उत्तर—यहाँ पर स्वामीजी का कफ से अभिप्राय उस खंगार से है जो कण्ठ को रोक लेता है। आचमन करने से वस्तुतः गला खुल जाता है, यह प्रत्यक्ष ही है। यहाँ पर रोगी की चिकित्सा नहीं हो रही, अपितु, सन्ध्या का प्रकरण है, अतः यहाँ कफ से अभिप्राय त्रिदोषवाले कफ का नहीं है। इसलिए स्वामीजी ने भ्रम दूर करने के लिए लिखा कि 'कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति' होती है और वह भी थोड़ी-सी और फिर 'पञ्चमहायज्ञविधि' में यह भी लिख दिया है कि यदि आवश्यकता न हो तो न करें। फिर यहाँ पर कफ के साथ पित्त शब्द भी लिखा है कि जिसको आपने हज़म कर लिया। पुस्तक का असल पाठ यह है कि—

"**आचमन**—उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगाके करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे। न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी-सी होती है।"

पुस्तक के मूल पाठ को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यहाँ पर कफ से मतलब कण्ठस्थ खंगार से है। रही चिकित्सा की बात, सो महाराज! उसके विविध प्रकार हैं। आजकल 'होमोपैथिवाले' कफ की निवृत्ति भी जल ही से करते हैं, परन्तु यहाँ तो चिकित्सा का प्रकरण ही नहीं है। रही वेदानुकूलता की बात, सो आचमन करना सर्वथा वेदानुकूल है, जैसाकि—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ —यजुः० ३६।१२

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! जैसे इष्टसुख की सिद्ध के लिए पीने के अर्थ उत्तम जल हमको सुखकारी होवें, हमारे लिए सुख की वृष्टि सब ओर से करें, वैसी कृपा करें।

इस मन्त्र में सुखसिद्ध के लिए जल पीने की आज्ञा स्पष्ट है जिसमें आचमन भी शामिल है। इसी की व्याख्या मनुजी करते हैं कि '**त्रिराचामेदपः पूर्वम्।**' मनु० २।६० और स्वामीजी ने इसका समाधान किया है कि आचमन करने का क्या प्रयोजन है। यदि स्वामीजी ने प्रयोजन ग़लत बतलाया है तो कृपया आचमन का प्रयोजन आप ही बतलाने का कष्ट करें।

हाँ, पुराणों के आचमन बड़े विचित्र हैं, ज़रा इनका समाधान करते जावें, जैसेकि—

अगस्त्य मुनि ने समुद्र का ही आचमन कर लिया—

एतावदुक्त्वा वचनं मैत्रावरुणिरच्युतः। समुद्रमपिबत् क्रुद्धः सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ३॥

—महा० वन० अ० १०५

क्या कोई पौराणिक पण्डित किसी सनातनधर्म प्रतिनिधि वा महामण्डल में जीता-जागता विद्यमान है जो इस प्रकार के आचमन को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५७१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृ० ३५ पं० २० में लिखा है कि 'मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है'। वेद के किसी मन्त्र में मार्जन करना और उससे आलस्य दूर होना नहीं लिखा। अभी तो वह स्नान करके आया है; स्नान से भी जिसका आलस्य न गया तो फिर जरा-से जल के छींटों से कैसे चला जावेगा? सनातनधर्मियों के गृह्यादि ग्रन्थों में तो मार्जन करना लिखा है, किन्तु वेद में न मार्जन है और न मार्जन से आलस्य का दूर होना। —पृ० १०६, पं० २३

उत्तर—अङ्गों पर जल छिड़कने से आलस्य दूर होता है यह बात तो प्रत्यक्ष है। कभी किसी को रातभर जागना हो तो वे यही उपाय करते हैं। यह स्वामीजी ने मार्जन का प्रयोजन लिखा है। यदि यह ठीक नहीं है तो आप बतलावें मार्जन क्यों किया जाता है। यदि स्नान किया हो तो मार्जन की जरूरत नहीं—यह बात स्वामीजी ने यहाँ पर ही लिखी है, परन्तु आपने अपने स्वभाव से विवश होकर उसे चुरा लिया है। स्वामीजी उपर्युक्त लेख के पश्चात् लिखते हैं कि—'जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे'। आप स्वयं मानते हैं कि सनातनधर्मियों के ग्रन्थों में मार्जन लिखा है। तो क्या वह वेद के विरुद्ध है? यदि विरुद्ध है तो आप क्यों करते हैं? यदि अनुकूल है तो फिर हमसे क्यों पूछते हैं? क्या इससे आप स्वमतानुज्ञानिग्रहस्थान में तो नहीं आ जाते? इस प्रकार के प्रश्न करते हुए कुछ शरम तो नहीं आती? रही वेदानुकूलता की बात, सो मार्जन सर्वथा वेदानुकूल है, जैसेकि—

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वꣳहि रिप्रम्प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳशग्माम्परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन्।

—यजुः० ४।२

इस मन्त्र में 'शुन्धयन्तु, पुनन्तु, शुचिः आपूतः' से मार्जन करने की आज्ञा तथा 'दीक्षातपसोस्तनूः, भद्रं, वर्णं, शिवां' से आलस्य दूर होकर पुरुषार्थी बनने का वर्णन मौजूद है।

किन्तु सनातधर्म में विचित्र-विचित्र मार्जन हैं, जैसेकि—

दुर्वासा का मार्जन तथा रुक्मिणी-मार्जन—

कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्येव सत्वरः॥ २२॥
ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम्॥ २४॥
क्षिप्रमंगानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह॥ २५॥
तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम्॥ २६॥
स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम्।
तामपि स्मयमानां स पायसेनाभ्यलेपयम्॥ २७॥

—महा० अनु० अ० १५९

हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि कोई पौराणिक पण्डित मैदान में आकर इस विचित्र मार्जन को वेदानुकूल सिद्ध करे।

(५७२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३७, पं० १३ में लिखा है कि—

''अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है''।

वेद में कोई भी मन्त्र ऐसा नहीं है कि जिसमें हवन की वायु से दुर्गन्ध का नाश होना लिखा हो। —पृ० १०८, पं० २०

उत्तर—आपने स्वामीजी का पूरा लेख उद्धृत नहीं किया, वरना आपको शंका ही न होती। पूरा लेख इस प्रकार है—

''**प्रश्न**—चन्दनादि घिसके किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डालके व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो, जहाँ होम होता है वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से जैसे

सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी, इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।''

अब बतलाइए इसमें आपको क्या शंका है? क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष है कि धूप जलाने की भाँति हवन से भी दुर्गन्ध दूर होती है और यह वेदानुकूल है, जैसाकि—

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टम्प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥ —यजुः० १।१३

यह मन्त्र स्पष्ट रूप से वर्णन करता है कि हवन करने से वायु तथा जल शुद्ध होते हैं और दूर देश की दुर्गन्ध भी हवन से दूर होती है। यह बात मन्त्र में पड़े **शुन्धध्वम्, शुद्धाः, पराजघ्नुः,** तथा **शुन्धामि** पद स्पष्ट सिद्ध कर रहे हैं।

हाँ, सनातनधर्म के हवन की विचित्र ही गन्ध है, जैसाकि घोड़े के चर्बी की गन्ध—

पतत्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः। ऋत्विक् परमसंपन्नः श्रपयामास शास्त्रतः॥ ३६॥
धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः। यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन् पापमात्मनः॥ ३७॥
हयस्य यानि चांगानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः। अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताः षोडशर्त्विजः॥ ३८॥

—वाल्मी० बाल० स० १४

बालक की चर्बी की गन्ध—

सव्ये पाणौ गृहीत्वा तु याजकोऽपि स्म कर्षति। कुररीणामिवार्त्तानां समाकृष्य तु तं सुतम्॥ ४॥
विशस्य चैनं विधिवद्वपामस्य जुहाव सः। वपायां हूयमानायां गन्धमाघ्राय मातरः॥ ५॥
आर्त्ता निपेतुः सहसा पृथिव्यां कुरुनन्दन। सर्वाश्च गर्भानलभंस्ततस्ताः परमांगनाः॥ ६॥

—महा० वन० अ० १२८

क्या कोई पौराणिक इस प्रकार के हवन तथा गन्ध सूँघने को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है?

(५७३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३६, पं० ९ में लिखा है कि ''किसी धातु वा मिट्टी के उपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहरी और नीचे तीन वा चार अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे।'' वेद में ऐसी वेदी बनाने की कहीं पर भी आज्ञा नहीं।

—पृ० १०९, पं० २७

उत्तर—स्वामीजी ने वेदी के बनाने की सरल व्याख्या करके उसका ढङ्ग बतला दिया है, वरना यह आवश्यक नहीं है कि वेदी चौकोन ही हो। अपितु गोल, त्रिकोण आदि शक्ल पर भी बनाई जा सकती है। इस विषय में स्वामीजी महाराज लिखते हैं कि—

तथा वेदीदृष्टान्तेन त्रिकोणचतुष्कोणगोलश्येनाद्याकारवत्करणाद्रेखागणितमपि साध्यते।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषय०

रही बात वेदानुकूलता की, सो वेद में वेदी बनाने की, आज्ञा मौजूद है, जैसेकि—

वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि॥ —यजुः० २।१

इयं वेदिः परोऽअन्तः पृथिव्याः॥ —यजुः० २३।६२

इन दोनों मन्त्रों में वेदी बनाने का वर्णन विद्यमान है। हाँ, पौराणिक वेदि सर्वथा वेदविरुद्ध हैं, जैसाकि—

नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम्। उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः॥ ३०॥

शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये। ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा॥ ३१॥ पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा॥ ३२॥ —वाल्मी० बाल० स० १४

छिन्नस्थूणं वृषं दृष्ट्वा विलापं च गवां भृशम्। गोग्रहे यज्ञवाटस्य प्रेक्षमाणः स पार्थिवः॥ २॥ —महा० शान्ति० अ० २६४

चयनं कर्तुमिच्छन् फाल्गुनकृष्णप्रतिपदिपौर्णमासेष्टिं कृत्वा पुरुषाश्वगोऽव्यजानालभ्याजेन यागं कृत्वा पंचानां शिरांसि घृताक्तानि प्रथमचितावुपधानार्थं क्वचित्संस्थाप्य तेषां कबन्धान् यज्ञशेषं च मृद्युक्ते तडागादिजले प्रास्येत्। —महीधर य० ११।१

क्या कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित इस बूचड़खाने के रूप को धारण करनेवाली यज्ञवेदि को वेदानुकूल सिद्ध कर सकता है?

(५७४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३९, पं० २१ में लिखा है कि "मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएँ और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें"। (१) यह आपका गपोड़ा है 'कि जिन मन्त्रों से हवन किया जाता है उनमें हवन के गुण लिखे हैं।' प्रथम तो आपके यहाँ हवन के कुछ गुण ही नहीं। केवल एक गुण है कि हवन के वायु से दुर्गन्धि का नाश होता है। फिर क्या हवन के समस्त मन्त्रों में यही लिखा है कि हवन के वायु से दुर्गन्धि नष्ट हो जाती हैं। यदि ऐसा है तो वेद में पुनरुक्त दोष आ जावेगा। (२) आपने गायत्री मन्त्र से भी हवन करना लिखा है; अब आप बतलावें कि गायत्री मन्त्र में हवन के कितने गुण हैं। आपने जो गायत्री मन्त्र का भाषा टीका लिखा उसमें तो हवन का एक भी गुण नहीं लिखा? (३) "ओं अग्नये स्वाहा" से लेकर "स्विष्टकृते स्वाहा" तक जो १० मन्त्रों से हवन करना लिखा है। क्या आर्यप्रतिनिधि सभाओं में इतना दम है कि हवन के मन्त्रों में से हवन के गुण निकाल दें? (४) स्वामीजी का यह लेख सर्वथा असत्य तथा वेदविरुद्ध है। —पृ० १११, पं० १

उत्तर—आपको चोरी करने का स्वभाव तंग करता है। इससे प्रायः हर प्रश्न में स्वामीजी के पाठ को चुरा लेते हैं। यहाँ पर भी आपने स्वामीजी का पूरा लेख उद्धृत नहीं किया। देखिए स्वामीजी का पूरा पाठ इस प्रकार है—

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएँ और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें [वेद पुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे]।

आपने इस अन्तिम वाक्य को चुरा लिया है जिसको हमने कोष्ठक में दे दिया है। पूरे पाठ से ज्ञात होता है कि स्वामीजी ने मन्त्र पढ़ने के तीन प्रयोजन बतलाये हैं—(१) मन्त्रों में होम करने के लाभ की व्याख्या, (२) आवृत्ति से कण्ठस्थ होना, (३) वेद की रक्षा। अब ज़रा ध्यान दीजिएगा स्वामीजी ने जितने भी वेदमन्त्र हवन करने में लिखे हैं यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मन्त्र में तीनों ही प्रयोजन हों। किन्हीं मन्त्रों में हवन के लाभ की व्याख्या है, कोई मन्त्र कण्ठस्थ रखने के प्रयोजन से ही जोड़े गये हैं और किन्हीं मन्त्रों को वेद की रक्षार्थ ही जोड़ा गया है। आपने स्वामीजी के ग्रन्थों को पूरे तौर से नहीं पढ़ा। इसीलिए आप कह रहे हैं कि स्वामीजी हवन से केवल एक ही लाभ दुर्गन्ध दूर करना मानते हैं। लीजिए, हम आपको स्वामीजी के लिखे हुए हवन के लाभ बतलाते हैं—

[१] वायुशुद्धि, [२] जलशुद्धि, [३] रोगनिवृत्ति, [४] सुखप्राप्ति। (सत्यार्थ० समु० ३), [५] वृष्टि-आधिक्य, [६] संसार का उपकार, [७] दुर्गन्ध-नाश [भूमिका, वेदविषयविचार], [८] अन्नशुद्धि (यजुः० १।२०), [९] सूर्य की किरणों की शुद्धि (यजुः० १।२४, [१०])

ओषधि-शुद्धि [११] बुद्धि और शरीर के बल की वृद्धि (यजुः० १।२५), [१२] मन्त्रोच्चारण द्वारा तथा विद्वानों से शिक्षा (यजुः० ४।२४), [१३] हवन से त्रिलोकी के पदार्थ पुष्ट होते हैं (यजुः० ५।१३), [१४] हवन से ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्यों की शुद्धि (यजुः० २।६), [१५] ईश्वर की आज्ञा का पालन (यजुः० २।२३) इत्यादि-इत्यादि हवन करने के अनेक लाभ स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में वर्णन किये हैं।

अब आप अपने आक्षेपों का उत्तर सुनने की कृपा करें—

(१) चूँकि हवन करने से अनेक लाभ हैं, अतः वेदमन्त्रों में हवन के अनेक लाभों का व्याख्यान होने से वेद में पुनरुक्तदोष नहीं आ सकता।

(२) गायत्रीमन्त्र से हवन करने का यह प्रयोजन है कि मैं गायत्री मन्त्र में प्रतिपादित ईश्वर की आज्ञा का पालन करता हूँ, क्योंकि उसकी आज्ञा का पालन करना ही उसके तेजःस्वरूप को धारण करना है। वह परमात्मा मेरी बुद्धि को सद्धर्म में प्रेरित करे। वेद द्वारा ईश्वर की आज्ञा है कि '**गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि।** (यजुः० ५।**२**) 'हे मनुष्यो! मैं तुमको गायत्रीमन्त्र से उस अग्निहोत्र करने की आज्ञा देता हूँ।' बस गायत्री से हवन करना ईश्वर की आज्ञा पालन करना है जोकि लाभ नं० १५ में हम वर्णन कर चुके हैं।

(३) "**अग्नये स्वाहा**" से लेकर "**यदस्य कर्मणः**" तक नौ मन्त्रों में निम्न प्रकार से हवन के लाभों का वर्णन है—

(१) मैं ईश्वर की आज्ञा से अग्नि की शुद्धि के लिए होम करता हूँ। (२) मैं ईश्वर की आज्ञा से जल की शुद्धि के लिए हवन करता हूँ। (३) मैं ईश्वर की आज्ञा से प्रजा का पालन करने, वायु की शुद्धि के लिए हवन करता हूँ। (४) मैं ईश्वर की आज्ञानुसार सूर्य की किरणों को शुद्ध करने के लिए होम करता हूँ। (५) मैं ईश्वर की आज्ञा से भूमि पर वर्त्तमान अग्नि को शुद्ध करने के लिए हवन करता हूँ। (६) मैं ईश्वर की आज्ञा से अन्तरिक्ष में वर्त्तमान वायु की शुद्धि के लिए हवन करता हूँ। (७) मैं ईश्वर की आज्ञा से द्युलोक में वर्त्तमान सूर्य में स्थित पदार्थों को शुद्ध करने के लिए हवन करता हूँ। (८) मैं ईश्वर की आज्ञा से पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में वर्त्तमान अग्नि, वायु, आदित्य आदि समस्त लोक-लोकान्तरोंकी शुद्धि के लिए हवन करता हूँ। (९) मैं ईश्वर की आज्ञा से सम्पूर्ण लाभदायक पदार्थों को शुद्ध करने के लिए हवन करता हूँ।

(४) हवन में वेदमन्त्रों का उच्चारण वेदानुकूल है, जैसेकि—

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यायुरसि पुरूरवाऽसि। गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि॥ —यजुः० ५।२

इस मन्त्र में मन्त्रों द्वारा अग्निहोत्र करने की आज्ञा है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा युक्तियुक्त होने से सर्वथा सत्य है। हाँ, पौराणिक हवन वेद के विरुद्ध तथा उनके लाभ भी युक्तिशून्य हैं, जैसेकि—

त्वचा लोम्नाथशृङ्गैर्वा वालैः क्षीरेण मेदसा। यज्ञं वहति सम्भूय किमस्त्यभ्यधिकं ततः॥
—महा० अनु० अ० ८०

यहाँ पर गौ के त्वचा, बाल, सींग, दूध, चरबी आदि से हवन करने का वर्णन है।

यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः। एतान् पशून्नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि॥८॥
स तूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः। जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा॥११॥
—महा० शल्य० अ० ४

यहाँ पर मृतक गौवों के मांस से हवन करने का वर्णन है। क्या कोई जीता-जागता पौराणिक

पण्डित संसार में मौजूद है जो गोमांस से हवन करना वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५७५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३२, पं० १७ में लिखा है कि "इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके।" क्या आर्यसमाजी यह बतलावेंगे कि पाँच वर्ष से आठ वर्ष तक सब लड़कों को पाठशाला में भेजना किस वेदमन्त्र में लिखा है? साथ ही साथ यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह कौन-सा वेदमन्त्र है जिसमें इस विषय के लिए राजनियम का होना लिखा है। —पृ० ११३, पं० १

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है, जैसाकि—

माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। अग्निषोमाभ्यान्त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि॥

—यजुः० ६।९

इस मन्त्र में वर्णन है कि इस संसार में माता-पिता, बन्धुवर्ग और मित्रवर्ग को चाहिए कि अपने सन्तानादि को अच्छी शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य करावें, जिससे वे गुणवान् हों।

फिर वेद कहता है कि—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति। आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ १७॥

—अथर्व० ११।५

राजा विद्याध्ययन और वीर्यरक्षा द्वारा राष्ट्र की रक्षा करता है तथा अध्यापक ब्रह्मचर्य के साथ रहनेवाले विद्यार्थी की इच्छा करता है॥ १७॥

यहाँ पर स्पष्ट है कि राजा अपने राष्ट्र में रहनेवाले मनुष्यों को विद्या पढ़ाकर और ब्रह्मचर्य धारण करवाकर रक्षा करे।

इसकी सरल व्याख्या मनुजी करते हैं कि राजा कुमार-कुमारियों की रक्षा करें।

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्। कन्यानां संप्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० ७।१५२

यज्ञोपवीत देकर पढ़ाई आरम्भ—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

—मनु० २।१४०

यज्ञोपवीत समय—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥ ३६॥
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥ ३७॥

—मनु० २

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से राजा को शिक्षा का अधिकार तथा पाँचवें और आठवें वर्ष से शिक्षा का आरम्भ सिद्ध होता है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हाँ, सनातनधर्म्म में इसी आयु में सन्तानोत्पत्ति वेद के विरुद्ध है, जैसेकि—

पंचमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते॥ ४९॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा॥ ५०॥

—महा० वन० अ० १९०

क्या सनातनधर्मी यह बतलाने की कृपा करेंगे कि यह पाँच से आठ वर्ष तक की आयु में सन्तान पैदा करना किस वेद के अनुकूल है?

(५७६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, पृ० ३७, पं० १ में लिखा है कि "ओं, भू: और प्राणादि ये सब नाम परमेश्वर के हैं।" क्या भारत जननी ने किसी ऐसे आर्यसमाजी को पैदा किया है जो भू: और प्राण को ईश्वर के नाम सिद्ध कर दे? —पृ० ११४, पं० २

उत्तर—स्वामीजी ने इसी स्थान में प्रमाण दे रक्खा है कि "**भूरिति वै प्राण:**" यह "तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक ७ अनुवाक ५" का वचन है। जिससे सिद्ध है कि "भू:" के अर्थ प्राण हैं और प्राण नाम ईश्वर का है, अत: भू: भी ईश्वर का ही नाम हुआ। 'भू:' का अर्थ प्राण है यह प्रमाण तो स्वयं स्वामीजी ने दे ही रक्खा है। प्राण नाम ईश्वर का है, इसमें प्रमाण—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १॥
—अथर्व० ११।४

इसी का अनुवाद मनु ने किया है कि—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥
—मनु० १२।१२३

भूर्भुव: स्वस्तरुस्तार: सविता प्रपितामह:। यज्ञो यज्ञपतिर्यज यज्ञांगो यज्ञवाहन:॥ ११७॥
ईशान: प्राणद: प्राणो ज्येष्ठ: श्रेष्ठ: प्रजापति:॥ २१॥ —महा० अनु० अ० १४९

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि भू: और प्राण ये दोनों नाम ईश्वर के हैं।

हाँ, राम और कृष्ण ये दोनों नाम ईश्वर के नहीं हैं—

कृष्णवर्णा रात्री:। कृष्णं कृष्यतेर्निकृष्टो वर्ण:॥ —निरु० अ० २ खं० २०
अहश्च कृष्णं रात्रि: शुक्लं चाहरर्जुनम्॥ —निरु० अ० २ खं० २१
अधोराम: सावित्र इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते कस्मात् सामान्यादित्यधस्तात्तद्वेलायां तमो भवत्येतस्मात् सामान्यादधस्ताद्रामोऽधस्तात्॥ —निरु० अ० १२ खं०

कृष्ण और राम ये दोनों नाम काले और अँधेरे के हैं।

क्या भूतल पर कोई ऐसा पौराणिक किसी माता ने पैदा किया है जो राम और कृष्ण इन दोनों को ईश्वर के नाम सिद्ध कर सके?

(५७७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३८, पं० ४ में लिखा है कि—"प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छह-छह माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए।" क्या कोई आर्यसमाजी ऐसा पैदा हुआ है कि जो दयानन्द का आहुतियों के परिमाण और संख्या को वैदिक सिद्ध कर दे? —पृ० ११५, पं० २२

उत्तर—वेदों में दोनों समय अग्निहोत्र करने की आज्ञा है, जैसेकि—

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्नि: प्रात:प्रात: सौमनसस्य दाता॥ ३॥
प्रात:प्रातर्गृहपतिर्नो अग्नि: सायंसायं सौमनसस्य दाता॥ ४॥
—अथर्व० कां० १९ सू० ५५

इन दोनों मन्त्रों में प्रत्येक मनुष्य के लिए दोनों समय अग्निहोत्र की आज्ञा है। इन वेदमन्त्रों की सरल व्याख्या करते हुए ही स्वामीजी ने प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और प्रत्येक आहुति का परिमाण छह-छह माशे बतलाया है। स्वामीजी का यह देशकालानुसार आर्ष और स्मार्त विधान है जोकि उपर्युक्त वेदमन्त्रों के सर्वथा अनुकूल है। हाँ, सनातनधर्म में वेदविरुद्ध यज्ञ-कल्पनाएँ अवश्य हैं जैसे—

ततो यूपोच्छ्रये प्राप्ते षड् बैल्वान् भरतर्षभ। खादिरान् बिल्वसमितांस्तावत: सर्ववर्णिन:॥ २७॥
देवदारुमयौ द्वौ तु यूपौ कुरुपतेर्मखे। श्लेशमातकमयं चैकं याजका: समकल्पयन्॥ २८॥

यूपेषु नियता वासीत् पशूनां त्रिशती तथा। अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौन्तेयस्य महात्मनः॥ ३५॥

—महा० आश्वमेध० अ० ८८

श्रपयित्वा पशून् रम्यान् विधिवद् द्विजसत्तमाः। तं तुरंगं यथाशास्त्रमालभन्त द्विजातयः॥ १॥

शिष्टान्यङ्गानि यान्यासंस्तस्याश्वस्य नराधिप। तान्यग्नौ जुहुवुर्धीराः समस्ताः षोडशर्त्विजाः॥ ५॥

—महा० अश्वमेध० अ० ८९

क्या कोई ऐसा सनातनधर्म्मी संसार में पैदा हुआ है जो महाभारत में व्यासजी-लिखित इन १५ यूपों के बनाने, उनके साथ ३०१ पशु बाँधने, उन सब पशुओं के ब्राह्मणों के हाथ से मारे जाने और घोड़े के समस्त अङ्गों को १६ ऋत्विजों द्वारा अग्नि में हवन करने की याज्ञिक विधियों और संख्याओं को वैदिक सिद्ध करने में समर्थ हो सके?

(५७८) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३७, पं० २ में लिखा है कि—

"स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले।" क्या किसी आर्यसमाजी में साहस है कि स्वाहा शब्द के इस अर्थ को सत्य सिद्ध करके दिखला दे?

—पृ० ११४, पं० २५

उत्तर—स्वामीजी ने स्वाहा का जो अर्थ किया है वह सर्वथा वेदानुकूल तथा सत्य है, जैसेकि—

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

—यजुः० ३।९

इस मन्त्र में स्वाहा शब्द के क्या अर्थ हैं, इसपर निरुक्त कहता है कि—

स्वाहा इति वाङ्नामसु पठितम्। —निरु० अ० २ खं० २३

वाणी के नामों में स्वाहा शब्द का पाठ आया है। वह वाणी कैसी हो इसपर निरुक्त कहता है कि—

स्वाहेत्येतत् सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा। —निरु० अ० ८ खं० २१

'स्वाहा' का अर्थ है सत्य, श्रेष्ठ बोलना या अपनी आत्मा के अनुकूल वाणी। उपर्युक्त मन्त्र में स्वाहा का अर्थ निरुक्तकार की रीति से ग्रहण किया गया है, अतः स्वामीजी का अर्थ सर्वथा सत्य है। हाँ, पुराणों में इस प्रकार के मन्त्र अवश्य विद्यमान हैं कि जिनके कोई अर्थ ही नहीं, जैसेकि—

ओं हूँ हूँ प्रस्फुर लल लल कुल्व कुल्व चुल्व चुल्व खल्ल खल्ल मुल्व मुल्व गुल्व गुल्व तुल्व तुल्व फुल्ल फुल्ल धुल्व धुल्व **इत्यादि महाकौशिकमन्त्रः**॥—गरुड० आचार० अ० १३४

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक पण्डित पैदा किया है जो उपर्युक्त पौराणिक मन्त्र के अर्थ करने का साहस कर सके?

(५७९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ३८, पं० ११ में लिखा है कि—

'अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ'

(१) अग्निहोत्र की कथा तो यह है कि जिस प्रकार का अग्निहोत्र गृह्य और स्मृतियों में लिखा था उसको तो स्वामी दयानन्दजी ने उड़ा दिया और मनघड़न्त, वेदविरुद्ध एक नया अग्निहोत्र तैयार किया।

(२) यहाँ तो स्वामीजी यज्ञों को मानते हैं, किन्तु यजुर्वेदभाष्य में यज्ञों का सफ़ाया कर देते हैं। यजुर्वेद अध्याय १ दर्शपूर्णमासेष्टि, अ० ४ अग्निष्टोम, अ० ९ वाजपेय तथा राजसूययज्ञ, अ०

१० सौत्रामणि, अ० १६ शतरुद्रयाग, अ० २२-२३ अश्वमेध, अ० ३० परुषमेध, अ० ३२ में सर्वमेध यज्ञों का वर्णन है, किन्तु स्वामी दयानन्दजी वेद के असली अर्थ को सुनकर घबरा जाया करते थे। —पृ० ११८, पं० ४

उत्तर—स्वामीजी यज्ञ को महत्त्वपूर्ण कर्म मानते हैं। स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में अपना मन्तव्य बतलाते हुए लिखा है कि—

२८ '**यज्ञ**' उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प, अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्र आदि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ। —सत्यार्थ०

४७ यज्ञ—जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त वा जो शिल्प-व्यवहार और पदार्थविज्ञान जोकि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

वेद में भी यज्ञ के बड़े विस्तृत अर्थ किये हैं, जैसेकि—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा॥ १३॥
—यजुः० १८। २९

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥ —ऋ० १०। ६३। ६
अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत् प्रतिषेधः॥ १॥ —निरु० अ० १ खं० ८
यज् देवपूजासङ्गतीकरणदानेषु। —व्याकरण

स्वामीजी उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार हिंसा से रहित यज्ञ मानते हैं, किन्तु पौराणिक लोग यज्ञों में अश्व, गौ, बकरा, मेढा, पुरुष आदि प्राणियों को मारकर उनके मांस से हवन करना तथा शेष मांस का खाना भी मानते हैं, जैसाकि—

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥ ४१॥
एतेष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः। आत्मनं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम्॥ ४२॥
नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः। प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्॥ ३५॥
—मनु० ५

इत्यादि अनेक प्रमाण इसकी पुष्टि में दिये जा सकते हैं, अतः स्वामीजी का यज्ञ-सम्बन्धी सिद्धान्त वेदानुकूल और पौराणिकों का सिद्धान्त वेद के सर्वथा विरुद्ध है। अब आप अपने आक्षेपों का उत्तर सुनने की कृपा करें—

(१) आपकी स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों में जिस प्रकार से अग्निहोत्र लिखा हुआ है वह त्यागने योग्य ही है, क्योंकि उसमें मांस का हवन तथा शेष मांस का खाना भी लिखा है जोकि वेदविरुद्ध होने से त्याज्य ही है, जैसाकि—

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा। दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि॥ २५॥
सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजऽध्वरैः। पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः॥ २६॥
नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः। नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥ २७॥
—मनु० ४

रौद्रं पशुमालभते॥ ३॥ साण्डम्॥ ४॥ गौर्वा शब्दात्॥ ५॥ वपां श्रपयित्वा स्थालीपाक-मिश्राण्यवदानानि च रुद्राय वपामन्तरिक्षाय वसां स्थालीपाकमिश्राण्यवदानानि जुहोति॥ ६॥

—पारस्कर० कां० ३ कण्डिका ८

पश्चाच्छामित्रस्य प्राक् शिरसं प्रत्यक् शिरसं वोदक्पादं संज्ञप्य पुरा नाभेस्तृणमन्तर्धाय वपामुत्खिद्य वपामादाय वपाश्रपणीभ्यां परिगृह्याद्भिरभिषिच्य शामित्रे प्रताप्याग्रेणैनमग्निं हृत्वा दक्षिणत आसीनः श्रपयित्वा परीत्य जुहुयात्॥ १०॥ —आश्वलायन० १। ११। १०

अतः स्वामीजी ने इस वेदविरुद्ध अग्निहोत्र का परित्याग करके वेदानुकूल अग्निहोत्र करने की पद्धति हमें बतलाई। हम इस बात की बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि जो पौराणिक पण्डित स्वामीजी के बताये अग्निहोत्र में से एक अक्षर भी वेदविरुद्ध सिद्ध करने का साहस रखता हो वह शास्त्रार्थ के मैदान में आकर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य सिद्ध करके दिखावे वरना मिथ्या प्रतिज्ञा करने का प्रायश्चित्त करके अपनी आत्मा को पवित्र करें।

(२) यजुर्वेद के भाष्य में स्वामीजी ने कहीं पर भी यज्ञों का खण्डन नहीं किया अपितु स्थान-स्थान पर यज्ञों के करने की आज्ञा बतलाकर उनका श्रेष्ठ फल बतलाया है। हम नमूने के रूप में कुछ स्थल नीचे उद्धृत करते हैं—

(१) दयानन्द—मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिए कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति, रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो। उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उसके विना वायु और वृष्टि, जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि विना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता, इसलिए ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है॥ —१। २२

(२) मनुष्यों द्वारा जो वेद की रीति और मन-वचन-कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है वह आकाश में रहनेवाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सबको सुखी करता है। —४। ६

(३) न्याय से प्रजा का पालन और विद्या का दान कराना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है। —९। १

(४) मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र व्यापक और पदार्थों की शुद्धि करनेहारे ब्रह्म=परमात्मा ही की उपासना करें, क्योंकि उसकी उपासना के विना किसी को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से होनेवाला पूर्ण सुख कभी नहीं हो सकता। —१०। २४

(५) शिक्षक लोग शिष्यों के लिए धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें। —१६। २

(६) यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य-दिव्य सुगन्धित पदार्थों को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैलाके सब प्राणियों को सुखी करता है॥ —२२। १५

(७) हवन और सूर्यरूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करनेवाली वर्षा होती है, उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थयुक्त पृथिवी होती और सूर्यरूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिए रात्रि होती है॥ —२३। १२

(८) राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिए कि दुष्टों के संग को छोड़ श्रेष्ठों का संग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें॥ —३०। १३

(९) जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं, वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं॥ —३२। १३

पौराणिक यज्ञ—

(१) महीधर—**चयनं कर्तुमिच्छन् फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि पौर्णमासेष्टिं कृत्वा पुरुषाश्वगोऽव्यजानालभ्याजेन यागं कृत्वा पञ्चानां शिरांसि घृताक्तानि प्रथमचितावुपधानार्थं क्वचित् संस्थाप्य तेषां कबन्धान् यज्ञशेषं च मृद्युक्ते तडागादिजले प्रास्येत॥** —११।१

(२) **महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति॥** —२३।२०

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित यज्ञ वेदानुकूल तथा पौराणिक यज्ञ सर्वथा वेदविरुद्ध हैं।

क्या कोई ऐसा पौराणिक पण्डित संसार में जीता-जागता विद्यमान है जो दयानन्द-प्रतिपादित यज्ञों को वेदविरुद्ध तथा महीधर-प्रतिपादित यज्ञों को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ हो?

(५८०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ३, पृ० ७१, पं० २४ में लिखा है कि—

"जहाँ कहीं निषेध किया है उसका अभिप्राय यह है कि जिसको पढ़ने से विद्या न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है"। यह पता दो कि जिसको पढ़ने से विद्या न आवे वह शूद्र होता है यह किस वेद के किस मन्त्र का सिद्धान्त है? —पृ० ११८, पं० ४

उत्तर—स्वामीजी का सिद्धान्त सर्वथा वेदानुकूल है और सत्य है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दो-दो प्रकार के होते हैं। एक सम्भावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अर्थात् जिनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनने की सम्भावना है वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के बालक हैं। जो माता-पिता के अधीन होते हैं, कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होते, अतः उनके सब संस्कार माता-पिता के वर्णानुसार ही होते हैं। उन सबको वेद पढ़ने का अधिकार देते हुए वेद कहता है कि—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च॥ —यजुः० २६।२

इस वेदमन्त्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अतिशूद्र, स्त्री-पुरुष आदि समस्त मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया गया है, अर्थात् समस्त बालक-बालिकाओं को वेद पढ़ने का अधिकार है चाहे उनका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो।

दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं, अर्थात् गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात् आचार्य ने शिक्षा देकर उनके गुण-कर्म-स्वभाव अनुसार व्यवस्था देकर जिसको जिस वर्ण की व्यवस्था दी हो वह उसका व्यवस्थित वर्ण है। उसके पश्चात् राजा का कर्त्तव्य है कि आचार्य ने जिसको जिस वर्ण की व्यवस्था दी है उसको उसी वर्ण में रखते हुए उससे तदनुसार काम ले। ऐसे व्यवस्थित शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं, क्योंकि वह वेद पढ़ने के अयोग्य सिद्ध हो चुका है। ऐसे गुण-कर्म-स्वभावानुसार व्यवस्थित वर्णवालों के लिए वेद आज्ञा देते हैं कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳशूद्रो अजायत॥ —यजुः० ३१।११

इस मन्त्र में व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को अपने-अपने वर्णानुसार कर्म करने की आज्ञा है, अतः जहाँ भी शूद्र को वेद पढ़ने का निषेध हो वहाँ पर शूद्र बालकों के लिए निषेध नहीं है, अपितु ऐसे मनुष्यों के लिए निषेध है जो प्रयत्न करने पर भी वेद नहीं पढ़ सके और उनको आचार्य ने शूद्र वर्ण की व्यवस्था दे दी हो, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

हाँ, सनातन धर्म के ग्रन्थों में इस विषय में वेदविरुद्ध बातें विद्यमान हैं, जैसेकि—

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः। अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः॥ १३६॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता। मन्त्रसम्पूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति॥ १३७॥

—मनु० ३

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया। ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद् भवेत्॥ ६६॥
जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद् गुणैः। जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः॥ ६७॥
अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम्। सम्प्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति॥ ७३॥

—मनु० १०

क्या कोई सनातनधर्मी पण्डित किसी पौराणिक माता ने पैदा किया है जो इन वेदविरुद्ध अन्याययुक्त श्लोकों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आये?

(५८१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ८४, पं० २६ में लिखा है कि—

''सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जो जावे-आवे, प्रवेश करे वह वैश्य'' पैर से चलनेवाले समस्त आर्यसमाजी वैश्य और आर्यसमाजी ही क्या वरन् भेड़, बकरी, घोड़ा, गधा, ऊँट, हाथी, भैंसे, गाय, हिरण, रोज—जितने भी प्राणी पैर के बल से चलते हैं वे सब दयानन्दजी और आर्यसमाजियों की दृष्टि में वैश्य हैं, फिर ये चौपायों के साथ विवाह आदिक सम्बन्ध क्यों नहीं करते और वेद में इसका मूल कहाँ है? —पृ० ११९, पं० १२

उत्तर—श्रीमान्‌जी यह प्रकरण वर्णव्यवस्था का है और वर्णव्यवस्था मनुष्यों में ही होती है पशुओं में नहीं, क्योंकि—वेद का ज्ञान परमात्मा ने मनुष्यों के लिए प्रकाशित किया है पशुओं के लिए नहीं, जैसाकि **'यथेमां'** मन्त्र में **'जनेभ्यः'** शब्द से स्पष्ट है। और पशु सब पदार्थों में प्रवेश भी नहीं कर सकते, क्योंकि प्रवेश करने के अर्थ हैं पदार्थों के गुणों का जानना और स्वामीजी ने आगे जो इसकी व्याख्या की है वह आपने सर्वथा छोड़ दी। देखिए इसका मूल तो है वेदवाक्य—

'ऊरू तदस्य यद्वैश्यः'॥ —यजुः० ३१।११

इसकी सरल व्याख्या मनु ने की है, जिसे स्वामीजी ने इसी प्रकरण में दिया है कि—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ ९०॥

—मनु० १

गाय आदि पशुओं का पालन-वर्धन करना, विद्या-धर्म वृद्धि करने-कराने के लिए धनादि का व्यय करना, अग्निहोत्र आदि यज्ञों का करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, सब प्रकार के व्यापार करना, एक सैकड़े में चार, छह, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपया से अधिक न लेना और न देना, खेती करना, ये वैश्य के गुण-कर्म हैं।

आगे स्वामीजी इसी प्रकरण में लिखते हैं कि—

''वैश्यों के कर्म ब्रह्मचर्य्य आदि से वेदादि विद्या पढ़, विवाह करके देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उनके भाव जानना, बेचना, खरीदना, द्वीप-द्वीपान्तर में जाना-आना, लाभार्थ काम का आरम्भ करना, पशु-पालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी-करानी, धन का बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी, निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यवहार करना, सब वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी जिससे कोई नष्ट न होने पावे।''

—सत्यार्थ० समु० ४

स्वामीजी ने अपने लेख के अभिप्राय को अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है, अतः जो कोई भी वैश्य के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार आचरण करेगा वही वैश्य बन जाएगा। अब रही बात पशुओं

के साथ विवाहादि सम्बन्ध करने की, सो आर्यसमाज तो इसको **'रेतो मूत्रं विजहाति योनिं'** [यजु:० १९।७६] इस मन्त्र के अनुसार वेदविरुद्ध समझता है। हाँ, सनातनधर्म में ये सम्बन्ध सदा होते आये हैं, जैसेकि—

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति॥ —महीधर, यजु:० २३।२०

पतत्रिणा तदा सार्द्धं सुस्थितेन च चेतसा। अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया॥ ३४॥
होताध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्॥ ३५॥ —वाल्मी० बाल० स० १४

ततः संज्ञाप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा।
उपसंवेशयन् राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम्।
कलाभिस्तिसृभी राजन् यथाविधि मनस्विनीम्॥ २॥ —महा० आश्वमेध० अ० ८९

विवस्वान् भयभीतश्च त्वक्त्वा युद्धं पराभवत्॥ ३६॥
गत्वा ददर्श भगवान् संज्ञां संबोधकारिणीम्।
कामातुरो हयो भूत्वा तत्र रेमे तया सह॥ ३८॥ —भवि० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८

अहं किन्दमो नाम तपसा भावितो मुनिः।
व्यपत्रपन्मनुष्याणां मृग्या मैथुनमाचरम्॥ २८॥ —महा० आदि० अ० ११८

क्या कई जीता-जागता पौराणिक पण्डित पृथिवी पर विद्यमान है जो पशुओं के साथ इस प्रकार के पौराणिक सम्बन्ध को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(५८२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ४, पृ० ९०, पं० २५ में लिखा है कि—

"पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें।" सब रिश्तेदारों की विद्यमानता में यह काम लज्जाजनक है। क्या किसी आर्यसमाजी में ईश्वर ने यह शक्ति दी है कि वह स्वामी दयानन्द के ऊपर लिखे गपोड़े को वैदिक सिद्ध करे? —पृ० १२०, पं० ८

उत्तर—विवाह की विधि से पहले स्त्री-पुरुष का पति-पत्नी सम्बन्ध नहीं होता, अतः विवाह से पूर्व गर्भाधान करना व्यभिचार कहता है, किन्तु विवाह की विधि हो जाने के पश्चात् पति-पत्नी का गर्भाधान करना कोई पाप का काम नहीं है। रिश्तेदारों की मौजूदगी की बात भी खूब कही! क्या गर्भाधान कोई ऐसा काम है जो सभा के मध्य में बैठकर किया जाता है? जब स्वामीजी ने स्पष्ट लिखा है कि 'एकान्त सेवन करें' तो फिर रिश्तेदारों की विद्यमानता कहाँ रही? और जब पत्नी पति के कुल में आ जाती है तो क्या उस समय पति के माता-पिता, भाई-बहिन आदि रिश्तेदार घर में नहीं होते? तो क्या गर्भाधान तब करना चाहिए जब रिश्तेदार संसार से कूच कर जावें? आखिर आपको यह शंका क्या सूझी? और यह भी बतलाने की कृपा करें कि गर्भाधान के बिना विवाह का प्रयोजन भी क्या है? देखिए वेद भगवान् क्या कहते हैं—

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वामायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥ २२॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥ ५२॥
—अथर्व० १४।१

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह॥ ३२॥
तां पूषं शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः॥ ३८॥
—अथर्व० १४।२

इन समस्त विवाहविधायक मन्त्रों में विवाह का प्रयोजन गर्भाधान और सन्तानोत्पत्ति ही वर्णन

किया गया है और विवाह के पश्चात् ही गर्भाधान की आज्ञा और विधि भी वर्णन की गई है, अत: स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

और आपके ग्रन्थों में भी इसके अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, जैसेकि—

गर्भाधान से विवाह—

इच्छयाऽन्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः।

—मनु० ३

विवहा से पूर्व गर्भाधान—

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा। वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते॥ १७३॥

—मनु० ९

पिता के घर पर शकुन्तला का गर्भाधान—

जग्राह विधिवत् पाणावुवास च तया सह। विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच्च पुनः पुनः॥ २०॥

—महा० आदि० अ० ७३

द्रौपदी का विवाह के पश्चात् पिता के घर में गर्भाधान—

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम्।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्धनाः॥ १३॥
इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं जगाद देवर्षिरतीतमानुषम्।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥ १४॥

—महा० आदि० अ० १९४

द्रौपदी का पाँच दिन में पाँचों पाण्डवों से विवाह हुआ और द्रौपदी हमेशा कन्या ही बन जाती थी। प्रतिदिन गर्भाधान द्वारा उसका कन्यात्व नष्ट होता था,तभी तो पुनः कन्या होना लिखा है।

पार्वती का विवाह के पश्चात् पिता के घर में गर्भाधान—

मैनाज्ञया स्त्रियः साध्व्यः शिवं सम्प्रार्थ्य भक्तितः। गेहे निवासयामासुर्वासाख्ये परमोत्सवे॥ १४॥
तत्रातिरमणीये च रत्नपर्यंक उत्तमे। अशयिष्ट मुदा युक्तो लीलया परमेश्वरः॥ २५॥

—शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ५२

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थीकर्म शुद्धितः। बभूव विधिवद्येन विना खंडित एव सः॥ २१॥

—शिव० रु० पार्वती० अ० ५३

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि विवाह के पश्चात् कभी कहीं पर भी गर्भाधान पापजनक नहीं है और पहले ऐसा होता आया है। हाँ, विवाह के बिना ही गर्भाधान अवश्य व्यभिचार है, जैसेकि—

बिना विवाह सत्यवती का गर्भाधान—

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता। जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा॥ १७७॥
एवं द्वैपायणो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्॥ ८२॥ —महा० आदि० अ० ६३

बिना विवाह कुन्ती का गर्भाधान—

प्रकाशकर्ता तपनः सम्बभूव तया सह। तत्र धीरः समभवत् सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ १८॥
अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः॥ १९॥ —महा० आदि० अ० १११

अत: स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल तथा बिना विवाह के पौराणिक कन्याधान सर्वथा

वेदविरुद्ध है। क्या संसार में कोई लिंगपन्थी पौराणिक पोप विद्यमान है जो मैदान में आकर इस कन्याधान को वेदानुकूल सिद्ध करने का साहस कर सके?

(५८३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ९७ में लिखा है कि—

"जो सांगोपांग चार वेदों के जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा"—क्या इस प्रकार का लेख किसी ग्रन्थ में लिखा है? किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा। —पृ० १२१, पं० १

उत्तर—लिखा तो है किन्तु किसी के देखने की आँखें ही न हों तो उसका क्या उपाय किया जाए? देखिए—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥ —ऋ० १०।७१।११

ब्रह्मैको जाते जाते विद्यां वदति। ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। ब्रह्मा परिवृळ्हः श्रुततो ब्रह्म परिवृळ्हं सर्वतः॥ —निरुक्त अ० १ खं० ८

यज्ञ में ऋत्विज् नियत करने में ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, उद्गाता इनका लक्षण करते हुए निरुक्त ने साफ़ बता दिया कि ब्रह्मा उसको कहते हैं जो सम्पूर्ण विद्या का जाननेवाला हो, यही अभिप्राय उपर्युक्त मन्त्र का है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है। अब पौराणिक ब्रह्मा का स्वरूप देखें, जैसाकि—

ब्रह्मा-विष्णु की लड़ाई—

अहमेव वरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः। परस्परं हन्तुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम्॥ ९॥
—शिव० विद्येश्वर० अ० ६

अथाह देवः कितवं विधिं विगतकन्धरम्। ब्रह्मंस्त्वमर्हणाकांक्षी शठमीशत्वसमास्थितः॥ ९॥
—शिव० विद्येश्वर० अ० ८

अहो ब्रह्मंस्तव कथं कामभावः समुद्गतः। दृष्ट्वा च तनयां नैव योग्यं वेदानुसारिणाम्॥ ३९॥
—शिव० रुद्र० सती० अ० ३

साभिलाषः कथं ब्रह्मा सतीं समवलोकयत्। अभवत्त्यक्तरेतास्तु ततो हन्मि कृतागसम्॥ ४५॥
—शिव० रुद्र० पार्वती० अ० १९

रेतसा क्षरता तेन लज्जितोऽहं पितामहः। मुने व्यमर्दं तच्छिश्नं चरणभ्यां हि गोपयन्॥ ८॥
—शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ४९

समायन्तं च मां दृष्ट्वा स गणेशो महाबली। क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य मम श्मश्रूण्यवाकिरत्॥ ३१॥
क्षम्यतां क्षम्यतां देव न युद्धार्थं समागतः। ब्रह्माणोऽहमनुग्राह्यः शान्तिकर्तानुपद्रवः॥ ३२॥
गृहीतपरिघं दृष्ट्वा तं गणेशं महाबलम्। पलायनपरो यातस्त्वहं द्रुततरं तदा॥ ३४॥
—शिव० रुद्र० कुमार० अ० १५

कहिए महाराज! आपके यही ब्रह्मा हैं जिनकी लड़ाका, कितव, शठ, पुत्री-गामी, कामी, पापी, भीरु आदि शब्दों से स्तुति की गई है। क्या किसी पौराणिक रमणी ने कोई ऐसा पौराणिक वीर पण्डित पैदा किया है जो उक्त गुणसम्पन्न पुरुष का ब्रह्मा होना वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ हो?

(५८४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ६१९, स्वमन्तव्यामन्तव्य संख्या २ में ब्रह्मा को ऋषि लिखा है। क्या सच ही ब्रह्मा ऋषि था? यदि ऋषि था तो ब्रह्मा के बाप का क्या नाम था और ब्रह्मा के कितने भाई थे एवं इस ब्रह्मा के कितने लड़के हुए? किन्तु आर्यसमाज में आजकल कोई पवित्र माता ऐसी पैदा नहीं हुई कि जिसकी कोख से निकला हुआ लड़का दयानन्द के स्वार्थ से लिखे हुए लेखों को वेदानुकूल सिद्ध कर देता। —पृ० १२१, पं० ११

उत्तर—हम इससे पूर्व के प्रश्न में सिद्ध कर चुके हैं कि प्रत्येक यज्ञ में एक ऋत्विज को ब्रह्मा बनाया जाता है। जैसाकि राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में व्यासजी को ब्रह्मा नियत किया गया था। इस पद्धति से तो ब्रह्मा एक पदवी है जिसको कि प्रत्येक मनुष्य चारों वेदों को पढ़कर योग्यतानुसार प्राप्त करके ब्रह्मा बन सकता है, किन्तु ब्रह्मा नाम का एक ऋषि भी हुआ है जोकि सृष्टि के आरम्भ में था, जिसने कि अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा—चार ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया जैसाकि मनुस्मृति में लिखा है कि—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥

—मनु० १।२३

श्वेताश्वतर में भी लिखा है कि परमात्मा ने अग्नि आदि के द्वारा ब्रह्मा को वेद प्राप्त कराये, जैसैकि—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै॥ —श्वेताश्वतर अ० ६।१८

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा के ऋषि होने का एक बड़ा प्रमाण यह है कि—

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का ऋषि 'परमेष्ठी प्रजापति' है। यजुः० अ० ११ में १—११ मन्त्रों का ऋषि 'प्रजापति' है। यजुः० अ० १५ में १—५९ मन्त्रों का ऋषि 'प्रजापति' और 'परमेष्ठी' है, इत्यादि-इत्यादि अनेक मन्त्रों का ऋषि 'प्रजापतिः परमेष्ठी' लिखा हुआ और दोनों ही नाम ब्रह्मा के हैं, जैसाकि—

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः॥ १६॥
स्त्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः॥ १७॥ —अमरकोश १।१

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि जहाँ पर ब्रह्मा एक उपाधि है, जिसे प्रत्येक मनुष्य प्राप्त करके ब्रह्मा बन सकता है; वहाँ ब्रह्मा नाम के एक ऋषि भी सृष्टि के आरम्भ में अवश्य हुए हैं जोकि अमैथुनी सृष्टि में हुए हैं। उनका नस्ली तौर से कोई माता-पिता न था। वे बालब्रह्मचारी रहे, अतः उनकी नस्ली तौर से कोई सन्तान न थी।

अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है।

हाँ, पौराणिक ब्रह्मा अवश्य ही ऋषि कहलाने के योग्य न थे, जैसाकि—

ब्रह्मा का झूठ—

स्तंभाग्रमेतत्समुदीक्षितं हरे तत्रैव साक्षी ननु केतकं त्विदम्।
ततोऽवदत्तत्र हि केतकं मृषा तथेति तद्धातृवचस्तदन्तिके॥ २७॥

—शिव० विद्येश्वर० अ० ७

ब्रह्मा की स्तुति—

महामूढमतिश्चाद्य संजातोऽसि कथं विधे॥ ३०॥
जडतां त्यज मन्दात्मन् कुरु त्वं नेदृशीं मतिम्॥ ३१॥
रुद्रं जानासि दुर्बुद्धे स्वसुतं परमेश्वरम्॥ ३२॥
ईदृशं त्यज कुज्ञानं शरणं व्रज तस्य वै॥ ४१॥

—शिव० रुद्र० सती० अ० १०

मदनाविष्टचेताश्च भूत्वांगानि व्यलोकयम्॥ १८॥

—शिव० रुद्र० सती० अ० १९

मदनेन समाविष्टोऽतीव क्षुभितमनासः॥ ६॥

—शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ४९

दिव्याङ्गं सुन्दरं तस्या दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः॥ २॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १३

ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वशं गतः॥ ७१॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १७

क्या कोई संसार में जीता-जागता ऐसा पौराणिक पण्डित है जो उपर्युक्त गुणयुक्त पुरुष को ब्रह्मा वा ऋषि कहाने के योग्य सिद्ध कर सके?

(५८५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३३५ में लिखा है कि—

"जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य, पाद्य, अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं"॥ आर्यसमाजी यह भी पता लगावें कि यह गुरुभक्ति कौन वेदमन्त्र का अनुवाद है?

—पृ० १२१, पं० २२

उत्तर—स्वामीजी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है। देखिए वेद ने राजा का यम नाम से वर्णन किया है, जैसेकि—

यमं राजनं हविषा दुवस्य॥ —ऋ० मं० १० सू० १४ मन्त्र १

यम शब्द के अर्थ निरुक्त ने इस प्रकार किये हैं—

यमः॥ १२॥

यमो यच्छति इति सतः॥ २॥ १९॥ —निरु० अ० १०

इसकी व्याख्या मनु ने इस प्रकार की है कि—

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति। तथा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥

—मनु० ९।३०७

अतः राजा के लिए आज्ञा है कि—

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः। नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥ ३३५॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्। आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ ३५०॥

—मनु० ८

रामायाण में भी लिखा है कि—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजनतः। उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥ १३॥

—वाल्मी० अयो० स० २१

इसी सिद्धान्तानुसार परशुराम ने अपनी माता रेणुका को मारा तथा पाण्डवों ने द्रोणाचार्य, भीष्म आदि को युद्ध में मारा।

हाँ, पौराणिकों की गुरुभक्ति वेदविरुद्ध है, जैसेकि—

गुरुतल्पं हि गुर्वर्थं न दूषयति मानवम्। उद्दालकः श्वेतकेतुं जनयामास शिष्यतः॥ २२॥

—महा० शान्ति० अ० ३४

चन्द्रश्च मोहितः शम्भोर्मायया कामसंकुलः। गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः॥ २२॥

—शिव० उमा० अ० ४

योगेनाथ प्रवेशो हि गुरुपत्न्याः कलेवरे। असक्तः पद्मपत्रस्थो जलबिंदुर्यथाचलः॥ ४९॥

—महा० अनु० अ० ४०

लक्षणं लक्षणेनैव वदनं वदनेन च। विधाय न मया चोक्तं सत्यमेतद् गुरोस्तथा॥ ३१॥

—महा० अनु० अ० ४२

क्या किसी ऐसे पौराणिक पण्डित ने भूमण्डल पर जन्म लिया है जो इस प्रकार की गुरुभक्ति को वेदानुकूल सिद्ध करने लिए मैदान में आवे?

(५८६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० २७२ में '**मनुष्य-मांस मनुष्य खा ले तो संसार की कोई हानि नहीं।**' यह लेख किस वेद के किस मन्त्र के आधार पर लिखा गया है? —पृ० ११२, पं० २५

उत्तर—यहाँ पर न मनुष्य-मांस के बारे में प्रश्न किया गया है और न ही उत्तर देने में मुख्यतया मनुष्य-मांस का प्रयोजन है अपितु मृतक प्राणियों के मांस-विषय का प्रश्न है, जिसके उत्तर में स्वामीजी ने तीन उत्तर तो विधिपरक दिये हैं—"(१) चाहे फेंक दें (२) चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें (३) वा जला देवें", चौथा उत्तर निषेधपरक है कि "अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है"—इस सारे लेख को सम्पूर्णतया पढ़ने से पता लगता है कि स्वामीजी मृतक प्राणियों के मांस खाने को भी अभक्ष्य बतलाकर निषेध करते हैं। आपने अपनी किताब में "वा जला देवें" पाठ को तथा हिंसादि से प्राप्त पदार्थ को अभक्ष्य बतानेवाले पाठ को चुराकर अपनी आदत को पूरा किया है। स्वामीजी के लेख का सारांश यह है कि मांस अभक्ष्य है और स्वामीजी का यह सिद्धान्त वेदानुकूल है, जैसाकि—

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम्॥ १॥ —अथर्व० ६।७०

इस मन्त्र में मांस, शराब तथा व्यभिचार को पाप वर्णित किया गया है, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेद के अनुकूल है। हाँ, पौराणिक ग्रन्थों में अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण का विधान विद्यमान है, जैसेकि—

अण्डकोश भक्ष्य—

आस्वादितं न चान्यैस्तु भक्ष्यार्थं च ददाम्यहम्। अधोभागे च मे नाभेर्वर्तुलौ फलसंनिभौ॥ १२६॥
भक्षयध्वं हि सहिता लम्बौ मे वृषणावुभौ। अनेन चापि भोज्येन परा तृप्तिर्भविष्यति॥ १२७॥
—पद्म० सृष्टि० अ० ३१

गोमांस—

राज्ञो महानसे पूर्वं रन्तिदेवस्य वै द्विज। द्वे सहस्रे तु वध्येते पशूनामन्वहं तदा॥ ८॥
अहन्यहनि वध्येते द्वे सहस्रे गवां तथा। समांसं ददतो ह्यन्नं रन्तिदेवस्य नित्यशः॥ ९॥
[गीता० संस्करण में से निकाल दिये गये, अन्यत्र हैं।—सं०]—महा० वन० अ० २०७

मनुष्य-मांस—

सौदासेन तदा राज्ञा मानुषा भक्षिता द्विज॥ १६॥ —महा० वन० अ० २०७

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमवसन् गृहे। आलभ्यन्त शतं गावः सहस्राणि च विंशतिः॥ १२७॥
तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः। सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा॥ १२८॥
[गीता० सं० में मांस के स्थान पर भोज्य बनाया गया।—सं०]—महा० शान्ति० अ० २९

दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रः पुरा किल॥ २६॥
अस्मिन् काले तु सोऽल्पायुर्दिष्टान्तमगमत् प्रभुः। ते तं क्षुधाभिः संतप्ताः परिवार्योपतस्थिरे॥ २७॥
याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः। अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधर्त्ताः किल भारत॥ २८॥
[२८वें श्लोक को गीता० सं० में से निकाल दिया गया है—सं०]—महा० अनु० अ० ९३

कुत्ते का मांस—

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम्। चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः॥

—मनु० १०।१०

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई वीर पौराणिक पुत्र भूमण्डल में पैदा किया है जो मनुष्य के अण्डकोष, मनुष्य-मांस और गोमांस तथा कुत्ते के मांस को खाना वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए मैदान में आये?

(५८७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में स्वामी दयानन्दजी ने जल, पृथिवी, राहु, केतु, शनिश्चर, चन्द्रमा प्रभृति ईश्वर के फर्ज़ी नाम लिखे हैं। निघण्टु, निरुक्त, समस्त कोश एवं समस्त संस्कृत के साहित्य में ऐसे बेबुनियाद ईश्वर के नाम कहीं नहीं आते। स्वामीजी ने फर्ज़ी नाम लिखकर आर्यसमाजियों को धोखा दिया है। यह स्वामीजी ने पाप कमाया है।

—पृ० १२३, पं० ६

उत्तर—स्वामीजी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है, क्योंकि ईश्वर का निज नाम तो ओम् है, जैसाकि—

ओ३म् खं ब्रह्म॥ —यजुः० १०।१७; **ओ३म् क्रतो स्मर॥**—यजुः० ४०।१५

और गौण रूप से परमात्मा के अनेक नाम हैं, जैसेकि—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वनमाहुः॥

—ऋ० १।१६४।४६

इस सिद्धान्त की पुष्टि मनुजी महाराज भी करते हैं—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥१०॥ —मनु० १

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥९१॥
यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून् गमः॥९२॥ —मनु० ८

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥ —मनु० १२।१२३

महाभारत भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करता है—

ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु। पुराणे सोपनिषदे तथैव ज्योतिषेऽर्जुन॥८॥
सांख्ये च योगशास्त्रे च आयुर्वेदे तथैव च। बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः॥९॥
गौणानि तत्र नामानि कर्मजानि कानिचित्। निरुक्तं कर्मजानां त्वं शृणुष्व प्रयतोऽनघ॥१०॥

—महा० शान्ति० अ० ३४१

इस सिद्धान्तानुसार परमेश्वर के अनेक नाम हैं—

पृथिवी—**त्वमन्नस्त्वं यमस्त्वं पृथिवी त्वं विश्वं खमथाच्युतः॥** —मैत्रायण्युपनिषद् ५।१
केतु—**केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥** —ऋ० ३।५५।२
चन्द्रमा—**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।** —यजुः० ३२।१
शनैश्चर—**इन्द्रो विवस्वान् दीप्ताशुः शुचिः सौरिः शनैश्चरः॥३॥** —सूर्यशतनाम

आपः—**ता आपः स प्रजापतिः।** —यजुः० ३२। १

जल—**सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।** —छान्दोग्य० ३।१४।१

राहु—**राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम्।** —महा० अनु० १५८।१३

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ये सम्पूर्ण नाम उपासना-प्रकरण में ईश्वर के ही माने जावेंगे।

जब गोपालसहस्र नाम तथा विष्णुसहस्रनम में गोपाल और विष्णु के सहस्रों नाम हो सकते हैं तो परमात्मा के क्यों नहीं हो सकते?

हाँ, आप बतलावें कि निम्न नाम ईश्वर के कैसे हो सकते हैं, जैसेकि—

कामदेवः कामपालः कामीकान्तः कृतागमः।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः॥८३॥ —महा० अनु० अ० १४९

क्या कोई जीता-जागता पौराणिक पण्डित पृथिवी पर विद्यमान है जो कामदेव, कामपाल, कामीकान्त आदि नामों को वेदानुकूल ईश्वर के नाम सिद्ध कर सके?

(५८८) प्रश्न—जैसी व्युत्पत्तियाँ स्वामीजी ने लिखी हैं ऐसी व्युत्पत्तियों से तो गृहम्, कायस्थः, दयानन्दः, सत्यार्थप्रकाशः, इत्यादि सब नाम ईश्वर के सिद्ध हो सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि संसार में न कोई दयानन्द हुआ है और न सत्यार्थप्रकाश नाम की कोई पुस्तक है और न ही आर्यसमाज नाम की कोई सोसाइटी है, अपितु ये सब नाम ईश्वर के ही हैं।

—पृ० १२३, पं० १३

उत्तर—किन्हीं शब्दों से परमेश्वर अर्थ ग्रहण करने में प्रकरण नियामक है। वैसे ही प्रत्येक शब्द से ईश्वर अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता, जैसाकि स्वामी दयानन्दजी महाराज ने लिखा है—

जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं, वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहाँ-जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः॥५॥
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥१२॥
तेन देवा अयजन्त॥९॥ पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥५॥ —यजुः० ३१

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेताः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। —तै० उ० ब्रह्मा० वल्ली अ० १

ऐसे प्रमाणों से विराट्, पुरुष, देव, आकाश, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहाँ-वहाँ परमेश्वर ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपर्युक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं। इसी से यहाँ विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है, किन्तु जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहाँ-वहाँ जीव का ग्रहण होता है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर का जन्म-मरण कभी नहीं होता, इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीव आदि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है।" —सत्यार्थ० समु० १

अब आप बतलावें कि गृहम्, कायस्थः, दयानन्दः, सत्यार्थप्रकाशः और आर्यसमाजः इत्यादि—नाम किन-किन वेद तथा शास्त्रों में कहाँ-कहाँ पर आते हैं और प्रकरण अनुसार इनका ईश्वर

अर्थ किस प्रकार से होता है। यदि आप कोई वेदमन्त्र वा प्रकरण तथा ईश्वर अर्थ लेने में कोई हेतु नहीं बतला सकते तो आपकी कल्पना मिथ्या है, क्योंकि किसी शब्द के केवल व्युत्पत्ति से ईश्वर अर्थ नहीं लिये जा सकते जबतक कि उसमें प्रमाण और प्रकरण-अनुकूलता सहायक न हों।

हाँ, आपके मतानुसार गृहम्, कायस्थः, दयानन्दः, सत्यार्थप्रकाशः और आर्यसमाजः—नाम ही नहीं अपितु सम्पूर्ण पदार्थ भी ईश्वर माने जा सकते हैं, क्योंकि आपके मत में संसार के समस्त रूप ब्रह्म के ही रूप हैं और ईश्वर इन सबका अभिनिमित्तोपादनकारण है।

(५८९) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने दशम समुल्लास में नीच जातियों के भोजन का विकट निषेध किया है। —पृ० २६३, पं० २४

उत्तर—आर्यसमाज "**सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षुः**"—ऋ० १०।५।६ वेदमन्त्र के अनुसार किसी को जन्म से नीच नहीं मानता, अपितु जो मनुष्य वेद की सप्त मर्यादाओं को तोड़कर मद्यपान तथा मांसाहार आदि नीच कर्म करता है वह नीच है और उसी के भोजन का विकट निषेध किया है जैसाकि "ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डाल आदि नीच, भंगी, चमार आदि का न खाना"। —सत्यार्थ० समु० १०

इसका अभिप्राय यह है कि चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के हाथ का तो खाना चाहिए किन्तु जो चारों वर्णों से भ्रष्ट, भंगी और चमारों में से नीच कर्म के करनेवाले चाण्डाल अर्थात् मद्य-मांसादि का सेवन करनेवाले हैं उनके हाथ का न खाना चाहिए। वैदिक सिद्धान्तानुसार चमार वैश्य तथा भंगी शूद्र हैं। यदि वह मद्य-मांस के आहार को न करते हों तथा शुद्धता से भोजन बनाएँ तो उनके हाथ का खाने में कोई दोष नहीं है। स्वामीजी के इस सारे लेख का प्रयोजन यही है कि मद्य-मांसाहारी, नीच, चाण्डाल के हाथ का न खाना चाहिए। सदाचारयुक्त चारों वर्णों के हाथ का खा लेना चाहिए, जैसाकि लिखा भी है कि—

विप्राणां क्षत्रियाणां च वैश्यानां च सुयोधन। आचारः प्रथमो धर्मो ह्यनाचारस्त्वधर्मतः॥ २८॥
अन्ये चैव तु ये शूद्राः सत्यशौचपरायणाः। तेषां गृहेषु भोक्तव्यं विदुरोऽपि बहुश्रुतः॥ २९॥
—भारतसार० अ० ५५

भीलनी का जल पीना—

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्॥ ७॥
—वाल्मी० अरण्य० स० ७४

राम ने भीलनी के उच्छिष्ट फल खाये—

तिंदुकानि च मूलानि फलान्यन्यानि तु। रामार्थे रक्षितान्यासन् दन्तैश्छित्वा परीक्ष्य च॥ ५६॥
—भक्तमालसंस्कृत, सर्ग ५

ब्राह्मण ने व्याध का जल पिया—

प्रविश्य च गृहं रम्यमासनेनाभिपूजितः। पाद्यमाचमनीयं च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥ १८॥
—महा० वन० अ० २०६

यह सिद्धान्त वेदानुकूल है जैसाकि—

व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमतो तिलम्। एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय
दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च॥ —अथर्व० ६।१४०।२

अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल हैं। हाँ, पुराणों में वेदविरुद्ध भोजन लिखे हुए हैं, जैसाकि—

चाण्डाल के घर से कुत्ते का मांस—

स ददर्श श्वमांसस्य कुतन्त्रीं विततां मुनिः।
चाण्डालस्य गृहे राजन् सद्यः शस्त्रहतस्य वै॥ ३७॥
स चिन्तयामास तदा स्तैन्यं कार्यमितो मया॥ ३८॥
विश्वामित्रो जहारैव कृतबुद्धिः श्वजाघनीम्॥ ९०॥ —महा० शान्ति० अ० १४१

क्या कोई पौराणिक पण्डित चाण्डाल के घर से कुत्ते का मांस चुराकर खाना वेदानुकूल सिद्ध कर सकता हैं?

(५९०) प्रश्न—स्वामीजी भारत के इतिहास-पुराण को भी वैसे ही मानते हैं जैसेकि सनातनधर्मी प्रमाण में लेते हैं। —पृ० २५

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा मिथ्या है, क्योंकि स्वामीजी इतिहास-पुराण को वहाँ तक ही प्रमाण मानते हैं जहाँ तक कि वह वेदानुकूल हो। वेदविरुद्ध इतिहास-पुराण को स्वामीजी प्रमाण नहीं **मानते।**

(५९१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ में लिखा है कि—

''जैसाकि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने किया और जैसा व्यासजी ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य के मर जाने के पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की, इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण है।'' इससे सिद्ध है कि स्वामीजी इतिहास को प्रमाण मानते हैं। —पृ० २६

उत्तर—इस लेख में महाभारत ने नियोग द्वारा स्त्री को दूसरे पति का अधिकार स्वीकार किया है। इसी प्रकार से इस सिद्धान्त को भी माना है, जैसाकि—

पत्यभावे यथैव स्त्री देवरं कुरुते पतिम्। आनन्तर्यात्तथा क्षत्रं पृथिवी कुरुते पतिम्॥ १२॥
—महा० शान्ति० अ० ७२

इत्यादि महाभारत का लेख वेद के अनुकूल है, क्योंकि वेद कहता है कि—

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥
—अथर्व० १८।३।१

चूँकि महाभारत का यह लेख वेदानुकूल है, अतः स्वामीजी को प्रमाण है; किन्तु महाभारत के जो लेख वेद के विरुद्ध हैं जैसेकि—

ऋतावृतौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्ता पतिव्रते। नातिवर्त्तव्य इत्येवं धर्मं धर्मविदो विदुः॥ २५॥
शेषेष्वन्येषु कालेषु स्वातन्त्र्यं स्त्री किलार्हति। धर्ममेवं जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते॥ २६॥
[गीता० सं० में से निकाल दिये गये।—सं०]—महा० आदि० अ० १२२

ये स्वामीजी को प्रमाण नहीं हैं, अतः स्वामीजी वेदानुकूल इतिहास का प्रमाण तथा वेदविरुद्ध इतिहास का अप्रमाण करते हैं।

(५९२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ८२ में लिखा है कि—

''महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मतंग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे''। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी ने इतिहास को प्रमाण माना है। समाजी किस मुँह से कह सकते हैं कि इतिहास-पुराण हमको प्रमाण नहीं? —पृ० २६

उत्तर—वर्ण-व्यवस्था का कर्मानुसार होना इस लेख में वर्णन किया गया है। यह और इसी प्रकार के अन्य लेख जैसेकि—

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥ ९॥
—महाभारत शान्ति० अ० २६४

इत्यादि प्रकरण वेदानुकूल होने से प्रमाण है, जैसे—
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। इत्यादि। —यजुः० ३१।११
को वोऽध्वरं तुविजाता। इत्यादि। —ऋ० मं० १० सं० ६३ मं० ६

जो प्रकरण महाभारत में वेदविरुद्ध हैं, जैसेकि—
ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद् ब्राह्मणः शुभे।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः॥ —महा० अनु० अ० १४३
स्वयं यूपानुपादाय यजन्ते स्वाप्तदक्षिणैः॥ ३२॥
यस्तथा भावितात्मा स्यात् स गामालब्धुमर्हति॥ ३३॥ —महा० शान्ति० अ० २६२

ये प्रकरण स्वामीजी को प्रमाण नहीं हैं।

इससे सिद्ध है कि स्वामीजी वेदानुकूल इतिहास को प्रमाण तथा वेदविरुद्ध इतिहास को अप्रमाण मानते हैं।

कड़वी सचाई

(५९३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ७० में स्वामीजी लिखते हैं कि—

''तुम कूआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है''। ऐसे मीठे शब्द दयानन्द को छोड़कर संसार में कौन लिख सकता है? —पृ० २८, पं० २५

उत्तर—बेशक आपका फरमाना ठीक है, क्योंकि संसार में हितकारी कड़वे सत्य के कहनेवाले कोई-कोई महात्मा ही होते हैं, वरना चापलूसी की बातें करने तथा झूठी खुशामद करनेवाले टोडी संसार में भरे पड़े हैं, जैसाकि महाभारत में लिखा भी है कि—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १५॥
—महा० उद्योग० अ० ३६

स्वामीजी का यह कहना ठीक है कि ''**स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः**'' यह वाक्य कपोलकल्पित है, किसी वेद की श्रुति नहीं है। आपमें हिम्मत हो तो किसी वेद में से निकालकर दिखावें। जो लोग यों पेट कूटते हैं कि ''हाय! यदि स्त्री और शूद्र पढ़ गये तो हम क्या करेंगे'' ऐसे शिक्षा-विरोधियों का संसार से नाश होना ही संसार के लिए हितकारी है। इसी अभिप्राय को दिल में रखकर स्वामीजी ने कहा है कि ''तुम कूआ में पड़ो'' अर्थात् तुम नष्ट हो जाओ ताकि कोई तुम्हारी शिक्षा मानकर स्त्रियों का निरादर करके स्वयं नष्ट न हो जाए, जैसाकि मनु ने भी लिखा है कि—

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः। तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥
—मनु० ३।५८

इस लेख का नाम गाली नहीं है। यदि आपको गालियाँ देखनी हों तो पुराण में देखें, जैसेकि—

स्वकीयं च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्। भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात्॥ २७॥
—भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १८

मैं आशा करता हूँ कि आपको गाली और हितकारी में विवेक करना आसान हो जावेगा।

(५९४) प्रश्न—वैष्णवों का खण्डन करते समय सत्यार्थप्रकाश पृ० ३१२, पं० ७ में लिखा

है कि "**विक्रीय शूर्पं विचचार योगी**" इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना-बेचकर विचरता था, अर्थात् कंजरजाति में उत्पन्न हुआ था।" किसी भी वैष्णवग्रन्थ तथा भक्तमाल में "विक्रीय शूर्पं" यह नहीं लिखा। क्या कोई आर्यसमाजी शठकोप को कंजर सिद्ध करने की शक्ति रखता है? —पृ० २८, पं० २९

उत्तर—प्रथम तो 'शठकोप' अर्थात् 'धूर्तों का सरदार' यह नाम ही इस बात को प्रकट कर रहा है कि उनका जन्म अतिशूद्र वर्ण में हुआ, जिसमें कंजर भी शामिल हैं। दूसरे, स्वामीजी ने यह पाठ चक्रांकितों के हस्तलिखित ग्रन्थों और नाभा डोम के भक्तमाल से उद्धृत किया है; इस समय इन दोनों ग्रन्थों का मिलना ही दुर्लभ है।

तीसरे, यह बात किसी सिद्धान्त की पोषक नहीं है अपितु ऐतिहासिक खोज की बात है। यदि स्वामीजी की यह खोज आपके विचार में ठीक नहीं है तो आपको किसी ग्रन्थ का प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहिए था कि उनका जन्म किस 'ब्राह्मण कुल में हुआ था' किन्तु आपने ऐसा नहीं किया, अतः स्वामीजी का लेख ही ठीक प्रतीत होता है।

चौथे, स्वामीजी ने यह बात यह सिद्ध करने के लिए लिखी है कि 'ब्राह्मणों ने उसका तिरस्कार किया तब यह मत उसने चलाया'। इसका अभिप्राय यह है कि जन्म के कारण किसी का तिरस्कार करने से इस प्रकार की हानि होती है। चूँकि स्वामीजी कर्मों से वर्णव्यवस्था मानते हैं, अतः स्वामीजी ने यह लेख गाली देने की नीयत से नहीं अपितु वास्तविक अवस्था बतलाने के लिए लिखा है, जैसेकि भविष्यपुराण में लिखा है कि—

गणिकागर्भसम्भूतो वसिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २९॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

आपके विचार से क्या पुराणकर्त्ता ने वसिष्ठमुनि को गाली देने के लिए "कंजरीपुत्र" लिखा है, कदापि नहीं। बस! जैसे पुराणकर्त्ता ने वास्तविक बात को प्रकट करने के लिए लिखा है वैसे ही स्वामीजी का लेख भी है। इसका नाम गाली देना नहीं है। गाली देने का प्रकार और होता है, जैसेकि—

दक्षश्च मोहितः शंभोर्मायया ब्रह्मणस्सुतः। भ्रातृभिः स भगिन्यां वै भोक्तुकामोऽभवत्पुरा॥ २६॥

—शिव० उमा० अ० ४

इसका नाम है गाली देना। स्वामीजी का लेख गाली देना नहीं है। क्या कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित संसार में विद्यमान है जो शठकोप तथा वसिष्ठजी को ब्राह्मणी माता के गर्भ से पैदा हुआ सिद्ध कर सके?

(५९५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११ पृ० ३१२, पं० १५ में लिखा है कि "उस (शठकोप) का चेला मुनिवाहन जोकि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था"। हमने आज तक चार ही वर्ण सुने थे, किन्तु आज एक पाँचवाँ चाण्डाल वर्ण और मिला। क्या कोई आर्यसमाजी मुनिवाहन को चाण्डाल सिद्ध कर सकता है? —पृ० २९, पं० १४

उत्तर—क्या आपका सुनना भी कोई प्रमाणों में प्रमाण है? क्या जो बात आपने नहीं सुनी वह संसार में है ही नहीं? श्रीमान्‌जी! आपके कान परिमित हैं और आपका ज्ञान भी परिमित है। वह किसी पदार्थ के होने या न होने में प्रमाण नहीं माना जा सकता। यदि आपने चार ही वर्ण आज तक सुने हैं तो आपने अपनी पुस्तक के पृ० १३०, पं० ४ तथा ७ में 'पारशव' वर्ण कहाँ से लिख मारा? सुनिए महाराज! वर्ण शब्द के अर्थ निरुक्त के अनुसार '**वर्णो वृणोतेः**' [निरु० अ० २ खं० ३]—जो स्वीकार किया जाए उसका नाम वर्ण है। इसीलिए निरुक्त ने

'चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चमः' [निरुक्त अ० ३ खं० ८]—निषाद को भी पाँचवाँ वर्ण माना है। इसके अतिरिक्त मनु में तो सूत, वैदेह, चाण्डाल, मागध, क्षत्ता, अयोगव, इन छह को वर्ण मानकर अपने सदृश वर्ण पैदा करनेवाला माना है—

सूतो वैदेहकश्चैव चाण्डालश्च नराधमः। मागधः क्षत्रजातिश्च तथाऽयोगव एव च॥ २६॥
एते षट् सदृशान् वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु। मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु॥ २७॥

—मनु० १०

कहिए महाराज! आप तो पाँचवें को ही रो रहे थे, यहाँ पर तो वर्णों का ढेर ही लग गया। अब क्या आप अपने कान कटवाने की कृपा करेंगे, जिन्होंने आपको इतना डबल धोखा देने का पाजीपन किया है? रही बात मुनिवाहन को चाण्डाल लिखने की, सो यदि स्वामीजी की यह खोज ठीक नहीं है तो आप ही प्रमाण बतलाने की कृपा करें कि मुनिवाहन किस ब्राह्मणकुल में पैदा हुए थे? यदि नहीं बता सकते तो स्वामीजी का लेख ठीक है। स्वामीजी ने यह लेख गाली देने के लिए नहीं लिखा अपितु वास्तविक अवस्था बताने के लिए ही लिखा है, जैसाकि पुराणों के कर्त्ता ने भी लिखा है कि—

श्वपाकीगर्भसंभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव। तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम्॥ २७॥

—भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२

तो क्या पुराणकर्त्ता ने पराशर को 'चाण्डालपुत्र' लिखकर गाली दी है? कदापि नहीं। बस जैसे पुराणकर्त्ता ने वास्तविक अवस्था बताने के लिए लिखा है, ऐसे ही स्वामीजी का लेख है। गालियाँ देने का तो प्रकार ही और होता है, जैसेकि—

ब्रह्मा च बहुवारं हि मोहितः शिवमायया। अभवद् भोक्तुकामश्च स्वसुतायां परासु च॥ २७॥

--शिव० उमा० अ० ४

इसका नाम है गालियाँ, जो पुराणों में ऋषि और मुनियों को निकाली गई हैं। वास्तविक अवस्था के बताने का नाम गालियाँ देना नहीं है।

क्या किसी पौराणिक माता ने कोई ऐसा पौराणिक पुत्र पैदा किया है जो मुनिवाहन और पराशर को ब्राह्मण दम्पती से पैदा हुआ सिद्ध कर सके?

(५९६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३१२, पं० १५ में लिखा है कि—"उस (मुनिवाहन) का चेला यावनाचार्य यवन-कुलोत्पन्न था"। यदि सच ही यावनाचार्य जाति के मुसलमान थे तो फिर कोई आर्यसमाजी कलम क्यों नहीं उठाता? —पृ० २९, पं० २९

उत्तर—क्या स्वामीजी का लिखना क़लम उठाना नहीं है और क्या 'यावनाचार्य' नाम ही यह बात सिद्ध नहीं कर रहा कि वह जन्म से मुसलमान थे? और क्या सनातनधर्म में मुसलमानों से ब्राह्मण नहीं बनते आये, जैसाकि—

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः। संस्कृताः शूद्रवर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः॥ ७२॥

—भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० २०

फिर यावनाचार्य का जन्म से मुसलमान होते हुए आचार्य बनना बताना गाली देना कैसे है? यदि वह जन्म से मुसलमान न थे तो आप सप्रमाण सिद्ध करें कि वह ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे। वास्तविक अवस्था बाताना गाली देना नहीं होता। गाली देने का प्रकार और है, जैसाकि—

शिवमायाप्रभावेणाभूद्धरिः काममोहितः। परस्त्रीधर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर॥ १७॥

—शिव० उमा० अ० ४

इसका नाम है गाली देना। वास्तविक अवस्था के बताने का नाम गाली देना नहीं है। क्या

कोई पौराणिक पण्डित भू-मण्डल में मौजूद है जो यावनाचार्य को ब्राह्मण-कुलोत्पन्न सिद्ध करने के लिए अपनी लेखनी उठावे?

(५९७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३१२, पं० ८ में लिखा है कि—"भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया"। कौन कहता है कि नाभाजी डूम थे? जो आर्यसमाजी कहता हो वह लेखनी उठाकर नाभाजी को डूम सिद्ध करे। —पृ० ३०, पं० १३

उत्तर—स्वामीजी की खोज बतलाती है कि नाभाजी डूम थे और उन्होंने लेखनी उठाकर लिख दिया। यदि स्वामीजी की यह खोज ग़लत है तो आप सिद्ध करें कि नाभाजी किस ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे? क्या किसी मनुष्य का डूम आदि अन्त्यज वंश में पैदा होकर अपनी योग्यता से ग्रन्थकर्त्ता बन जाना कोई असम्भव बात है? क्या व्यास आदि अन्त्यज कन्या के पेट से पैदा होकर ग्रन्थकर्त्ता नहीं बने, जैसाकि लिखा है—

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत्॥ २२॥ —भविष्य०ब्राह्म०अ० ४२

क्या इनकी वास्तविक अवस्था का वर्णन करना गाली देना है? कदापि नहीं। गाली देने का ढंग ही और होता है, जैसेकि—

चन्द्रश्च मोहितः शंभोर्मायया कामसंकुलः। गुरुपत्नीं जहाराथ युतस्तेनैव चोद्धृतः॥ २२॥
—शिव० उमा० अ० ४

इसका नाम है गालियाँ देना। वास्तविक अवस्था के बतलाने का नाम गालियाँ देना नहीं है। हम समस्त पौराणिक मण्डल को चैलैंज करते हैं कि वह नाभाजी और व्यासजी को ब्राह्मणी के पेट से पैदा हुआ सिद्ध करने के लिए मैदान में आवें, किन्तु यह निश्चित है कि प्रलय तक भी पौराणिकों में कोई ऐसा पण्डित पैदा नहीं हो सकता जो व्यास और नाभाजी की माता को जन्म से ब्राह्मणी सिद्ध कर सके। और स्वामीजी का लेख तो है भी ठीक जैसाकि—

गोस्वामी नाभाजीकृत श्रीभक्तमाल श्रीप्रियदासजीप्रणीत टीका, कवित्त श्री अयोध्यानिवासी श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकलाविरचित, भक्तिसुधास्वादतिलकसहित, लखनऊ सुपरिंटेंडेंट केसरीदास सेठ द्वारा नवलकिशोर प्रेस से मुद्रित होकर प्रकाशित।

दूसरी आवृत्ति १९२६-१९८३। —पृ० ४७, पं० १४

"और कोई-कोई तो स्वामी श्रीनाभाजी का जन्म डोमवंश में भी कहते हैं, परन्तु पश्चिम देश में 'डोम' किसको कहते हैं यह न जाननेवाले लोग इस देश में डोम भंगी का नामान्तर समझके भंगी भी कह बैठते हैं। सो भंगी कहना महानुचित, अविचार वा पाप है, क्योंकि पश्चिम मारवाड़ आदिक देशों में डोम कलावंत, ढाढी, भाट, कथक इन गानविद्या के उपजवियों की तुल्य जाति (ज्ञाति) और प्रतिष्ठा है। इसका प्रमाण (१११वें छप्पय) में श्री मूलकार ने "लाखा" भक्त को वानर अर्थात् वानरवंशी लिखा और (४२६वें कवित्त में) भक्तमाल के टीकाकार ने "**लाखा नाम भक्त ताकौ वानरी बखान कियो कहें जग डोम जासो मेरो शिरमोर है**" ऐसा लिखके आगे इनके गृह में सन्तों का जाना और रोटी-प्रसाद का पाना भी लिखा है, सो देख लीजिए। लाखा भक्त के यहाँ सन्तों का प्रसाद रोटी-पाना अन्यथा असम्भव था। अस्तु, यहाँ तो दोनों प्रकार से उत्तमता है। श्रीनाभा स्वामी तो श्रीसीतारामजी के अनन्य, विशुद्ध, जगत्पूज्य दास हैं। न ब्राह्मण हैं न डोम। इन अच्युत गोत्र की देह तो जात्याभिमान से रहित है, इत्यलम्।"

संस्कृत भक्तमाल में भी लिखा है कि—

पथि तिष्ठन्तमन्धं च शिशुमेकमपश्यताम्। दुर्भिक्षसमये त्यक्तं जनन्या निर्जने वने॥ ७॥
—भक्तमाल, संस्कृत स० २

(५९८) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी कापड़ी जाति में उत्पन्न हुए थे और लड़कपन में इनका पेशा गाना तथा नाचना था, यह बात सोलह आने सच है और 'दयानन्द छलकपट दर्पण' आदि बीसियों ग्रन्थों में लिखी है (पृ० ३०, पं० २२)। संवत् १९४० की शुभ तिथि नरकचतुर्दशी को स्वामीजी का शरीर पात हो गया। —पृ० १६, पं० २६

उत्तर—स्वामी दयानन्दजी के पिता का नाम कर्सनजी लालजी त्रिवेदी था। इनका पेशा जमादारी, शराफ, और ज़िमींदारी था। जन्मस्थान टंकारा था। ये औदीच्य ब्राह्मण थे (दयानन्द-जन्मस्थान-निर्णय)। "दयानन्द छलकपट दर्पण" यह पुस्तक आर्यसमाज के विरोधी जियालाल जैनी की लिखी हुई है, अतः उसका लेख आर्यसमाज के लिए कोई प्रमाण नहीं। वह लेख निर्मूल और सर्वथा ग़लत है; किन्तु यदि सत्य भी हो तो आर्यसमाज के सिद्धान्त की इसमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि आर्यसमाज गुण-कर्म-स्वभाव से वर्ण-आश्रम की व्यवस्था को मानता है, जन्म से नहीं; और मनुष्य मरने के पश्चात् अपने कर्मानुसार नरक या स्वर्ग को प्राप्त होता है, मरने की तिथि नरक या स्वर्ग-प्राप्ति का साधन नहीं हो सकती। जैसे दिवाली को स्वामीजी का देहान्त हुआ था वैसे ही दिवाली के दिन ही स्वामी रामतीर्थजी की तथा जैनमत प्रवर्तक महावीर स्वामी की मृत्यु हुई थी, तो क्या यह माना जा सकता है कि स्वामी रामतीर्थजी तथा महावीर स्वामी भी इस तिथि में मरने के कारण नरक में गये? कदापि नहीं, अतः किसी तिथि का नाम नरकचतुर्दशी रखना ही पौराणिक मिथ्या कल्पना है।

हाँ, पौराणिक वसिष्ठ अवश्य कंजरी के पेट से पैदा हुए थे जिसका पेशा व्यभिचार और नाचना भी था, किन्तु इससे वसिष्ठ पर कोई दोष नहीं आ सकता, क्योंकि वह कर्मानुसार ब्राह्मण और महर्षि बन गये।

(५९९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३७२, पं० २४ में रामसनेही को राँडसनेही लिखा है। क्या मधुर भाषण है! मानो स्वामीजी की वाणी से फूल टपकते हैं! —पृ० ३१, पं० ४

उत्तर—आपने स्वामीजी का पूरा पाठ नहीं दिया। स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—

"नाम तो धरा रामसनेही और काम करते हैं राँडसनेही का, जहाँ देखो वहाँ राँड सन्तों को घेर रही हैं, यदि ऐसे-ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती? ये लोग अपने चेलों को जूठ खिलाते हैं, और स्त्रियाँ भी लम्बी पड़के दण्डवत् प्रणाम करती हैं, एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है"।

जो अवस्था स्वामीजी ने अपने लेख में वर्णित की है, यदि यह ठीक है तो स्वामीजी का उनको राँडसनेही लिखना सोलह आने ठीक और उनकी अवस्था का प्रकाशक है। इसे गाली देना नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में प्रत्येक आदमी को ऐसी व्यवस्था देनी ही पड़ती है, जैसेकि राधा ने कृष्ण को परस्त्रीगामी देखकर कहा कि—

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत् पुरतो हरे। कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट॥ ५९॥
हे सुशीले शशीकले हे पद्मावति माधवि। निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम्॥ ६३॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ३

यहाँ राधा का कृष्ण को लोल, रतिचौर, अतिलम्पट और धूर्त कहना गालियाँ नहीं अपितु कृष्ण की अवस्था का सत्य प्रतिपादन है। गालियाँ तो और प्रकार की होती हैं, जैसेकि—

विश्वामित्रो बभूवाथ मोहितः शिवमायया। रेमे मेनकया व्यास वने कामवशं गतः॥ ३५॥

—शिव० उमा० अ० ४

इसका नाम गाली है। आशा है कि अब आप फूल और त्रिशूल में विवेक करने के योग्य हो जावेंगे।

(६००) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३३३ में "वृन्दावन जब था, तब था, अब तो वेश्यावन है", यह लिखा है। आर्यसमाजियों ने वृन्दावन में गुरुकुल खोल स्वामीजी के इस लेख को असत्य सिद्ध कर दिया। —पृ० ३१, पं० ७

उत्तर—आपने अपनी चोरी की आदत के अनुसार स्वामीजी के पाठ को चुरा लिया है। स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—"वृन्दावन जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् लल्ला-लल्ली और गुरु-चेली आदि की लीला फैल रही है"।

क्या स्वामीजी का यह लेख ग़लत है? क्या अब भी वृन्दावन में रासलीलाओं द्वारा व्यभिचार की भरमार नहीं है? स्वामीजी ने इन शब्दों में वृन्दावन के खुले व्यभिचार का नक़्शा खेंचकर जनता के सामने रख दिया है। आर्यसमाज का गुरुकुल वृन्दावन शहर से बाहर जंगल में है और वह इसलिए खोला गया है कि इसके द्वारा वृन्दावन को फिर से योगिराज, गोरक्षक, सदाचारी कृष्ण की नगरी बनाया जा सके। यह वृन्दावन की बदकिस्मती है कि उसने अभी तक गुरुकुल के सदाचार से शिक्षा ग्रहण करके अपने-आपको योगियों की नगरी नहीं बनाया, अतः स्वामीजी का लेख गालियाँ नहीं अपितु वृन्दावन की वर्त्तमान अवस्था का प्रदर्शक है। यदि आपने गालियाँ देखनी हों तो देखिए—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नभोजनः। जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा॥ २०॥
किन्नु राजेन्द्रपुत्रश्च किन्नु वा मुनिपुत्रकः। वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्यमन्दिरे॥ २१॥
शिशुकाले च स्त्रीहत्या कृतानेन दुरात्मना। कुब्जा मृता च सम्भोगाद्वाससा रजको मृतः॥ २२॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० १०६

इसका नाम गालियाँ हैं, जो पुराणों में श्रीकृष्णजी को दी गई हैं।

(६०१) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३२० में लिखा है कि "मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं है किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है"। बलिहारी है स्वामीजी के इस मधुर लेख और विज्ञान पर! —पृ० ३१, पं० १५

उत्तर—स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है, क्योंकि वेद कहता है कि—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपास्ते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳरताः॥

—यजुः० ४०।९

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि परमेश्वर के स्थान में प्रकृति अथवा प्रकृति से बने पदार्थ पत्थर, वृक्ष, जलादि को पूजनेवाला घोर नरक में जाता है। इसी का नाम वह खाई है कि जिसमें गिरकर चूर-चूर हो जाता है। स्वामीजी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल और सत्य है, गालियाँ नहीं हैं। गालियाँ तो ये हैं कि—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥ १३॥

—श्रीमद्भागवत स्कं० १० अ० ८४

ये हैं गालियाँ, जहाँ मूर्त्तिपूजक को बैल और गधा लिखा गया है।

(६०२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३१६ में लिखा है "सुनो अन्धो! पूर्ण परमात्मा न आता है और न जाता है।" स्वामीजी का 'सुनो अन्धो!' यह लेख आर्यसमाजियों को सुनहरी अक्षरों में लिखकर अपने कमरों में लटकाना चाहिए। —पृ० ३१, पं० २४

उत्तर—परमात्मा को **'ईशावास्यम्'**—यजुः० ४०।१ तथा **'स पर्यगात्'**—यजुः० ४०।८ इत्यादि मन्त्रों में सर्वत्र परिपूर्ण, व्यापक वर्णन किया गया है। उसको आने-जानेवाला, एकदेशी

मानकर बुलाना अविद्या है। ऐसे अविद्यायुक्त मनुष्यों के लिए वेद कहता है कि—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते॥ —यजुः० १०।१२

यह मन्त्र स्पष्ट कह रहा है कि जो लोग अविद्या का आश्रय लेते हैं वे अत्यन्त अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं, अर्थात् नेत्ररहित जन्मों को अथवा अज्ञानमय जन्मों को प्राप्त होते हैं। स्वामीजी का उपर्युक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है और आर्यसमाजियों को यह मन्त्र बेशक सुनहरी अक्षरों में लिखकर अपने कमरों में लटकाना चाहिए। इसका नाम गालियाँ नहीं है। गालियाँ इस प्रकार की होती हैं—

जटाभाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः॥६३॥
कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥६४॥
षड् दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग॥७१॥
चिन्तया दुःखिता मूढास्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः॥७५॥ —गरुड० प्रेत० अ० ४९

क्या अब भी आप गारी (गाली) और हितकारी में विवेक न कर सकेंगे?

(६०३) प्रश्न—स्वामीजी ने आर्याभिविनय के **'तमीशानम्'** इस मन्त्र के भाष्य में ईश्वर को बुलाया है। जब ईश्वर कहीं आते-जाते ही नहीं तो फिर इस मन्त्र में स्वामीजी ने ईश्वर का आह्वान क्यों किया? —पृ० ३२, पं० १

उत्तर—आर्याभिविनय में इस मन्त्र का अर्थ करते हुए स्वामीजी ने जो 'आह्वान करते हैं' लिखा है इसके भाव को यजुर्वेदभाष्य में इसी मन्त्र का भाष्य करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि '(हूमहे) स्तुति करते हैं' (यजुः० २५।१८) अतः सिद्ध हुआ कि स्वामीजी की परिभाषा में आह्वान करने के अर्थ स्तुति करने के हैं। ईश्वर को आने-जानेवाला, एकदेशी समझकर उसके बुलाने के अर्थ नहीं हैं।

(६०४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० २, पृ० २५ में लिखा है कि—'जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पाँच जूता, डण्डा वा चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं'। आर्यसमाजियो! तुम बतलाओ कि स्वामीजी के ये शब्द कटु हैं या मधुर, सच्चे हैं या झूठे? क्या तुम इस बात पर तैयार हो कि जूते लगाकर हनुमान्, देवी और भैरव को भगा दो? —पृ० ३२, पं० ६

उत्तर—जब आर्यसमाजी किसी मनुष्य के अन्दर हनुमान्, भैरव तथा देवी का प्रवेश करना मानते ही नहीं तो फिर उनको जूते मारकर भगाने का सवाल ही मिथ्या है, क्योंकि स्वामीजी ने उपर्युक्त पाठ के आगे ही लिखा है कि—'क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है'। स्वामीजी के ये शब्द जनता के लिए हितकारी हैं और सर्वथा सच्चे हैं। ऐसे लोगों को अवश्य ही दण्ड देना चाहिए कि जो लोगों को धोखा देकर ठगते हैं। इसके लिए वेद की आज्ञा है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ —यजुः० ४०।३

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जो लोग आत्महत्या करते हैं, अर्थात् अपनी आत्मा के विरुद्ध चलकर लोगों को धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, ठग्गी और मक्कारी करते हैं, वे इस जन्म में भी दुःख पाते हैं और मरने के पश्चात् भी ऐसे जन्म को प्राप्त होते हैं जो अन्धकार, अज्ञान से ढके हुए हैं। ऐसे ठगों को मरने पर परमात्मा तो दण्ड देगा ही, किन्तु जीते हुओं को भी जनता की ओर से अवश्य दण्ड मिलना चाहिए तभी वे इस जन्म में दुःख पा सकते हैं। गोया इस प्रकार आत्महत्यारे, झूठे, ठग, मक्कारों को दण्ड देना ईश्वर की आज्ञापालन करना ही है, अतः स्वामीजी

का लेख सर्वथा ईश्वर की आज्ञा-पालन करने का उपदेश करनेवाला है।

(६०५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११, पृ० ३५९ में लिखा है कि ''जब उनसे दण्ड न पाया तो इनके कर्मों ने पुजारियों को बहुत-से मूर्त्ति-विरोधियों से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है और जबतक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी।'' यहाँ पर स्वामीजी मूर्त्तिपूजा को कुकर्म और विदेशियों के द्वारा भारत के पददलित होने को प्रसादी लिखते हैं।
—पृ० ३२, पं० १३

उत्तर—जिस कर्म के करने की वेद आज्ञा देता है वह सुकर्म वा धर्म है और जिस कर्म के करने का वेद निषेध करता है वह कुकर्म वा अधर्म है। चूँकि वेद '**अन्धन्तमः**' इत्यादि यजुः० ४०।९ मन्त्र के द्वारा मूर्त्तिपूजा को नरक में ले-जाने योग्य पाप बतला रहा है, अतः स्वामीजी का मूर्त्तिपूजा को कुकर्म लिखना सोलह आने सत्य है। चूँकि कुकर्म का फल नरक, अर्थात् दुःख ही होता है, अतः भारतवासियों का पददलित होना मूर्त्तिपूजा का ही फल मिला है और जबतक मूर्त्तिपूजा को न छोड़ेंगे यह दुःख मिलता ही रहेगा। यहाँ प्रसादी शब्द लाक्षणिक रूप से दण्ड के अर्थों में वर्त्तमान है। यदि आप यह चाहते हैं कि यह फल आपको न मिले तो आप वेदविरुद्ध मूर्त्तिपूजारूप कुकर्म का परित्याग कर दें।

(६०६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३३१, में लिखा है कि ''आप पराधीन भटियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं''। आर्यसमाजियो! देखो स्वामीजी के क्या मधुर शब्द हैं! —पृ० ३२, पं० २५

उत्तर—भला! आप ही बतलावें कि जो लोग मूर्त्तियों की सहायता के आश्रय हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहे और अब दासता में फँसकर दुःख पा रहे हैं, उनके लिए उपर्युक्त उपमा से नर्म और क्या उपमा दी जा सकती है? अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है।

(६०७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११, पृ० ३०५ में लिखा है कि—''उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं।'' ईश्वरपूजक शंकर की स्थापना करनेवालों के लिए स्वामी दयानन्दजी के ये मधुर वचन हैं! —पृ० ३३, पं० ३

उत्तर—स्वामीजी के ये शब्द ईश्वरपूजकों के लिए नहीं अपितु महादेव के लिंग को पार्वती की योनि में स्थापना करके उसकी पूजा करानेवालों के लिए हैं। इस प्रकार मूत्रेन्द्रिय की पूजा करानेवालों को संसार में कौन भला मानस और शरीफ़ कह सकता है? अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है।

(६०८) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११, पृ० ३११ में लिखा है कि ''अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंकके सब शरीर को जलावें।'' क्या मधुर शब्द हैं! —पृ० ३३,पं० १६

उत्तर—जो लोग अपने शरीर पर दाग लगाकर मोक्ष होना मानते हैं, यहाँ पर स्वामीजी ने उनका खण्डन किया है। आपने पाठ को चुरा लिया है। पूरा पाठ इस प्रकार है—

''**तप्ततनूः**'' इस प्रमाण से अग्नि ही से तपाना चक्रांकित लोग स्वीकार करें तो अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंकके सब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषण आदि पवित्र कर्म करना तप लिया है''। अब समस्त पाठ को पढ़कर बतलाने की कृपा करें कि शंका क्या है?

(६०९) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३४० में लिखा है कि—वाह रे वाह! भागवत के बनानेवाले लालबुझक्कड़! क्या कहना! तुझको ऐसी-ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई। निपट अन्धा ही बन गया। भला! इन महा झूठ बातों को अन्धे पोप और बाहर-भीतर की फूटी आँखोंवाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की

बात है कि ये मनुष्य हैं या अन्य कोई? इन भागवतादि पुराणों के बनानेहारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये वा जन्मते समय मर क्यों न गये, क्योंकि इन पोपों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दु:खों से बच जाता।'' व्यास के लिए यह गालियों का जंकशन लिखा गया है।

—पृ० ३३, पं० २१

उत्तर—प्रथम तो स्वामीजी व्यासजी को पुराणों का कर्त्ता ही नहीं मानते। देखिए स्वामीजी क्या लिखते हैं—

''जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते, क्योंकि शारीरकसूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी, परस्पर-विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास-सदृश विद्वानों का काम नहीं, किन्तु यह काम [वेद-शास्त्र] विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् पामरों का है।''

अत: सिद्ध हुआ कि स्वामीजी का यह लेख व्यासजी के लिए नहीं है।

दूसरे, आपने स्वामीजी के लेख के मध्य में से बहुत-सा लेख चुरा लिया है, जिससे आपका लेख स्वामीजी के अभिप्राय को प्रकट नहीं कर सकता। वह मध्य का लेख इस प्रकार है—

[निपट अन्धा ही बन गया] भला! स्त्री-पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही है, परन्तु परमेश्वर के सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। और हाथी, ऊँट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहाँ हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने माँ-बाप को न खा गये और मनुष्य-शरीर से पशु-पक्षी, वृक्षादि का उत्पन्न होना क्योंकर सम्भव हो सकता है? धिक्कार है पोप और पोपरचित इस महा असम्भव लीला को जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है [भला इन महा झूठ बातों को] इतना पाठ आपने चुरा लिया है जो इन कोष्ट में दिये हुए दोनों वाक्यों के मध्य में है। स्वामीजी के पूरे लेख को पढ़कर समालोचना के विषय में कोई सन्देह नहीं रहता।

तीसरे, इस प्रकार के वाक्य आर्षग्रन्थों में प्रयुक्त होते आये हैं, जैसेकि धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि—

मासेऽ पतिष्य: पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे न वा गर्भोऽ प्यभविष्य: पृथाया:।
तत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्यन्न चेत् संग्रामादपयानं दुरात्मन्॥ २१॥
धिक् गांडीवं धिक् च ते बाहूवीर्यमसंख्येयान् वाणगणाँश्च धिक् ते।
धिक् ते केतुं केसरिण: सुतस्य कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते॥ २२॥

—[गीता० सं० में श्लोक संख्या० २९-३० है।—सं०]—महा० कर्ण० अ० ६८

कहिए महाराज! क्या स्वामीजी के शब्द धर्मपुत्र युधिष्ठिर से भी अधिक कठोर हैं, जिसके लेखक कि स्वयं व्यासजी हैं?

इससे सिद्ध है कि स्वामीजी का समस्त लेख गालियाँ नहीं, अपितु यथार्थ अवस्था का प्रकाशक है।

(६१०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११, पृ० ३५६ में लिखा है कि—''उस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई, नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता''। इनके रचयिता विष्णु के

सत्रहवें अवतार भगवान् वेदव्यास हैं। उन्हीं के लिए कसाई पदवी दी गई है। यह दयानन्द की सभ्यता है! —पृ० ३५, पं० १

उत्तर—स्वामीजी के लेख में उपर्युक्त लेख से पूर्व निम्न लेख है कि—

"ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ीभर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है, व्रत करनेवालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेषकर बंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है"। अब इस लेख को पहले पढ़कर फिर अपने दिये हुए लेख को पढ़ने की कृपा करें तो आपको अनुभव होगा कि स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है।

स्वामीजी का यह लेख व्यासजी के लिए नहीं है, क्योंकि स्वामीजी पुराणों का लेखक व्यासजी को नहीं मानते।

आचार्यों की भावप्रधानता

(६११) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० १३४ में लिखा है कि—

"विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्।

नाना प्रकार के रत्न, सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवे"। स्वामी दयानन्दजी विरक्त थे। जब इनको धनलोलुपता ने घेरा तब स्वार्थसिद्धि के लिए मनु के श्लोक को काट-छाँटकर ऊपर लिखे अनुसार बना दिया। वह श्लोक मनु में इस प्रकार है—

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्। वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥ ६॥

—मनु० ११

स्वामीजी ने श्लोक ही लौट दिया। पाठ भी बदला और श्लोक का भाव भी बदला। ब्राह्मणों की बजाय संन्यासी को रत्न देने लिख दिये। —पृ० ३६, पं० २

उत्तर—श्रीमान्जी! आचार्य लोग भावप्रधान होते हैं, अर्थात् वह अपना पुस्तक लिखते हुए दूसरे आचार्यों की सम्मति का अपने शब्दों में वर्णन कर देते हैं। इससे उनकी नीयत पर शक नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो कुछ वे किसी आचार्य के नाम से लिखते हैं, उस आचार्य के ग्रन्थ में उस भाव का पाठ मौजूद होता है। अन्तर केवल शब्दों में होता है, भाव में अन्तर नहीं होता, जैसेकि व्यासजी ने मनु के नाम से निम्न श्लोक महाभारत में दिये हैं—

१. **स्वपत्नीप्रभवान् पञ्च लब्धान् क्रीतान् विवर्धितान् ।**
   कृतानन्यासु चोत्पन्नान् पुत्रान् वै मनुरब्रवीत् ॥ ९८॥ —महा० आदि० अ० ७४

२. **उत्तमाद्देवरात् पुंसः कांक्षन्ते पुत्रमापदि ॥ ३४॥**
   अपत्यं धर्मफलदं श्रेष्ठं विन्दन्ति मानवाः। आत्मशुक्रादपि पृथे मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्॥ ३५॥
   —महा० आदि० अ० १२०

३. **चातुर्वर्णस्य कर्माणि विहितानि स्वयंभुवा। धनं यैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति॥ ४॥**
   अधीत्य ब्राह्मणो वेदान् याजयेत यजेत च। क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत्॥ ५॥
   वैश्योऽधिगम्य वित्तानि ब्रह्मकर्माणि कारयेत्।
   शूद्रः शुश्रूषणं कुर्यात्त्रिषु वर्णेषु नित्यशः। वंचनायोगविधिभिर्वैतसीं वृत्तिमाश्रितः॥ ६॥
   —महा० विराट० अ० ५०

४. **अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी। विषमौदुम्बरं शंखः स्वर्णनाभोऽथ रोचना॥ १०॥**
   गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्॥ ११॥ —महा० उद्योग० अ० ६८

५. **यो ददाति स्थितः स्थित्यां तादृशाय प्रतिग्रहम्। उभयोरक्षयं धर्म्यं तं मनुः प्राह धर्मवित्॥ ३२॥**
—महा० अनु० अ० ९८

६. **हविर्यत् संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचिः। वेदोक्तेन प्रमाणेन पितृणां प्रक्रियासु च॥५२॥ अतोऽन्यथा वृथामांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत्॥५३॥**
—महा० अनु० ११५ [गीता० सं० में हटाया]

७. **सत्याय हि यथा नेह जह्याद्धर्मफलं महत्। भूतानामनुकम्पार्थं मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।**
—महा० शान्ति० अ० २६६

८. **आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना। धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत्॥ १९॥**
—महा० शान्ति० अ० ५५

९. **तेभ्यो नमश्च भद्रं च ये शरीराणि जुह्वते। ब्रह्मद्विषो नियच्छन्तस्तेषां नोऽस्तु सलोकता॥ ब्रह्मलोकजितः स्वर्ग्यान् वीराँस्तान् मनुरब्रवीत्॥ ३०॥** —महा० शान्ति० अ० ७८

१०. **न केनचिद्याचितव्यः कश्चित् कस्यांचिदापदि। इति व्यवस्था भूतानां पुरास्तान्मनुना कृता॥ १६॥**
—महा० शान्ति० अ० ८८

११. **अपि चैतत् पुरा राजन् मनुना प्रोक्तमादिताः॥ १०॥ सुप्रणीतेन दण्डेन प्रियाप्रियसमात्मना। प्रजा रक्षति यः सम्यग्धर्म एव स केवलः॥ ११॥ यथोक्तमेतद्वचनं प्रागेव मनुना पुरा॥ १२॥** —महा० शान्ति० अ० १२१

१२. **माता पिता गुरुर्गोप्ता वह्निर्वैश्रवणो यमः। सप्तराज्ञो गुनानेतान् मनुराह प्रजापतिः॥ १०२॥**
—महा० शान्ति० अ० १३९

१३. **अपि चाप्सु निमज्जेत जपंस्त्रिरघमर्षणम्। यथाश्वमेधावभृथस्तथा तन्मनुरब्रवीत्॥ २७॥**
—महा० शान्ति० अ० १५२

१४. **प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ। राजधर्मेषु राजेन्द्र ताविहैकमनाः शृणु॥ ४२॥ षडेतान् पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे। अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥ ४३॥ अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्। ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥ ४४॥**
—महा० शान्ति० अ० ५७

१५. **मनुना चैव राजेन्द्र गीतौ श्लोकौ महात्मना। धर्मेषु स्वेषु कौरव्य हृदि तौ कर्तुमर्हसि॥ २३॥ अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्। तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति॥ २४॥ अयो हन्ति यदाश्मानमग्निना वारि हन्यते। ब्रह्म च क्षत्रियो द्वेष्टि तदा सीदति ते त्रयः॥ २५॥**
—महा० शान्ति० अ० ५६

ये जितने श्लोक व्यासजी ने महाभारत में मनु के नाम से दिये हैं इनमें से प्रमाण नं० १५ में वर्त्तमान '**अद्भ्योऽग्निः**' इस श्लोक का पाठ तो मनु में हूबहू विद्यमान है, शेष कोई श्लोक हूबहू मनु में विद्यमान नहीं है। हाँ, इस अभिप्राय के प्रतिपादक श्लोक मनु में विद्यमान हैं। इससे व्यासजी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता कि उन्होंने किसी स्वार्थसिद्धि से श्लोकों का पाठ बदल दिया है, अपितु मानना पड़ेगा कि आचार्य ने मनु के भाव को अपने शब्दों में वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने भी मनु के "**धनानि तु यथाशक्ति**" इत्यादि श्लोक के भाव को अपने "**विविधानि च**" इत्यादि शब्दों द्वारा वर्णन किया है। इससे ऋषि दयानन्दजी की नीयत पर शक करना कि "उन्होंने स्वार्थवश पाठ बदल दिया है" पाजीपन नहीं तो और क्या है? स्वामीजी ने "**विविधानि च रत्नानि**" लिखा है, मनु के श्लोक में "धनानि" विद्यमान

है, ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। और "विविक्तेषु" पद दोनों श्लोकों में विद्यमान है, अतः विवादास्पद पदों में तो कोई झगड़े की बात नहीं है। रही बात अर्थों की, सो धन और रत्न तो एक ही अर्थ के वाचक हैं। अब केवल "विविक्त" शब्द के अर्थों में ही मतभेद है आपने इसका अर्थ 'त्यागी ब्राह्मण' किया है और स्वामीजी ने इसका अर्थ 'संन्यासी' किया है। हमें तो इसमें भी मतभेद नज़र नहीं आता, क्योंकि त्यागी ब्राह्मण का नाम ही संन्यासी है, जैसेकि—

त्यागधर्मः पवित्राणां संन्यासं मनुरब्रवीत्॥ १२॥ —महा० शान्ति० अ० १५२

"अर्थात् पवित्र ब्राह्मणों का त्यागधर्म स्वीकार करना ही संन्यास है।" ऐसा मनुजी ने कहा है, अतः स्वामीजी का यह लेख सर्वथा सत्य है। अब रही यह बात कि संन्यासियों को धन ग्रहण करना चाहिए वा नहीं, सो स्वामीजी मानते हैं कि परोपकार और देशहित में लगाने के लिए संन्यासियों को अवश्य धन ग्रहण करना चाहिए और ऐसा करना वेदानुकूल है, जैसाकि—

तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये। येना पतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥

—अथर्व० कां० २० सू० ९ मं० ३

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि संन्यासियों के लिए धन देना हितकारी है, अतः स्वामीजी का अर्थ सर्वथा वेदानुकूल है। यदि आप संन्यासियों को धन देना वेदविरुद्ध मानते हैं तो फिर आप लोग सोने की अंगूठी और जंजीर पहननेवाले, सूटिड बूटिड संन्यासियों को सनातनधर्म के उत्सवों पर रुपया-पैसा और दक्षिणा भेंट में क्यों देते हैं?

भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व अध्याय ४० में लिखा है कि—

सप्तव्याधकथा विप्रा मनुना परिकीर्त्तिता॥ २६॥

क्या कोई पौराणिक सात शिकारियों की कथा मनु से दिखा सकता है?

(६१२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ८, पृ० २२५ में लिखा है कि—

"**मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त**"—यह यजुर्वेद में लिखा है। क्या किसी आर्यसमाजी में इतनी हिम्मत है जो इन दोनों श्रुतियों को यजुर्वेद में दिखा दे?

—पृ० ३६, पं० ११

उत्तर—सत्यार्थप्रकाश में यह पाठ देकर लिखा है कि "यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है" सो अब विचार कीजिए कि "ततो मनुष्या अजायन्त" यह पाठ तो स्वामीजी के लेखानुसार हूबहू यजुर्वेद के ब्राह्मण शतपथ में १४।४।२।१ में विद्यमान है, जिसको आपने भी अपने पुस्तक में पृ० २३४ पर सृष्टिविषय में दिया है। आप ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानते हैं, अतः यदि यह पाठ वेद के नाम से भी दर्ज होता तो भी आप कोई आक्षेप न कर सकते थे। अब रही बात "**मनुष्या ऋषयश्च ये**" की, सो यह स्वामीजी ने यजुर्वेद के "**तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये**"—यजुः० ३१।९ इस मन्त्र का भाव अपने शब्दों में लिख दिया है। इसमें स्वामीजी ने 'साध्याः' के स्थान में 'मनुष्याः' लिख दिया है। और 'साध्याः' और 'मनुष्याः' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं, जैसाकि महीधर ने भी लिखा है कि—

साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः।

प्रजापति प्रभृति जो सन्तान पैदा करने के योग्य हों, उनका नाम 'साध्याः' है।

अतः स्वामीजी ने यजुर्वेद के भाव को अपने शब्दों में वर्णन किया है और ऐसा करना सब आचार्यों की पुस्तकों में मिलता है, जैसाकि महाभारत में व्यासजी महाराज ने लिखा है कि—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्॥ ६॥ —महा० आदि० अ० १०४

व्यासजी का यह लेख अथर्व० १८।३।२ का भाव ही अपने शब्दों में बयान किया हुआ

है। अथर्ववेद का पाठ है—

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदम्।

जैसे व्यासजी ने वेद के 'हस्तग्राभस्य' पाठ का अनुवाद 'पाणिग्राहस्य' कर दिया है वैसे ही स्वामीजी ने भी 'साध्याः' का अनुवाद 'मनुष्याः' कर दिया है। इस प्रकार के सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं, जैसेकि—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

—मनु० २।१५

इस श्लोक में मनु ने—

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता॥ ३॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता॥ ४॥

—अथर्व० १९।५५

इन मन्त्रों का भाव अपने शब्दों में वर्णन किया है और

वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्राँश्चैव पितामहान्। प्रपितामहाँस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥

—मनु० ३।२८४

मनु ने यह भी "देवाः पितरः पितरो देवाः" अथर्व० ६।१२३।३ के भाव का ही अपने शब्दों में वर्णन किया है। वरना क्या कोई सनातनधर्मी ऐसा मौजूद है जो मनु में श्रुति अर्थात् वेद के नाम से लिखे हुए दोनों श्लोकों को अक्षरशः वेद में से दिखलाने का साहस कर सके? ऐसे ही ग्रन्थों में अनेक पाठ वेद के नाम से दिये गये हैं, जैसेकि—

स्वयंवरः क्षत्रियाणामितीयं प्रथिता श्रुतिः॥ ७॥ —महा० आदि० अ० १९१

तदिदं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजेति च॥ ७३॥ —महा० वन० अ० २

ओषध्यो वीरुधश्चैव पशवो मृगपक्षिणः। अन्नाद्यभूता लोकस्य इत्यपि श्रूयते श्रुतिः॥ ६॥

[पूना संस्करण अ० १९९, श्लो० ५।—सं०]—महा० वन० अ० २०७

अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपि श्रूयते श्रुतिः॥ ११॥ —महा० वन० अ० २०७

आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः। शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः॥ १३॥ —महा० उद्योग० अ० ३६

वासुदेवार्जुनौ वीरौ समवेतौ महारथौ। नरनारायणौ देवौ पूर्वदेवाविति श्रुतिः॥ १९॥

—महा० उद्योग० अ० ४८

त्वमित्युक्तो हि निहितो गुरुर्भवति भारत॥ ८३॥
अथर्वांगिरसी ह्येषा श्रुतिनामुत्तमा श्रुतिः॥ ८५॥ —महा० कर्ण० अ० ५९

न चेद्धर्तव्यमन्यस्य कथं तद्धर्ममारभेत्। एतावानेव वेदेषु निश्चयः कविभिः कृतः॥ २६॥

—महा० शान्ति० अ० ८

इति चाप्यत्र कौन्तेय मन्त्रो वेदेषु पठ्यते। वेदप्रमाणविहितं धर्मं च प्रब्रवीमि ते॥ १८॥
अपेतं ब्राह्मणं वृत्ताद्यो हन्यादाततायिनम्। न तेन ब्रह्महा स स्यान्मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥ १९॥

—महा० शान्ति० अ० ३४

बृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सुरापो ब्राह्मणः पुनः। समितिं ब्राह्मणो गच्छेदिति वै ब्रह्मणः श्रुतिः॥ १८॥

—महा० शान्ति० अ० ३५

इन्द्रमेव प्रवृणुते यद्राजानमिति श्रुतिः॥ ४॥ —महा० शान्ति० अ० ६७

तपो यज्ञादपि श्रेष्ठमित्येषा परमा श्रुतिः	**॥ १७ ॥**	—महा० शान्ति० अ० ७९
दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः	**॥ २७ ॥**	—महा० शान्ति० अ० ९०
न ह्यृतेऽर्थेन वर्तेते धर्मकामविति श्रुतिः	**॥ १२ ॥**	—महा० शान्ति० अ० १६७
सर्वे लाभाः साभिमाना इति सत्या च ते श्रुतिः	**॥ १० ॥**	—महा० शान्ति० अ० १८०
पिता यदाह धर्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः	**॥ १६ ॥**	—महा० शान्ति० अ० २६५
अजश्चाश्वश्च मेषश्च गोश्च पक्षिगणाश्च ये	**।**	
ग्राम्यारण्याश्चौषधयः प्राणस्यान्नमिति श्रुतिः	**॥ १८ ॥**	
तथैवान्नं ह्यहरहः सायंप्रातर्निरूप्यते	**॥ १९ ॥**	
पशवश्चाथ धान्यं च यज्ञस्यांगमिति श्रुतिः	**॥ २० ॥**	—महा० शान्ति० अ० २६७
अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते	**॥ ७ ॥**	—महा० अनु० अ० १९
निरिन्द्रिया ह्यशास्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति श्रुतिः	**॥ ११ ॥**	—महा० अनु० अ० ४०

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः ॥ ॐ श्री दुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति ॥ ८ ॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २७

ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति
अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः। सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥ ३७ ॥

—ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ७८

क्या कोई माई का लाल पौराणिक पण्डित पृथिवी पर है जो इन श्रुतियों को चारों वेदों में से निकालकर दिखावे?

(६१३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११, पृ० ३४३ में लिखा है "हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि यह पृथिवी को चटाई के समान लपेट सिरहाने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा, दोनों की लड़ाई हुई, वराह ने हिरण्याकक्ष को मार डाला"। यह कथा श्रीमद्भागवत के नाम से लिखी गई है। इसका लिखना झूठ नहीं, वरना सफ़ेद झूठ है। हिरण्याक्ष ने न तो पृथिवी को उठाया और न चटाई की भाँति लपेटा एवं न वह पृथिवी को ले-गया। सब बातें झूठी हैं। —पृ० ३६, पं० २८

उत्तर—स्वामीजी ने यह कथा केवल भागवत को लक्ष्य में रखकर नहीं लिखी अपितु भागवतादि समस्त पुराणों को लक्ष्य में रखकर लिखी है, इसीलिए समीक्षा करते हुए स्वामीजी लिखते हैं कि "पृथिवी को तो वराहजी ने मुख में रक्खा, फिर दोनों किसपर खड़े होकर लड़े? वहाँ तो और कोई ठहरने की जगह नहीं थी, किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजी की छाती पर खड़े होके लड़े होंगे"। इसे सिद्ध है कि स्वामीजी का लक्ष्य समस्त पुराणों की समीक्षा है। और पुराणों में यह बात विद्यमान है, जैसाकि—

चतुर्मुखं प्रीणयित्वैव भक्त्या ह्यवध्यत्वं प्राप तस्मान्महात्मा।
ततो भूमिं करवद्वेष्टयित्वा निन्ये तदा दैत्यवर्यो महात्मा ॥ २० ॥

—गरुड० उत्तर० अ० २६

इस श्लोक से पृथिवी का लपेटना और उठाकर ले-जाना दोनों बातें सिद्ध हैं, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है। रही यह बात कि इस श्लोक में चटाई की भाँति लपेटना नहीं लिखा अपितु हाथ की भाँति लपेटना लिखा है। श्रीमान्‌जी! प्रथम तो यह प्रतीत होता है कि यहाँ पर "कट" के स्थान में भूल से "कर" छप गया है। यूँ भी हाथ की तरह लपेटने का मुहावरा

बोलचाल में नहीं है, बोलने में चटाई की तरह लपेटना ही आता है। दूसरे, यदि इसी पाठ को ठीक मान लिया जाए तो भी लपेटना तो विद्यमान है और स्वामीजी के प्रश्न इस स्थिति में भी ज्यों-के-त्यों अटल हैं। तीसरे, चटाई की भाँति पृथिवी का लपेटना सनातनधर्म में लिखा हुआ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, देखिए—

शिविमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम। य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् परिवेष्टयत्॥ १॥

—महा० द्रोण० अ० ५८

य इमान् सकलाँल्लोकान् चर्मवत् परिवेष्टयत्। इच्छन् प्रभुरचिन्त्यात्मा गोविन्दः पुरुषोत्तमः॥ २६॥

—महा० द्रोण० अ० ११०

यहाँ पर चर्म नाम मृगछाला का है जो चटाई के स्थान में प्रयुक्त की जाती है।

यदि भागवत की कथा को देखा जावे तो भी स्वामीजी के आक्षेप अटल ही रहते हैं, जैसेकि आपने भागवत का श्लोक लिखा है कि—

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽ रुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः॥ २॥

—भागवत० स्कं० ३ अ० १८

तहाँ अपनी दाढ के अग्रभाग से पृथिवी को ऊपर निकालकर धारण करनेवाले, आस-पास के सकल वीरों को जीतनेवाले और नेत्रों की आरक्त कान्ति से हिरण्याक्ष के तेज को लुप्त करनेवाले तिन वराहरूप श्रीहरि को देखकर वह हिरण्याक्ष दैत्य हँसकर कहने लगा अहो! कैसा आश्चर्य है कि वन में विचरनेवाला यह मृग!॥ २॥

स्वामीजी का वह प्रश्न वैसे-का-वैसा बना हुआ है। जब वराह ने पृथिवी को दाँत पर रखा हुआ था तो वराहजी काहे पर खड़े हुए थे और हिरण्याक्ष किस चीज़ पर खड़ा था और लड़ाई किसपर हुई, इत्यादि, अतः स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है और हम यह कह सकते हैं कि भागवत की श्लोक संख्या (**तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्रीभागवतमिष्यते॥** भागवत स्कं० १२ अ० १३, श्लो० ९) अठारह हज़ार लिखी है, किन्तु वर्त्तमान भागवत में तेरह हज़ार के लगभग श्लोक मिलते हैं, अतः पृथिवी का चटाई की भाँति लपेटना तथा खंभे पर कीड़ियों का चलना उन पाँच हज़ार श्लोकों में था कि निजको आपने लुप्त कर दिया है।

(६१४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३४३ में लिखा है कि "तब वह (प्रह्लाद) अध्यापकों से कहता था मेरी पट्टी में राम-राम लिख देओ। जब उसके बाप ने सुना, उसने कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है? छोकरे ने न माना। तब उसके बाप ने उसको बाँधके पहाड़ से गिराया; कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आग में तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला, मन में शंका हुई कि बचूँगा वा नहीं। नारायण ने उस खंभे पर छोटी-छोटी चींटियों की पंक्ति चलाई"। भागवत में यह कहीं नहीं लिखा कि प्रह्लाद कहता था मेरी पट्टी पर राम-राम लिख दो और न भागवत में खंभे का गरम करना लिखा है एवं न उसके ऊपर चींटियों का चलना।

—पृ० ३८, पं० २६

उत्तर—हम प्रश्न नं० ६१३ के उत्तर में लिख आये हैं कि इस प्रकरण में स्वामीजी का लक्ष्य केवल भागवत की समालोचना करना ही नहीं है अपितु भागवतादि समस्त पौराणिक ग्रन्थों की समालोचना करना स्वामीजी का लक्ष्य है, जैसाकि स्वामीजी का लेख है कि—

"सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणी-मंगलादि और सर्वभाषाग्रन्थ—ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं"। —सत्यार्थ० समु० ३

अत: यहाँ पर स्वामीजी भागवत का खण्डन करते हुए तत्सम्बन्धी भाषाग्रन्थों में वर्त्तमान कथाओं का भी खण्डन करते हैं और पौराणिक भाषाग्रन्थों में यह चीज़ विद्यमान है और पौराणिक लोग अपने ड्रामों, नाटकों, सिनेमाओं में भी बड़े गर्व के साथ यह सीन दिखाते हैं। हम आपको पौराणिक भाषाग्रन्थों में से इस विषय में प्रमाण देते हैं, जैसेकि—

(१) ''बाल-प्रह्लाद'' ला० कृष्णचन्द्र ज़ेबाकृत पुस्तक में गरम खंभे पर चलती कीड़ी दिखलाकर लिखा है—''प्रह्लाद और जलता हुआ लोह-स्तम्भ! हैं! मैं यह क्या देख रहा हूँ! एक छोटी-सी कीड़ी इस गरम और जला देनेवाले स्तम्भ पर चलती है और नहीं जलती'॥

(२) गुजराती अखबार बम्बई ३-१०-२३ साप्ताहिक अंक पृ० १४८५ में लिखा है कि— ''प्रह्लाद के लिए खंभे में कीड़ियों में ईश्वर का दर्शन''।

(३) 'सिलसिला धर्मप्रचार ट्रैक्ट नं० २—स्वामी बलीनाथजी योगीश्वर टिल्ला गुरुगोरखनाथकृत'—''कभी तो नर-नारायण होकर योगाभ्यास करता है और कभी च्यूँटीरूप रखकर लोहे के आग समान सुर्ख खंभे पर चलता हुआ दिखाई देता है''।

(४) ''प्रह्लादभक्त'' ला० लखपतरायकृत पृ० ६४—

''स्तून के ऊपर एक च्यूँटी चली जा रही थी, बस उसको देखकर प्रह्लाद का जोश बढ़ा''।

(५) ''मिलखी दा प्रह्लादभक्त''—

काफ़ कम इक सोचिया बुरा ज़ालिम। थम्म लोहे दा ताके लाल कीता॥
दिलों बहुत प्रह्लाद ने ख़ौफ खादा। जदों थम्म दी तरफ़ ख़याल कीता॥
कीड़ी चल्लदी थम्म ते नज़र आई। देके हौसला भक्त निहाल कीता॥
मिलखीराम जप्फा पाया दौड़के ते। ठण्डा-ठार चा दीनदयाल कीता॥

(६) ''राजकुमार प्रह्लाद'' श्रीयुत प्रेमीकृत—

''सिपाही जिस वक्त प्रह्लाद को खंभे से बाँधने के लिए खैंच रहे थे, प्रह्लाद को इस जलते हुए लोहे के बदन पर एक च्योंटी चलती हुई दिखाई दी'' ।

(७) ''प्रह्लादभक्त'' केशवचन्द्रकृत—

''जब थंभ के नज़दीक हुआ तो क्या देखता है कि उस लोहे के थंभ पर जो आग की तरह सुर्ख़ था, एक च्यूँटी फिर रही है''।

(८) ''कीर्तन प्रह्लादभक्त''स्वामी बलीनाथजी योगीश्वरकृत—

''जब प्रह्लाद ने खंभ निहारा। कीड़ी एक फिरे तिहवारा॥
कीड़ी देख प्रह्लाद आनन्दे। जले खंभ सों भेंटें कन्दे॥

जब प्रह्लादजी ने कीड़ी देखी लाल खंभ पर फिर रही तो खुश होकर खंभ को गले लगाने लगे।''

इत्यादि-इत्यादि सनातनधर्म के अनेक भाषाग्रन्थों में यह घटना भरी पड़ी है और राम नाम तो प्रह्लाद प्रत्येक कार्य में प्रयुक्त करते थे, अत: स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य है। क्या पौराणिक लोगों में यह नैतिक साहस है कि वे उपर्युक्त ग्रन्थकर्त्ताओं पर मुकद्दमा चलाकर इस घटना को झूठी सिद्ध करके दिखावें?

(६१५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३४४ में लिखा है कि **''रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति''** अक्रूरजी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथ पर बैठके सूर्योदय से चले, चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुँचे। अथवा घोड़े भागवत बनानेवाले की परिक्रमा करते रहे होंगे या मार्ग भूलकर भागवत बनानेवाले के घर में घोड़े

हाँकनेवाले और अक्रूरजी आकर सो गये होंगे।

ऊपर लिखा हुआ आधा श्लोक भागवत में नहीं है। —पृ० ३९, पं० १६

उत्तर—भागवत में तो सब-कुछ विद्यमान है, किन्तु यदि आपको नज़र न आवे तो स्वामीजी का क्या क़ुसूर है। देखने की कृपा करें—

रथेन वायुवेगेन कालिंदीमघनाशिनीम्॥ —भागवत० स्क० १० अ० ३९ श्लो० ३९

इससे रथ का तेज़ चलनेवाला होना सिद्ध है।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ —भागवत० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० १

इससे प्रात:काल चलना सिद्ध है।

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप। —भा० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४

इससे सायङ्काल पहुँचना सिद्ध है।

अब बतलाने की कृपा करें कि स्वामीजी ने क्या ग़लत लिखा है? '**रथेन वायुवेगेन**' यह पाठ तो हूबहू भागवत में मौजूद है और '**जगाम गोकुलं प्रति**' के स्थान में '**रथेन गोकुलं प्राप्तः**' और '**प्रययौ नन्दगोकुलम्**' विद्यमान है। 'गोकुलं' इन दोनों वाक्यों में विद्यमान है और 'जगाम' के स्थान में 'प्राप्त:' और 'प्रययौ' पड़े हुए हैं, जिनके अर्थ एक ही हैं।

स्वामीजी का लेख सर्वथा सत्य होने पर भी इससे इन्कार करना जनता को धोखा देना नहीं तो क्या है?

(६१६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश समु० ११, पृ० ३२७ में लिखा है कि—

'अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः। सेतुबन्ध इति ख्यातम्॥ —वाल्मी० लंका०

यहाँ स्वामी ने वाल्मीकि के श्लोकों को छिपाकर केवल तिटंगा श्लोक लिखा है। पूरा श्लोक इसलिए नहीं लिखा कि हमारे जाल की कलई खुल जाएगी। वाल्मीकि का लेख यह है—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥ २०॥
एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्। अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥ २१॥

[प्रश्नकर्त्ता ने श्लोक आगे-पीछे कर दिये हैं। —सं० सर्ग १२३]—वाल्मी० युद्ध० अ० १२५

कहिए, स्वामीजी ने इन सब बातों को दबाकर तीन पाद का श्लोक लिख संसार को धोखे में डालने के लिए असत्य लिखने पर कमर बाँधी या नहीं? —पृ० ४१ पं० १

उत्तर—स्वामीजी ने संक्षेप करने के विचार से थोड़ा पाठ दिया है, वरना पूरे पाठ से भी रामेश्वर का स्थापित करना और रामचन्द्रजी का मूर्त्तिपूजा करना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यह पाठ उस समय का है जब राम लंका को विजय करके विमान पर चढ़कर अयोध्या को वापस जा रहे थे और सीता को पृथिवी के पदार्थ दिखा रहे थे। यदि उस स्थान में रामेश्वर की स्थापना करके राम ने उसकी पूजा की होती तो पुल बाँधकर लंका पर चढ़ाई करने के समय उसका वर्णन आना चाहिए था, किन्तु उस स्थान में वाल्मीकि रामायण में रामेश्वर के स्थापन करने और उसकी पूजा का चिह्न भी नहीं है। जब जाते हुए ही उसका अभाव है तो आते हुए उसकी मौजूदगी की कल्पना करना महज़ पागलपन है। हाँ, यहाँ पर उस पुल का वर्णन अवश्य है जिसे बाँधकर राम ने लंका को विजय किया और इन श्लोकों में उसी पुल की स्तुति वर्णन की गई है। इन श्लोकों का अर्थ यथार्थरूप से इस प्रकार है कि—

''यह जो विस्तृत समुद्र के तरानेवाला पुल दीख रहा है इसका नाम सेतुबन्ध प्रसिद्ध है, यह सारे संसार से स्तुति करने के योग्य है।

यह पुल परमपवित्र है और महापातकी रावण के नाश करनेवाला है। यहाँ पर पूर्व अर्थात्

जाते समय व्यापक परमात्मा ने हमपर कृपा की, जिससे हम इस पुल के बाँधने में समर्थ हो सके॥ २१ ॥'' यह अभिप्राय है।

कहिए महाराज! इसमें स्वामीजी ने क्या झूठ लिखा है? क्या किसी पौराणिक में दम है कि इस लेख से शिवलिंग की पूजा सिद्ध कर सके?

(६१७) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३६९ में लिखा है कि—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानी।

सन्त की महिमा वेद न जाने।

नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर।

स्वामीजी का लिखा हुआ यह पाठ सुखमनी में नहीं है। स्वामी दयानन्दजी ने झूठ लिखा है। —पृ० ४२, पं० ५

उत्तर—स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है वह गुरुग्रन्थ साहिब का भाव लेकर लिखा है, जैसाकि—

(१) वेद पढ़त ब्रह्मा मरे (सत्यार्थप्रकाश)

वेद पढ़े पढ़े ब्रहमे जन्म गँवाया॥ १ ॥

—आसा श्री कबीरजी की बाणी। भक्ताँ दी बाणी।
—पृ० ९९ कैक्स्टन प्रेस, अनारकली, लाहौर।

यहाँ पर थोड़ा-सा पाठभेद तो है, परन्तु अभिप्राय में कोई भेद नहीं है।

(२) चारों वेद कहानी। —सत्यार्थप्रकाश

वेद कतेब इफ़तरा भाई, दिल का फिकर न जाई॥ १ ॥

—तिलंग बाणी कबीरजी दी। भक्तां दी बाणी पृ० १८०,
कैक्स्टन प्रेस, अनारकली, लाहौर।

यहाँ पर इफ़तरा नाम झूठी कहानियों का है।

साम कहे सेतम्बर स्वामी सच में आछे साच रहे।
सभ को साच समावे। ऋग् कहे रहा भरपूर।
राम नाम देवा में सूर। नां लये पराछित जाहि।
नानक तउ मोखंतर पाहि। यजु में जोरि छली चन्द्रावल कान्ह कृष्ण यादव भये।
पार जात गोपी लै आया विन्द्रावन में रंग किया।
कलि मांहि वेद अथर्वन हुआ नाम खुदाई अल्ला भया।
नील वस्त्र लै कपड़े पहरे तुर्क पठानी अमल किया॥ —आसा दी वार १३

यहाँ पर वेदों को कहानियाँ ही बतलाया गया है।

(३) सन्त की महिमा वेद न जाने। —सत्यार्थप्रकाश

साध की महिमा वेद न जाने। —सुखमनी ७८

यहाँ पर सन्त के स्थान में साध है, अर्थ एक ही है।

(४) नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर। —सत्यार्थप्रकाश

नानक ब्रह्म ज्ञानी आप परमेश्वर। —सुखमनी ८६

यहाँ पर अक्षरशः एक ही पाठ है।

अब बतलाने की कृपा करें कि स्वामीजी ने क्या झूठ लिखा है? इसे साफ़ सिद्ध है कि

स्वामीजी के सम्पूर्ण लेख सर्वथा सत्य हैं। हाँ, अन्य आचार्यों की भाँति स्वामीजी ने पुस्तकों का भाव अपने शब्दों में रख दिया है। शब्दों में चाहे फर्क़ हो, किन्तु अर्थ में फर्क़ नहीं है, इससे स्वामीजी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता और स्वामीजी के किये हुए आक्षेपों का भी कोई समाधान नहीं हो सकता।

स्वामीजी ने तो जो कुछ लिखा है उस अभिप्राय का पाठ ग्रन्थसाहिब में मौजूद है, किन्तु ग्रन्थसाहिब में जो वेदों के विषय में लिखा है वह वेदों से नहीं दिखाया जा सकता, जैसेकि साम में श्वेताम्बर स्वामी का वर्णन, ऋग्वेद में राम नाम स्मरण की आज्ञा, यजुर्वेद में चन्द्रावल का जबरन हरण करना, कृष्ण का गोपियों से रमण करना तथा अथर्ववेद में अल्ला का वर्णन तथा नीले वस्त्र पहनने की आज्ञा और मुसलमानों के राज का वर्णन नहीं दिखाया जा सकता तथा चारों वेदों का चार युगों में प्रकट होना भी ग़लत है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थसाहिब में लिखा है कि—

गेंडे मार होम यज्ञ कीना देवतियाँ दी बाणी।

क्या किसी भी वेद में गेंडे मारकर हवन करना दिखाया जा सका है? कदापि नहीं, अत: स्वामीजी ने जो ग्रन्थसाहिब के विषय में लिखा है, वह सर्वथा सत्य तथा ग्रन्थसाहिब में जो वेदों के विषय में लिखा है वह क़तई ग़लत है।

किन्तु आप यह तो बतलावें कि आपको सिक्खों का वकील किसने बनाया है? यदि ज़रूरत हुई तो सिक्ख हमसे पूछ लेंगे। आप कौन होते हैं? "मान-न-मान मैं तेरा महमान", "मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" ये दोनों लोकोक्तियाँ आपपर ही घटित होती हैं। और फिर आपके यहाँ तो सिक्खों के गुरु नानकदेवजी के विषय में अत्यन्त ही झूठ लिखा हुआ है, जैसेकि—

प्रत्यूषश्चैव पांचाले वैश्यजात्यां समुद्भवः। मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः॥ ८६॥
रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः। स वै म्लेच्छान् वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गमदर्शयत्॥ ८७॥

—भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १७

भाषार्थ—प्रभातकाल में पंजाब देश में वैश्य जाति में एक चौकीदार के पुत्र नानक नाम से मशहूर पैदा हुए॥ ८६॥ वह नानक रामानन्द के पास जाकर उसका शिष्य बनकर मुसलमानों को वश में करके उनको सूक्ष्म मार्ग दिखाने लगे॥ ८७॥

इस लेख में निम्नलिखित सुफ़ेद झूठ हैं—

(१) गुरु नानकजी वैश्यजाति में पैदा नहीं हुए, अपितु उनका पिता कालू खतरी (क्षत्रिय) था।

(२) उनका पिता चौकीदार न था अपितु दुकानदार था।

(३) गुरु नानकजी कभी भी रामानन्द के चेले नहीं बने।

क्या कोई पौराणिक वीर किसी पौराणिक जननी ने पैदा किया है जो उपर्युक्त बातों को सिक्ख इतिहास से सिद्ध करके दिखा सके?

आचार्यों का मन्त्र-निर्माणाधिकार

(६१८) प्रश्न—ब्राह्मण और अनेक संहिताओं को स्वामीजी ने वेद नहीं रक्खा। ऐसा लिखने पर केवल चार किताब रह गईं। इनमें पूरे मन्त्र नहीं। इस कारण स्वामी दयानन्दजी अपने-आप बनावटी, जाली मन्त्र बनाकर आर्यसमाजियों को यह समझा देते हैं कि देखो बेटाओ, ये मन्त्र हैं।

—पृ० १४१, पं० २०

उत्तर—कहिए महाराज! स्वामीजी तो ब्राह्मणग्रन्थों और अनेक शाखाओं को वेद नहीं मानते थे, किन्तु आपके आचार्य आश्वलायन, पारस्कर, गोभिल, व्यास आदि तो आपके खयाल में

ब्राह्मणग्रन्थों और शाखाओं को वेद मानते थे। फिर उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक मन्त्र बनाकर क्यों रखे हैं? वास्तव में बात यह है कि प्रत्येक आचार्य को यह हक़ प्राप्त है कि वह कर्मकाण्ड में प्रयोग करने के लिए मन्त्रों का निर्माण कर सके। शर्त यह है कि उन मन्त्रों की शिक्षा वेद के विरुद्ध न हो। इस अधिकार का सब आचार्यों की भाँति स्वामी दयानन्दजी ने भी प्रयोग किया है, जैसाकि हम आगे चलकर बतलाएँगे। इस बारे में प्रमाण भी है कि—

ऋचो यजूꣳषि सामानि निगदा मन्त्राः। —कात्यायनश्रौतसूत्र १।३।१

अर्थ—चारों वेद के तथा आचार्यों से कर्मकाण्ड में कहे सरल वाक्य 'मन्त्र' कहाते हैं।

(६१९) प्रश्न—सन्ध्या में जो '**ओं वाक् वाक्**' इत्यादि मन्त्र स्वामीजी ने दिया है, कृपा कर आर्यसमाजी बतलावें कि यह मन्त्र कौन-से वेद का है? —१४२, पं० १

उत्तर—सन्ध्या में इस मन्त्र को एक मन्त्र नहीं लिखा, अपितु लिखा है कि—'**इन्द्रियस्पर्शमन्त्राः**' इस लेख से सिद्ध है कि ये अनेक मन्त्र हैं और ये पूर्व आचार्यों ने कर्मकाण्ड में प्रयुक्त करने के लिए वेदमन्त्रों का आशय लेकर निर्माण किये हैं और वे मन्त्र इस प्रकार से हैं—

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुश्चक्षुः।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे।

जिन वेदमन्त्रों का भाव लेकर ये मन्त्र निर्माण किये गये हैं, वे वेदमन्त्र ये हैं—

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतꣳसम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्॥५॥
जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अंगुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः॥६॥
बाहू मे बलमिन्द्रियꣳहस्तौ मे कर्म वीर्यम्। आत्मा क्षत्रमुरो मम॥७॥
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी। ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः॥८॥
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जंघाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः॥९॥ —यजुः० २०

इन मन्त्रों को पढ़ने से आपको ज्ञात हो गया होगा कि विवादास्पद मन्त्र सर्वथा इन वेदमन्त्रों का अनुवादमात्र हैं। स्वामीजी ने इन्द्रियस्पर्श के इन 'वाक् वाक्' आदि मन्त्रों को कहीं भी वेद के नाम से नहीं लिखा। फिर आपका यह प्रश्न करना कि यह कौन-से वेद का मन्त्र है, सर्वथा अनुचित है। हाँ, ये मन्त्र सर्वथा वेदानुकूल हैं। क्या कोई जीता-जागता पौराणिक पण्डित संसार में विद्यमान है जो इन मन्त्रों को वेदविरुद्ध सिद्ध कर सके? ये मन्त्र स्वामीजी के अपने कल्पित नहीं हैं, अपितु आपके कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में भी विद्यमान हैं। इस समय हमारे सामने आपके कर्मकाण्ड का ग्रन्थ 'चतुर्विंशतिगायत्री' विद्यमान है, जोकि महेशप्रसाद द्वारा सत्यनाम प्रेस, बनारस सिटी में छपा है। इस ग्रन्थ में पृ० २ पर ये मन्त्र इस प्रकार से विद्यमान हैं—

ओं वाक् वाक्, ओं प्राणः प्राणः, ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभौ। ओं कण्ठे। ओं शिरसि। ओं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

तथा 'यजुर्वेदीय त्रिकाल सन्ध्या' बम्बई पुस्तक एजेंसी १९५।१ हरिसन रोड, कलकत्ता में ये मन्त्र हूबहू पृष्ठ ६ पर दिये गये हैं। इत्यादि-इत्यादि।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामीजी ने इन मन्त्रों को वेदानुकूल समझकर सन्ध्या में रख दिया है। आपके विचार से यदि वेद के मन्त्र ही सन्ध्या में लगाये जा सकते हैं तो आप कृपया बतलावें

कि आपकी सन्ध्या में जो मन्त्र आता है कि—

ओं सूर्यश्च मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः। पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमाकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्चिद् दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्यो ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।

—पञ्चमहायज्ञविधिः, निर्णयसागर छापाखाना बम्बई।
पण्डित बल्लभरामजीकृत भाषा, संवत् १९६९ सन् १९१३

कृपया बतलावें कि चारों वेदों में से यह कौन-से वेद का मन्त्र है और चतुर्विंशतिगायत्री में जो—

ओं वृषभानुजायै विद्महे कृष्णप्रियायै धीमहि। तन्नो राधा प्रचोदयात्॥ ७॥

यह राधागायत्री किस वेद में आती है? क्या कोई पौराणिक पण्डित इस राधागायत्री को वेदानुकूल सिद्ध करने का साहस करेगा?

(६२०) प्रश्न—स्वामीजी ने सन्ध्या में जो 'ओं भूः पुनातु शिरसि' इत्यादि मन्त्र दिया है, यह मन्त्र कौन-से वेद का है? —पृ० १४२, पं० १६

उत्तर—आपका यह पूछना व्यर्थ है कि 'यह मन्त्र कौन-से वेद का है' क्योंकि स्वामीजी ने ये मन्त्र भी सन्ध्या में वेद के नाम से नहीं दिये। चूँकि ये मन्त्र वेदानुकूल थे, अतः उन्होंने इन मन्त्रों को सन्ध्या में प्रयुक्त किया, जैसाकि—

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

ये मन्त्र वेद के निम्न मन्त्रों के अनुकूल हैं—

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥ १॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः॥ २॥

—अथर्व० १९।६०

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिन्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि॥ १४॥ —यजुः० ६।१४

इन मन्त्रों को पढ़कर आपको निश्चय हो गया होगा कि विवादास्पद मन्त्र केवल इन मन्त्रों का अनुवादमात्र हैं। अतः '**भूः पुनातु शिरसि**' इत्यादि मन्त्र सर्वथा वेदानुकूल हैं तथा 'यजुर्वेदीय त्रिकाल सन्ध्या' बम्बई पुस्तक एजेंसी १९५।१ हरिसन रोड, कलकत्ता में ये मन्त्र हूबहू पृष्ठ ७ पर विद्यमान हैं। क्या कोई जीता-जागता पौराणिक पण्डित पृथिवी पर मौजूद है जो इन मन्त्रों को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिए मैदान में आये? आर्यसमाज की सन्ध्या वैदिक है, क्योंकि उसमें मौजूद मन्त्र वेदानुकूल हैं। यदि आपके विचार से मन्त्र वेद के ही होते हैं तो आप बतलावें कि आपकी सन्ध्या में जो—

ओं आपः पुनन्तु पृथिवीम्पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्॥ यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा॥

—पञ्चमहायज्ञविधि, यथापूर्वम्

यह मन्त्र विद्यमान है और चतुर्विंशतिगायत्री में जो—

ओं तत्पुरुषाय विद्महे स्वर्णपक्षाय धीमहि। तन्नो गरुडः प्रचोदयात्॥ १४॥

यह गरुडगायत्री लिखी है, ये दोनों मन्त्र किस वेद के हैं? क्या किसी पौराणिक में साहस है कि वह गरुडगायत्री को वेदानुकूल सिद्ध कर सके?

(६२१) प्रश्न—स्वामी दयानन्द ने जो देवतर्पण में सत्यार्थप्रकाश पृ० ९७ पर "**ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्**" इत्यादि चार मन्त्र लिखे हैं, ये किस वेद के हैं?

—पृ० १४२, पं० २४

उत्तर—स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।
ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्॥

'**विद्वाꣳसो हि देवाः**' यह शतपथब्राह्मण (३।७।३।१०) का वचन है—जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा, और जो न्यून पढ़े हों उनका भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश उनकी विदुषी स्त्री ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों, उनकी जो सेवा करना है, उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है। स्वामीजी का यह सम्पूर्ण लेख सर्वथा वेदानुकूल है, जैसाकि—

आ वो देवास ईमहे वामम्प्रयत्यध्वरे। आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे॥

—यजुः० ४।५

अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवममच्छेहीन्द्राय सोमꣳरुद्रास्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥ —यजुः० ४।२०

इत्यादि मन्त्रों को देखने से पता लगता है कि स्वामीजी के लिखे मन्त्र हूबहू इन वेदमन्त्रों का अनुवाद ही हैं। क्या किसी पौराणिक रमणी ने कोई ऐसा वीर पुत्र पैदा किया है जो स्वामीजी के लिखे मन्त्रों को वेदविरुद्ध सिद्ध कर सके? ये मन्त्र स्वामीजी के ही कल्पित नहीं हैं, अपितु पूर्व आचार्यों के बनाये मन्त्रों की केवल प्रतिलिपिमात्र ही हैं, जैसाकि आपकी पञ्चमहायज्ञविधि में भी ये मन्त्र विद्यमान हैं—

ओं विश्वेदेवास्तृप्यन्ताम्। ओं ब्रह्मा तृप्यताम्। ओं रुद्रस्तृप्यताम्।
ओं प्रजापतिस्तृप्यन्ताम्। ओं पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ओं इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्।
ओं देव्यस्तृप्यन्ताम्। ओं देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ओं मनुष्यास्तृप्यन्ताम्।

—पञ्चमहायज्ञविधि, देवतर्पण

हाँ, आपकी पञ्चमहायज्ञविधि में वेदविरुद्ध देवतर्पण के मन्त्र मौजूद हैं, जैसाकि—

ओं दुर्मुखास्तृप्यन्ताम्। ओं विघ्नकर्तारस्तृप्यन्ताम्। ओं यक्षास्तृप्यन्ताम्।
ओं रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ओं पिशाचास्तृप्यन्ताम्।

क्या कोई पौराणिक इन देवतर्पण के मन्त्रों को वेदानुकूल सिद्ध करने में समर्थ है?

(६२२) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ९७ में ऋषितर्पण लिखते हुए जो "**ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्**" इत्यादि चार मन्त्र लिखे हैं, ये किस वेद के हैं? —पृ० १४३, पं० ८

उत्तर—स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—

"**ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।**
मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियाँ कन्याओं को विद्यादान देवें, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान जो उनके सेवक

हों, उनका सेवन और सत्कार करना ऋषितर्पण है''।

स्वामीजी का उपर्युक्त लेख सर्वथा वेदानुकूल है, जैसाकि—

ऋषिभ्यः स्वाहा॥ —अथर्व० १९।२२।१४

ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर काव्येन॥

—साम० उत्तर० प्र० १ अर्धप्र० १ मं० १०

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्त्रनीथः पदवीः कवीनाम्॥

—साम० उत्तर० प्र० ५ अर्द्धप्र० १ मं० १

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यम्॥ —ऋ० १।११७।३

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येकः॥ —ऋ० ८।६।४१

इत्यादि वेदमन्त्रों के देखने से पता लगता है कि स्वामीजी का लेख इन वेदमन्त्रों के सर्वथा अनुकूल है। यदि दम हो तो कोई पौराणिक पण्डित स्वामीजी के मन्त्रों को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिए मैदान में आये!

ये मन्त्र वेद के नहीं हैं और न ही स्वामीजी ने इनका वेद के नाम से उल्लेख किया है। हाँ, ये मन्त्र वेद के अनुकूल हैं। ये मन्त्र केवल स्वामीजी ने ही नहीं लिखे, अपितु आपकी पञ्चमहायज्ञविधि के ऋषितर्पण में भी इस प्रकार के मन्त्र मौजूद हैं, जैसेकि—

ओं मरीचिस्तृप्यताम्। ओं अत्रिस्तृप्यताम्। ओं अंगिरास्तृप्यताम्। ओं पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ओं पुलहस्तृप्यताम्। ओं क्रतुस्तृप्यताम्॥ ओं प्रचेतास्तृप्यताम्। ओं वसिष्ठस्तृप्यताम्। ओं भृगुस्तृप्यताम्। ओं नारदस्तृप्यताम्॥

कृपया आप बतलावें कि ये कौन-से वेद के मन्त्र हैं? अतः हमारा पक्ष ठीक है कि आचार्यों को यह हक़ है कि वे कर्मकाण्ड में प्रयुक्त करने के लिए मन्त्र बना सकते हैं बशर्ते कि वे वेद के विरुद्ध न हों। इसी हक़ का ऋषि दयानन्दजी ने प्रयोग करते हुए ये देवतर्पण, ऋषितर्पण, तथा पितृतर्पण के मन्त्र लिखे हैं, जोकि सर्वथा वेदानुकूल हैं।

(६२३) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ९८ में पितृतर्पण लिखते हुए ''**ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्**'' इत्यादि जो १७ मन्त्र लिखे हैं, ये किस वेद के मन्त्र हैं?

—पृ० १४३, पं० १८

उत्तर—ये वेद के मन्त्र नहीं हैं, न वेद के नाम से स्वामीजी ने इनको कहीं लिखा है। हाँ, ये ऋषिकृत वेदानुकूल मन्त्र हैं। स्वामीजी का लेख इस प्रकार है—

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि॥ इति पितृतर्पणम्॥ ''ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः'' जो परमात्मा और पदार्थविद्या में निपुण हों वे सोमसद्। ''**यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः**'' जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेहारे हों वे अग्निष्वात्त। ''**ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः**'' जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद्। ''**ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः**'' जो ऐश्वर्य के

रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक ओषधों को देके रोगनाशक हों वे सोमपा। **'ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः'** जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज। **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः'** जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत-दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपाः। **''शोभनः कालो विद्यते येषां ते सुकालिनः''** जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। **''ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः''** जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम। **''यः पाति स पिता''** जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता। **''पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः''** जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह। **''या मानयति सा माता''** जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान करे वह माता। **''या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही''** जो पिता की माता हो वह पितामही और जो पितामह की माता वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी-सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना, अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनकी आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।

स्वामीजी का यह लेख सर्वथा वेदानुकूल है, जैसेकि—

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्॥

—यजुः० २।३४

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ —यजुः० १९।५८
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्॥ —यजुः० १९।५५
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्य स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः शुन्धध्वम्॥

—यजुः० १९।३६

इत्यादि अनेक मन्त्रों के पढ़ने से पता लगता है कि स्वामीजी के लिखे हुए मन्त्र मात्र इस प्रकार के वेदमन्त्रों का अनुवाद ही हैं।

ये मन्त्र स्वामीजी ने ही कल्पित नहीं किये, अपितु आपकी 'पञ्चमहायज्ञविधि' के अन्दर भी पितृतर्पणप्रकरण में इस प्रकार के मन्त्र विद्यमान हैं, जैसेकि—

सोमस्तृप्यताम् यमस्तृप्यताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपा पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अमुकगोत्रः अस्मत्पिता अमुकशर्मावसुरूपस्तृप्यताम्। अमुकगोत्रः अस्मत्पितामहः। अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामहः। अमुकगोत्रा अस्मन्माता। अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही। अमुकगोत्रा अस्मत्प्रपितामही। अमुकगोत्रा अस्मत्पत्नी। अमुकगोत्राः अस्मत्सुतः। अमुकगोत्रः अस्मत् श्वसुरः, गुरुः, शिष्य, मित्रः, आप्तः, भ्राता, सम्बन्धी, सगोत्रः, तृप्यताम्॥

इत्यादि। आप बतलावें कि ये कौन-से वेद के मन्त्र हैं?

(६२४) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ में **''ओं अग्नेय स्वाहा''** इत्यादि १० मन्त्र दिये हैं। ये मन्त्र वेद के नहीं हैं, किन्तु यहाँ पर यह गृह्य क्यों माना? न वेद में वैश्वदेव का विधान है और न उसके मन्त्र। —पृ० १४५, पं० २६

उत्तर—यह ठीक है कि ये वेद के मन्त्र नहीं हैं। स्वामीजी ने इनको वेद के नाम से लिखा भी नहीं। आपने इस बात को स्वयं स्वीकार कर लिया है कि ये मन्त्र गृह्यसूत्र में विद्यमान हैं। तो क्या गृह्यसूत्र वेद के विरुद्ध है? यदि विरुद्ध है तो वह आपको कैसे प्रमाण है? और यदि अनुकूल है तो स्वामीजी के इन मन्त्रों के देने पर आपको शंका क्यों है? देखिए, वेद में वैश्वदेव का विधान विद्यमान है, जैसेकि—

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि॥ —यजुः० ४।१८

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः॥ —यजुः० १९।४४

इन मन्त्रों में वैश्वदेव का विधान विद्यमान है। इसकी व्याख्या मनुजी महाराज ने की है, जैसाकि—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्। आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥ ८४॥
अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः। विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च॥ ८५॥
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च। सहद्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः॥ ८६॥

—मनु० ३

''स्वाहाकारप्रदानहोमः'' इति कात्यायनस्मरणादादौ, अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेति निरपेक्षदेवताकं होमद्वयं कृत्वा अग्निषोमाभ्यां स्वाहेति समस्तदेवताकं होमं कुर्यात्। ततो विश्वेभ्यो देवेभ्यो धन्वन्तरये कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्याम् अग्नये स्विष्टकृते इत्येवं स्वाहाकारान्तान् होमान् कुर्यात्। —कुल्लूकभट्ट

इन मनु के श्लोकों की आज्ञानुसार कुल्लूकभट्ट ने मन्त्र बनाकर अपनी टीका में रख दिये हैं। इस वेद तथा मनु की आज्ञानुसार ही स्वामीजी ने लिखा है कि—

''जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे—

ओं अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वहा। प्रजापतये स्वाहा। सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा॥

'इन प्रत्येक मन्त्र से एक-एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़ें'। इससे सिद्ध है कि स्वामीजी का लेख वेद, मनुस्मृति और गृह्यसूत्रों के अनुकूल है। क्या कोई पौराणिक पण्डित स्वामीजी के इस लेख को वेदविरुद्ध सिद्ध करने का साहस कर सकता है?

(६२५) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में जो **'ओं सानुगायेन्द्राय नमः'** इत्यादि १५ मन्त्र दिये हैं वे किस वेद के मन्त्र हैं? —पृ० १४६, पं० १०

उत्तर—न स्वामीजी ने इनको वेद के नाम से लिखा है और न ये वेद के मन्त्र हैं। हाँ, ये ऋषिकृत तथा वेदानुकूल मन्त्र हैं। वेद की आज्ञा है कि—

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तो अश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने।
रायस्पोषेण समिषामदन्तो मा तेऽ अग्ने प्रतिवेषा रिषाम॥ —अथर्व० १९।५५।७

यह वेदमन्त्र बलिवैश्वदेव की आज्ञा देता है। इसपर मनुजी महाराज ने वेदानुकूल विधि लिखी है कि—

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्। इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत्॥ ८७॥
मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि। वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत्॥ ८८॥
उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद् भद्रकाल्यै च पादतः। ब्रह्मवास्तोषपतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत्॥ ८९॥

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्य एव च॥ ९०॥
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये। पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत्॥ ९१॥

—मनु० ३

प्राच्यामिन्द्राय नमः, इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः। दक्षिणस्यां यमाय नमः, यमपुरुषेभ्यो नमः। पश्चिमायां वरुणाय नमः, वरुणपुरुषेभ्यो नमः। उत्तरस्यां सोमाय नमः, सोमपुरुषेभ्यो नमः। मरुद्भ्यो नम इति द्वारे बलिं दद्यात्। जले अद्भ्य इति। मुसलोलूखले वनस्पतिभ्य इति बलिं दद्यात्। उत्तरपूर्वस्यां दिशि श्रियै बलिं दद्यात्। दक्षिणपश्चिमायां दिशि भद्रकाल्यै। ब्रह्मणे वास्तोषपतय इति गृहमध्ये। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नम इति गृहाकाशे बलिं दद्यात्। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्य इति दिवा। नक्तञ्चारिभ्य इति नक्तम्। भूभागे वा तत्र सर्वात्मभूतये नम इत्येव बलिं दद्यात्। अवशिष्टं सर्वमन्नं दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणामुखः स्वधापितृभ्य इति बलिं हरेत्। —कुल्लूकभट्ट

वेद और मनु का अनुकरण करते हुए ही स्वामीजी ने यह विधि लिखी है कि—

'थाली अथवा भूमि में पत्ता रखके पूर्वदिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रखे। **ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः।**

इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे। इससे साफ़ सिद्ध है कि स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

ऋषि दयानन्दजी और वेद का भाष्य

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥ १॥

—यजुः० ३२

पदार्थ—हे मनुष्यो! **(तत्)** वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन, अनादि, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, मुक्तस्वभाव, न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा, धारणकर्त्ता और सबका अन्तर्यामी **(एव)** ही **(अग्निः)** ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि **(तत्)** वह **(आदित्यः)** प्रलय समय सबको ग्रहण करने से आदित्य **(तत्)** वह **(वायुः)** अनन्त बलवान् और सबका धर्त्ता होने से वायु **(तत्)** वह **(चन्द्रमाः)** आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा **(तत्, एव)** वही **(शुक्रम्)** शीघ्रकारी वा शुद्धभाव से शुक्र **(तत्)** वह **(ब्रह्म)** महान् होने से ब्रह्मा **(ताः)** वह **(आपः)** सर्वत्र व्यापक होने से आप **(उ)** और **(सः)** वह **(प्रजापतिः)** सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम लोग जानो॥ १॥

(६२३) प्रश्न—'हे मनुष्यो!' यह जो अर्थ में लिखा है यह मन्त्र के कौन पद का अर्थ है?

उत्तर—वाह महाराज! खूब शंका की। क्या इसी अक़्ल के मालिक बनकर आर्यसाज से लोहा लेना चाहते हैं? क्या आपको इतना भी विवेक नहीं है कि वेद का ज्ञान मनुष्यों के लिए ही प्रकाशित हुआ है? तो फिर 'हे मनुष्यो!' सम्बोधन सर्वथा ठीक ही है। आपके विचार में यदि किसी पद के बिना सम्बोधन हो ही नहीं सकता तो आपने जो अपनी पुस्तक में—

पृ० १७९ पर 'अर्चत' इस मन्त्र के अर्थ में—हे अध्वर्य्वादि!

पृ० २५३ पर 'मा ज्येष्ठं' मन्त्र के अर्थ में—हे अग्ने!

पृ० २५३ पर 'नमः पार्याय' मन्त्र के अर्थ में—हे शिव!

पृ० २५६ पर 'आपो भूयिष्ठा' मन्त्र के अर्थ में—हे ऋभव!

पृ० २६१ पर 'सुमित्रिया न' मन्त्र के अर्थ में—जगदीश्वर!

इत्यादि सम्बोधन मन्त्र में पड़े किन पदों के अर्थ हैं? इससे सिद्ध है कि सम्बोधन का अर्थों की संगति के अनुसार अध्याहार हो जाता है।

(६२७) प्रश्न—सर्वज्ञ, सर्वव्यापी इत्यादि यह इतना बड़ा पिछुल्ला मन्त्र के किसी पद में छिपा बैठा है या दयानन्द के दिमाग़ से टपका है?

उत्तर—इस मन्त्र में 'तदेव' पद से परमात्मा की ओर संकेत है। वह परमात्मा कैसा है जिसकी ओर 'तत्' शब्द से संकेत किया गया है, यह सर्वज्ञ आदि पदों से बताया गया है, अतः यह 'तत्' शब्द का भाष्य ही है जैसाकि आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० २६३ पर 'अग्ने नय' मन्त्र में पड़े 'अग्ने' पद का अर्थ 'हे दिव्य, दानादि गुणयुक्त अग्निदेव' किया है।

(६२८) प्रश्न—अग्नि, वायु, आदित्या, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप, प्रजापति—इन शब्दों के अर्थ करते हुए प्रत्येक के साथ दो-दो विशेषण स्वामीजी ने अपनी तरफ़ से लगाकर ईश्वर की ग़लती निकाली है।

उत्तर—ईश्वर सर्वज्ञ है, उसमें ग़लती की कल्पना करना आप-जैसे मायावादियों का काम है। स्वामीजी ने तो व्याकरण के अनुसार इन शब्दों के अर्थ बतलाये हैं। ये विशेषण नहीं हैं। यदि आपमें कुछ भी पाण्डित्य हो तो स्वामीजीकृत अर्थों का खण्डन करके दिखावें।

(६२९) प्रश्न—इस मन्त्र में ईश्वर सृष्टि का 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारण' होने से समस्त संसार को ईश्वर का स्वरूप बतलाया है।

उत्तर—संसार का उपादानकारण प्रकृति है, अतः यह समस्त संसार ईश्वर का स्वरूप नहीं अपितु प्रकृति का स्वरूप है।

(६३०) प्रश्न—मन्त्र का अभिप्राय यह है कि अग्नि, आदित्य आदि सब ब्रह्म ही हैं।

उत्तर—अग्नि, आदित्य आदि संसार के ये सब पदार्थ ब्रह्म नहीं हैं, अपितु ये ब्रह्म के भी नाम हैं, यह अभिप्राय है।

(६३१) प्रश्न—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० १२७ **'मुखं किमस्यासीत्', 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्'** इन दो मन्त्रों की टीका में स्वामीजी ने ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व गुण माना है। —पृ० ५७, पं० ११

उत्तर—आपका लेख सर्वथा असत्य है। स्वामीजी ने मूर्खत्व और नीचत्व गुण ईश्वर के नहीं माने, अपितु पुस्तक में पाठ इस प्रकार है कि—

(१) 'मुखं किमस्यासीत्' के भाष्य में लिखा है कि—

(पादा उच्येते) 'पादावर्थान्मूर्खत्वादिनीचगुणैः किमुत्पन्नं वर्तते' मूर्खपन आदि नीचगुणों से किसकी उत्पत्ति होती है?

(२) 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' के भाष्य में लिखा है कि **(पद्भ्याᳬशूद्रो०) 'पद्भ्यां पादेन्द्रियनीचत्वमर्थाज्जडबुद्धित्वादिगुणेभ्यः शूद्रः सेवागुणविशिष्टः पराधीनतया प्रवर्तमानोऽजायत जायत इति वेद्यम्'।**

जैसे पग सबमें नीच अंग है, वैसे मूर्खतादि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

कहिए महाराज! इसमें यह कहाँ लिखा है कि मूर्खत्व और नीचत्व ये गुण ईश्वर के हैं?

यहाँ तो लिखा है कि मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्रवर्ण सिद्ध होता है, जिसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जिसमें मूर्खत्वादि नीचगुण हों वह शूद्र है।

यदि आपको 'अस्य' शब्द के अर्थ 'ब्रह्म' समझकर भ्रम हुआ है तो स्वामीजी ने 'अस्य' शब्द के अर्थ सब स्थानों में ब्रह्म नहीं किये अपितु प्रकरणानुसार किया है, जैसाकि इन्हीं मन्त्रों के भाष्य में है कि—

'अस्य पुरुषस्योपदेशादुत्पन्नो भवतीति वेद्यम्'।

इस पुरुष के उपदेश से पैदा हुआ, ऐसा जानना चाहिए। इससे अर्थ स्पष्ट हो गया कि उस परमेश्वर के उपदेश से मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्रवर्ण सिद्ध होता है, अतः स्वामीजी ब्रह्म में मूर्खत्व और नीचत्व गुण नहीं मानते।

हाँ, सनातनधर्म ब्रह्म का माया वा अविद्या से जीव बन जाना अवश्य मानता है, जैसाकि आपने भी अपनी पुस्तक के पृ० १७४ में लिखा है कि—

'किन्तु उस ब्रह्म का एक अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है, उसमें इच्छा होती है। वही संसार को अपने शरीर से पार करता है।'

कहिए महाराज! ईश्वर को मूर्ख आप मानते हैं या स्वामीजी? किसी ने ठीक कहा है—

गिला औरों का करते थे क़ुसूर अपना निकल आया।

(६३२) प्रश्न—दयानन्दजी के साथ मुंशी इन्द्रमणिजी का नमस्ते पर शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ वेदव्याख्याता पण्डित भीमसेनजी हुए। स्वामी दयानन्दजी की हार हुई।
—पृ० १४६, पं० १०

उत्तर—कहिए महाराज! यह शास्त्रार्थ किस स्थान में हुआ था? कहीं यह आपके दादा के बंगले पर तो नहीं हुआ जिनकी बही से आपको पता लग गया हो? वरना स्वामी दयानन्दजी और इन्द्रमणि की विद्वत्ता का मुक़ाबला ही क्या है? कहाँ राजा भोज और कहाँ गाँगला तेली! 'ख्वाजा का गवाह डड्डू'। मध्यस्थ भी भीमसेन ही थे जिनका यज्ञ में पशुवध मानने के कारण समाज ने बहिष्कार कर दिया! क्या इसी गप्पबाजी से अब सनातनधर्म की विजय होगी? वास्तविक बात यह है कि इस प्रकार का कोई शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं। और **'नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च'** इत्यादि यजुः० १६।३२ के अनुकूल नमस्ते करना सर्वथा वेदानुकूल है।

(६३३) प्रश्न—स्वामीजी दयानन्द और राजा शिवप्रसादजी सितारेहिन्द में 'ब्रह्मणग्रन्थ वेद हैं' इस विषय पर शास्त्राार्थ चला, इस शास्त्रार्थ के सभापति थोबी साहिब बहादुर प्रिंसिपल क्वींस कालिज काशी हुए। इन्होंने अपने फैसले में लिखा कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं। —पृ० १४७, पं० ९

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय! क्या झूठ बोलने का और धोखा देने का सनातनधर्म ने ठेका ले-रखा है? वास्तव में न स्वामीजी का राजा शिवप्रसाद से शास्त्रार्थ हुआ और न ही थोबी साहिब को कभी सभापति बनाया गया। राजा साहिब ने तो वैसे ही अपनी प्रसिद्धि के लिए झूठी पुस्तक छाप दी थी जिसका उत्तर 'भ्रमोच्छेदन' के द्वारा दे दिया गया।

(६३४) प्रश्न—डुमराँव जिला आरा में राजा के सामने राजपण्डित परमहंसजी और दयानन्दजी में मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामीजी ने राजा के सामने यह कह दिया कि आज मैं स्वीकार करता हूँ कि मूर्त्तिपूजा वेद में लिखी है। —पृ० १४७, पृ० १५

उत्तर—झूठ! सर्वथा झूठ! सुफ़ैद झूठ! स्वामीजी का डुमराँव में कोई ऐसा शास्त्रार्थ नहीं हुआ। मूर्त्तिपूजा वेद के विरुद्ध है, वेद ने ईश्वर को **अकायम्** (यजुः० ४०।८) वर्णन करके बतलाया कि **न तस्य प्रतिमाऽस्ति** (यजुः० ३२।३) और फिर मूर्त्तिपूजा करनेवाले को **'अन्धन्तमः**

प्रविशन्ति' (यजुः० ४०।९) में नरकगामी बतलाया है, अतः मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध और पाप है।

(६३५) प्रश्न—हाथरस में हरजसराय भय्यानेवालों के साथ स्वामीजी का शास्त्रार्थ १० मिनट हुआ। विषय यह था कि स्वामीजी संसार का उपादानकारण प्रकृति को मानते थे और हरजसरायजी ईश्वर को। दस मिनट के अन्दर ही स्वामीजी ने कह दिया कि पण्डितजी आपका पक्ष बड़ा प्रबल है, इसपर मैं अपनी हार स्वीकार करता हूँ। पृ० १४७, पं० २२

उत्तर—यह भी सनातनधर्म की टकसाली गप्प है। भला १० मिनट में भी कभी कोई शास्त्रार्थ हो सकता है? वास्तव में स्वामीजी का ऐसा कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। हाँ, ईश्वर को संसार का उपादानकारण मानना वेद के विरुद्ध अवश्य है। ईश्वर तो संसार का निमित्तकारण है और उपादानकारण प्रकृति ही है, इस बात को वेद ने '**द्वा सुपर्णा सयुजा**' इस मन्त्र द्वारा भली-भाँति स्पष्ट कर दिया है।

प्रश्न—स्वामीजी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में मृतकों का श्राद्ध अपने-आप लिखा। संवत् १९३४ में कलकत्ता में आशुतोष चटर्जी से कह दिया कि यह लेख मेरा नहीं, मेरे पास रहनेवाले किसी पण्डित ने लिख दिया। —पृ० १४७, पं० २९

उत्तर—स्वामीजी का कहना सर्वथा सत्य था, क्योंकि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामीजी की निगरानी में नहीं छपा, अतः स्वार्थी पण्डित लोगों ने उसमें मृतकश्राद्ध प्रकरण को प्रविष्ट कर दिया। जब स्वामीजी को पता लगा तो स्वामीजी ने फौरन विज्ञापन द्वारा उसका खण्डन कर दिया, क्योंकि मृतकों का श्राद्ध '**ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः**'। (यजुः० १९।४६) इस वेदमन्त्र के विरुद्ध होने से पाप है।

(६३७) प्रश्न—स्वामीजी ने महाराज जयपुर को शैव बनाया और यह बतलाया कि शैवमत वैदिक है। कुछ दिन बाद फिर जयपुर में गये। राजा से कहा कि शैवमत भी वैदिक नहीं है। राजा ने कहा आप ही हमसे कह गये थे कि शैवमत वैदिक है? स्वामीजी ने उत्तर में कहा कि यह तो मैंने नहीं कहा; हाँ, यह कहा था कि वैष्णवमत की अपेक्षा शैवमत अच्छा है।

—पृ० १४८, पं० ३

उत्तर—स्वामीजी ने जो कुछ कहा सर्वथा सत्य कहा, क्योंकि दो बुराइयों में भी अपेक्षाकृत न्यूनता-अधिकता होती है, जैसेकि आर्यसमाज अब भी पौराणिक सनातनधर्म को ईसाई और मुसलमानों की अपेक्षा अच्छा मानना है। यदि सनातनधर्म का ईसाई तथा मुसलमानों से शास्त्रार्थ हो जाए तो आर्यसमाज सनातनधर्म की सहायता करेगा। ऐसा ही स्वामीजी ने भी किया था।

(६३८) प्रश्न—संसार को तो गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था बतलाई जाती है और आप न गुण देखें, न कर्म और न स्वभाव, चाहे जिसको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बना दें?

—पृ० १४८, पं० २४

उत्तर—आपका यह कहना सर्वथा ग़लत है, क्योंकि आर्यसमाज प्रत्येक को शुद्ध करके आर्य बनाता है। यह शुद्ध होनेवाले का पुरुषार्थ है कि वह अपनी योग्यता से चाहे किसी वर्ण के गुण-कर्म-स्वभाव प्राप्त करके किसी वर्ण के योग्य बन जावे, और सारे संसार को आर्य बनाने की वेद-आज्ञा है, जैसाकि—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तोऽराव्णः॥ —ऋ० ९।६३।५

अतः प्रत्येक को आर्य बनाना वेदानुकूल होने से धर्म है।

(६३९) प्रश्न—वेद और मनु तथा स्वामी दयानन्दजी के लेख से स्त्रियों का यज्ञोपवीत पहनना सिद्ध नहीं होता। —पृ० १४९, पं० १

उत्तर—आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल है। वेद तथा मनु और स्वामीजी भी स्त्रियों के लिए वेद का अधिकार मानते हैं, जैसेकि—

वेद—**भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता॥** —ऋ० १०।१०९।४

मनु—**न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।**
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंकृतस्तथा॥ ३६॥ —मनु० ११

स्वामी दयानन्द—नवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। (सत्यार्थ० समु० २) द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल में, अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें। —सत्यार्थ० समु० ३

इसी प्रकार से व्रतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और कन्या धीरे-धीरे वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जावें। —सत्यार्थ० समु० ३

(६४०) प्रश्न—आजकल के आर्यसमाजी वेद को छोड़ पुराणों से अपने पक्ष की शास्त्रार्थों में पुष्टि करते हैं। जिन पुराणों को स्वामी दयानन्दजी ने **'विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः'** बतलाया है, उसी को आर्यसमाजी प्रमाण मानते हैं। —पृ० १४९, पं० ९

उत्तर—आर्यसमाजी अब भी पुराणों को वैसा ही मानते हैं जैसाकि स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है और आर्यसमाजी अपना पक्ष स्थापन करते समय पुराणों का प्रमाण पेश नहीं करते। हाँ, अपने पक्ष को मनवाने के लिए पौराणिकों के घर से उनके ग्रन्थों में से उनके लिए प्रमाण देते हैं। यदि पौराणिकों को पुराणों के प्रमाण महँगे पड़ते हैं तो उन्हें भी पुराणों को प्रामाणिक मानने से इन्कार कर देना चाहिए।

(६४१) प्रश्न—आर्यसमाजियों ने एक चाल यह चली है कि वेदशास्त्र को छोड़कर इतिहास से धर्मनिर्णय करने लगते हैं कि अमुक स्त्री का विधवा-विवाह हुआ था, इस कारण विधवा-विवाह करना धर्म है। यह निर्णय धर्माधर्म में सर्वथा घपला मचा देनेवाला है। द्वापर में मल्लू धोबी की अम्मा ने अढाई सौ पति किये तो अब प्रत्येक स्त्री को अढाई सौ पति करना धर्म हो गया। यादवों ने शराब पी, नशे में कटकर मर गये तो प्रत्येक मनुष्य का धर्म हो गया कि शराब पीकर मर जाए। रावण ने श्रीमती जनकनन्दिनी को हर लिया। अब मनुष्यों का धर्म हुआ कि दूसरों की औरतों को चुराया करो। इस नियम से तो धर्माधर्म सब धर्म हो जाएँगे, फिर इतिहास से धर्मनिर्णय कैसे? एक दूसरी खराबी यह आवेगी कि वेन व्यभिचारी था और उसका लड़का पृथु एकस्त्रीव्रत रखनेवाला। उग्रसैन गौ, ब्राह्मण वेदों का भक्त था और उसका लड़का कंस तीनों से ही घोर शत्रुता रखता था। फिर इतिहास से धर्मनिर्णय कैसे होगा? इतिहास सब लोगों के चरित्र देता हुआ लिखता है कि—

'रामवत् प्रवर्तिव्यं न तु रावणवत्' राम की तरह आचरण करो, रावण-जैसा आचरण करनेवाले मत बनो, फिर किसी एक मनुष्य के चरित्र को लेकर धर्म की डिगरी देना यह आर्यसमाजियों का संसार की आँख में धूल झोंकना है। —पृ० १४९, पं० १४

उत्तर—आर्यसमाज इतिहास को धर्म-अधर्म में परम प्रमाण नहीं मानता, अपितु धर्म-अधर्म में परम प्रमाण वेद को मानता है। धर्म-अधर्म के जानने में इतिहास वहाँ तक ही प्रमाण है जहाँ तक कि वह वेद तथा स्मृति के अनुकूल हो, जैसाकि मनु ने लिखा है कि—

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ —मनु० २।१३

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च॥ —मनु० १।१०८

अब आपके लिए इतिहास में से कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को जानना आसान है। चूँकि एक ही समय में किसी स्त्री का ढाई सौ पति करना वेद के विरुद्ध है, अतः मल्लू धोबी की माँ का आचरण वेदविरुद्ध होने से अनुकरणीय नहीं है। और चूँकि स्त्री को दूसरे पति का अधिकार वेद देता है, अतः अर्जुन का नागराजा की विधवा पुत्री से विवाह करना वेदानुकूल होने से अनुकरणीय है। चूँकि शराब का पीना, पराई स्त्री-हरण करना वेद के विरुद्ध है, इसलिए यादवों का शराब पीकर कट मरना तथा रावण का सीता को चुरा ले-जाना वेदरुिद्ध होने से अनुकरणीय नहीं है। धर्म-अधर्म की कसौटी वेद को मानकर इतिहास से धर्म और अधर्म के निर्णय में कोई घपला नहीं हो सकता। इतिहास में जिसका आचरण वेदानुकूल होगा वह धर्म में अनुकरणीय और जिसका आचरण वेदविरुद्ध होगा वह धर्म में अनुकरणीय न होगा। जैसेकि वेन का व्यभिचार और कंस का गौ, ब्राह्मण और वेद से शत्रुता करना वेदविरुद्ध होने से पाप है, अतः अनुकरणीय नहीं है और राजा पृथु का एकस्त्रीव्रती होना तथा उग्रसैन का गौ-ब्राह्मण और वेदों का भक्त होना वेदानुकूल होने से धर्म है, अतः अनुकरणीय है। आपकी यह थ्यूरी भी ग़लत है कि राम की तरह आचरण करो, रावण की तरह आचरण न करो। अपितु यह थ्यूरी ठीक है कि मनुष्यों के वेदानुकूल आचरण का अनुकरण करना चाहिए और वेदविरुद्ध आचरण का अनुकरण नहीं करना चाहिए, क्योंकि राम और रावण दोनों ही इन्सान थे, दोनों से ही ग़लती का होना सम्भव है, अतः किसी भी इन्सान का चरित्र धर्माधर्म में डिगरी नहीं माना जा सकता। आर्यसमाज का यही एक निश्चित सिद्धान्त है। हाँ, सनातनधर्म अवश्य इतिहास को ही धर्म-निर्णय में कसौटी मानता है, जैसाकि—

तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥५१॥

—गरुड० आचार० अ० १०९

सनातनधर्म के मन्तव्य को आर्यसमाज के गले मढ़ना यह अव्वल दर्जे की मक्कारी, छल-कपट बेईमानी है या नहीं?

(६४२) **प्रश्न**—हम यह निर्णय नहीं करेंगे कि मुसलमान, ईसाई आदि के धर्म अकाट्य और मान्य हैं या नहीं। जिसका धर्म जैसा है वह उसी के लिए मुबारिक है। मज़हब मज़हब है किन्तु आर्यसमाज चालबाजियों का भण्डार है। —पृ० १५१

उत्तर—आपमें यह हिम्मत ही कहाँ है जो आप ईसाई और मुसलमानों के मज़हब की समालोचना कर सकें? धर्म बहुत-से नहीं होते। जब ईश्वर एक है तो उसकी ओर से धर्म भी एक है और वह वैदिक धर्म है। जिसकी बुनियाद किसी एक मनुष्य पर है वह मज़हब है और जिसकी बुनियाद किसी मनुष्य पर नहीं अपितु ईश्वरीय नियमों पर है वह धर्म है। इस हिसाब से ईसाईयत और इस्लाम मज़हब हैं और आर्यसमाज वैदिक धर्म है, किन्तु पौराणिक सनातनधर्म चूँ-चूँ का मुरब्बा है।

(६४३) प्रश्न—यदि आर्यसमाज दुर्गन्ध को दूर करने के लिए हवन करते हैं तो उनको पाखाने में हवन करना चाहिए।

उत्तर—जो स्थान जिस प्रयोजन के लिए बनाया जावे उससे वही काम लेना विद्या तथा उससे विपरीत काम लेना अविद्या कहाती है। घर में यज्ञशाला हवन करने के लिए और टट्टी पाखाने फिरने के लिए बनाई जाती है, अतः टट्टी में हवन करना तथा यज्ञशाला में पाखाना फिरना ये दोनों ही काम अविद्यायुक्त होने से पाप हैं। हाँ, यज्ञशाला में किया हुआ हवन जैसे और स्थानों की दुर्गन्ध को दूर करेगा वैसे ही पाखाने की दुर्गन्ध को भी दूर करेगा। जैसे परमात्मा ने मनुष्य

के शरीर में मुख खाने के लिए और गुदा पाखाना फिरने के लिए बनाई है। मुख से खाया हुआ भोजन जैसे सारे शरीर की पुष्टि करता है वैसे ही गुदा की भी पुष्टि करता है। जैसे गुदा की पुष्टि के लिए गुदा से ही भोजन की माँग मूर्खतायुक्त है वैसे ही टट्टी की दुर्गन्ध को दूर करने के लिए टट्टी में ही हवन करने का प्रश्न भी मूर्खतायुक्त ही है। सम्भव है प्रश्नकर्त्ता पौराणिक पण्डित हठ में आकर गुदा से ही भोजन करने की मूर्खता में संलग्न होने को तैयार हो जावें किन्तु तो भी कोई आर्यसमाजी टट्टी में हवन करने की मूर्खता में संलग्न न हो सकेगा।

(६४४) प्रश्न—आर्यसमाजी लोग स्वामी दयानन्दजी की मूर्त्ति की पूजा करते हैं। यदि नहीं करते तो वे मूर्त्ति पर जूता मारकर दिखलावें।

उत्तर—आर्यसमाज परमात्मा के स्थान में किसी भी चीज़ की पूजा करने को वेदविरुद्ध होने से पाप मानता है। हाँ, आर्यसमाज मूर्त्तियों को कौमी यादगार मानता है और उनका उपयोग इस प्रकार से मानता है कि बच्चों को बुजुर्गों की तस्वीर दिखलाकर और उनका जीवनचरित्र बतलाकर वैसा ही बनने की शिक्षा दी जावे, अतः मूर्त्ति पर जूता मारना मूर्त्ति का दुरुपयोग होने से अविद्याजन्य, सिद्धान्तविरुद्ध, शिष्टाचार, धर्म और नीति के भी विरुद्ध मानता है। इसी प्रकार के कार्य को आर्यप्रतिनिधिसभा पंजाब के प्रधान, मन्त्री, अन्तरंग सभा और सार्वदेशिक सभा ने भी सर्वसम्मति से अनुचित क़रार दिया है और आर्यसमाज की दृष्टि में इस प्रकार का प्रश्न भी न्यायशास्त्र के विरुद्ध होने से निर्मूल है। ऐसे-ऐसे निर्मूल प्रश्न तो कोई भी किसी पर कर सकता है, जैसे कोई आदमी प्रश्न करता है कि ''आप लोग पाखाने और पेशाब की पूजा करते हो। यदि नहीं करते तो पाखाने को खाकर और पेशाब को पीकर दिखावें। तुम्हारे अपनी माँ, बहिन और बेटी के साथ अवैध सम्बन्ध हैं, यदि नहीं तो उनको सभा में बुलाकर उनके हलफ़िया बयान करवाओ। आप पराई स्त्री को माता के समान नहीं समझते, यदि समझते हैं तो फलाँ स्त्री का स्तन मुख में लेकर चूसकर दिखलाओ। आप अपने घर-बार, मेज, कुरसी, कपड़े, चारपाई आदि सबकी पूजा करते हैं, यदि नहीं करते तो इन सबको दियासलाई लगाकर दिखलाओ। आप पराई आत्मा को अपनी आत्मा के समान नहीं समझते, यदि समझते हैं तो दूसरे पुरुष को अपनी स्त्री के पास जाने की आज्ञा देकर दिखलाओ, इत्यादि-इत्यादि अनेक प्रतिज्ञाएँ की जा सकती हैं, किन्तु ये सम्पूर्ण प्रतिज्ञाएँ हेतुशून्य होने के कारण निर्मूल ही हैं और प्रतिज्ञा करनेवाले को प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थान में लाकर परास्त करवा देती हैं। इसी प्रकार से आपकी प्रतिज्ञा भी हेतुशून्य है जब तक कि आप अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए हेतुरूप में कोई प्रमाण पेश न करें, अतः आपका दावा बिना दलील के एकतरफ़ा ही खारिज करने के योग्य है।

''आर्यसमाज की मौत''
का क़रारा जवाब
समाप्त

मन्त्रानुक्रमणिका

❖❖